नवभारत टाइम्स प्रकाशन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जुलाई, १९९० मूल्य : दस रुपये

सारिका

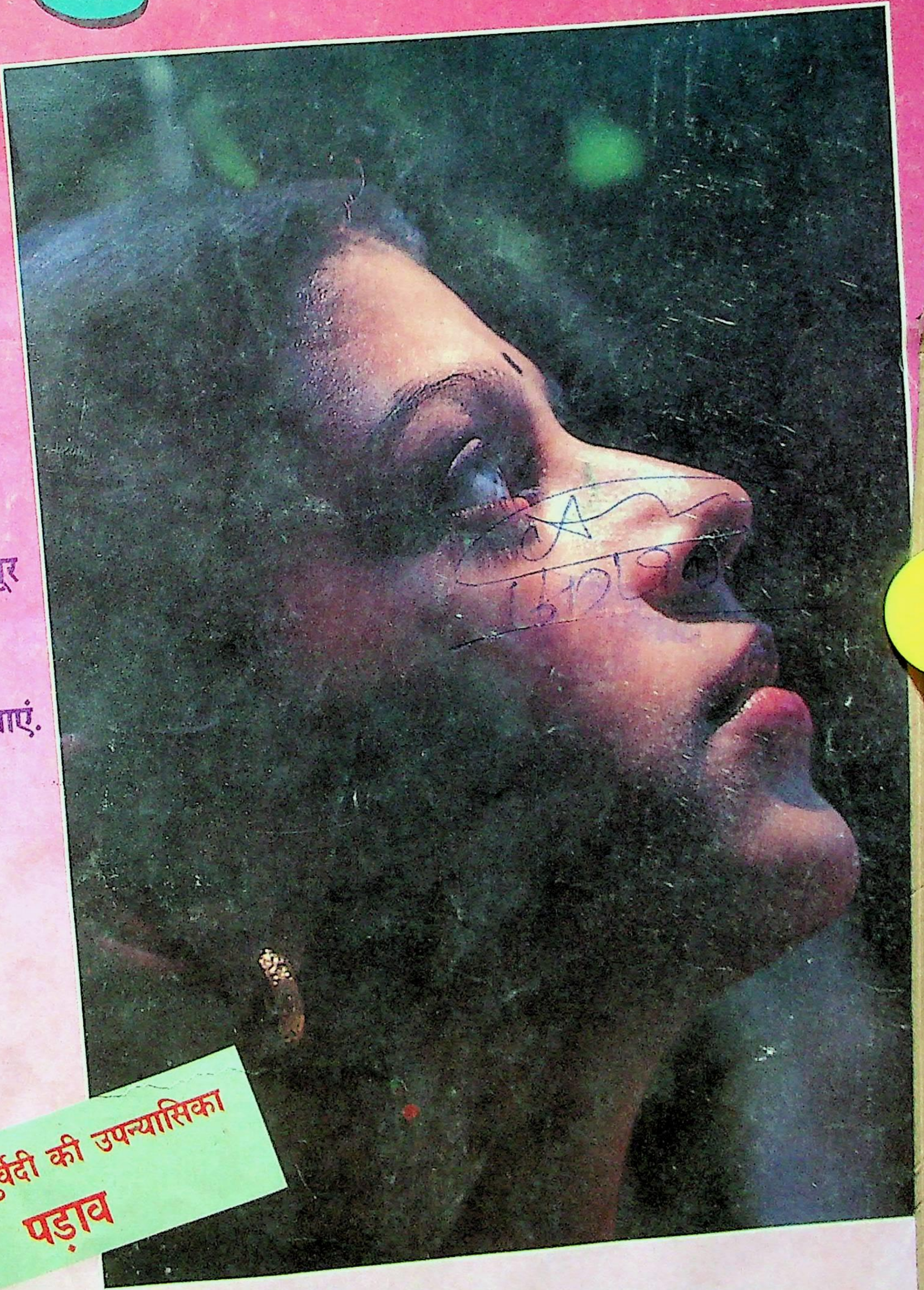

इस बार

- गोविंद मिश्र
- यासुनारी कावाबाता
- शशिप्रभा शास्त्री
- अभिमन्यु अनत
- रामदरश मिश्र
- प्रदीप पंत
- सुदर्शन नारंग
- गौरीशंकर कपूर
- दानिश और प्रबोध जोशी आदि की रचनाएं.

कुसुम चतुर्वेदी की उपन्यासिका

पड़ाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमंड पाकेट बुक्स में

बंगला साहित्यकार बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के अविस्मरणीय उपन्यास

दुर्गेशनंदिनी	10.00
कपाल कुण्डला	10.00
मृणालिनी	10.00
देवी चौधरानी	10.00
सीताराम, राधारानी	10.00
विषवृक्ष	10.00
चन्द्रशेखर	10.00
रजनी	10.00
कृष्णकांत का वसीयतनामा	10.00
राजसिंह	10.00
आनंदमठ	10.00

प्रेमचन्द साहित्य

उपन्यास

निर्मला	10.00
वरदान	12.00
प्रतिज्ञा व मंगलसूत्र	12.00
सेवासदन	20.00
गोदान	25.00
प्रेमाश्रम	20.00
कर्मभूमि	25.00
रंगभूमि-I	20.00
रंगभूमि-II	20.00
कायाकल्प	20.00
मनोरमा	12.00
रूठीरानी व प्रेमा	12.00
गबन	20.00

नाटक

कर्बला	12.00
संग्राम	12.00

कहानी संग्रह

मानसरोवर भाग-1	20.00
मानसरोवर भाग-2	20.00
मानसरोवर भाग-3	20.00
मानसरोवर भाग-4	20.00
मानसरोवर भाग-5	20.00
मानसरोवर भाग-6	20.00
मानसरोवर भाग-7	20.00
मानसरोवर भाग-8	20.00
कफन	12.00
प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	15.00

जयशंकर प्रसाद साहित्य

प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड (काव्य)-I	40.00
प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड (नाटक)-II	40.00
प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड (उपन्यास)-III	40.00
प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड (कहानी-निबन्ध)-IV	40.00

'प्रसाद' की अलग प्रकाशित पुस्तकें

उपन्यास

कंकाल	15.00
तितली	15.00
इरावती	6.00

निबन्ध

काव्य कला तथा अन्य निबन्ध	15.00

कहानी संग्रह

छाया	6.00
इन्द्रजाल	8.00
आकाशदीप	7.00
प्रतिध्वनि	5.00
आंधी	6.00

काव्य

लहर	5.00
कामायनी	8.00
आंसू	5.00
झरना	5.00
महाराजा का महत्व	2.00
प्रेम पथिक	3.00

नाटक

स्कंदगुप्त	10.00
अजात शत्रु	6.00
ध्रुवस्वामिनी	3.00
जनमेजय का नाग यज्ञ	6.00
कामना	5.00
एक घूंट	5.00
चन्द्रगुप्त	10.00
राज्य श्री	5.00
विशाख	6.00

शरत साहित्य

विप्रदास	15.00
शुभदा	12.00
पथ के दावेदार	15.00
देवदास	10.00
पंडित जी	10.00
मंझली दीदी	10.00
दत्ता	10.00
शेष प्रश्न	15.00
देना पावना	10.00
चरित्रहीन	20.00
शेष परिचय	15.00
विराज बहू	10.00
काशीनाथ	10.00
चन्द्रनाथ	10.00
परिणीता	10.00
गृहदाह	15.00
कमला	10.00
श्रीकांत	20.00
बैकुंठ का वसीयतनामा	10.00
देहाती समाज	10.00
समाज का अत्याचार	10.00
ब्राह्मण की बेटी	10.00
शरत के नाटक	25.00

देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास

चन्द्रकांता	15.00
चन्द्रकांता सन्तति I	15.00
चन्द्रकांता सन्तति II	15.00
चन्द्रकांता सन्तति III	15.00
चन्द्रकांता सन्तति IV	15.00
चन्द्रकांता सन्तति V	15.00
चन्द्रकांता सन्तति VI	15.00

संस्कृत के महान ग्रन्थ

मृच्छकटिकम्	10.00
कादम्बरी	10.00
नलदमयन्ती (नैषधचरितम्)	10.00
हर्षचरित	12.00
मुद्राराक्षस	12.00
किरातार्जुनीय	12.00
वेणीसंहार	12.00

कालिदास साहित्य

अभिज्ञान शकुन्तलम्	10.00
कालिदास के नाटक	10.00
रघुवंश	10.00
मेघदूत	10.00

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा.लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा पहेली
मई:1990

सर्वशुद्ध हल

1. I हजारी प्रसाद द्विवेदी II प्रेमचंद III शहंशाह आलम IV विजय किशोर मानव V द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' VI यह सही प्रकाशित नहीं है. कृति का सही नाम है—'वासंती चारोड' और इसके रचनाकार हैं—सिजगुरुमयुम नीलवीर शास्त्री.
2. 'उम्मीद'
3. 'रंगबिरंगे लोग' के पात्र राजू के संवाद से है. इसमें वह कुंज को दिलासा देने की कोशिश करता है.
4. राजेंद्र यादव.
5. 'लाडली' में लाडली
6. विजयकिशोर मानव की कहानी 'युद्धविराम'.
7. सीढ़ी.
8. 'लाडली'

2608 प्रतियोगियों में इस बार केवल छः प्रतियोगी ऐसे हैं जिन्होंने लगभग सही हल भेजे हैं. लगभग इसलिए कि 'वासंती चारोड.' का उल्लेख किए बिना इन सभी प्रतियोगियों ने सही रचनाकार का नाम दे दिया है. 'वासंती चारोड' गलत प्रकाशित हुआ है. बहरहाल, पुरस्कार राशि इन सभी को बराबर—बराबर भेजी जा रही है. प्रतियोगी हैं—

1. राजनारायण वर्मा, लखनऊ.
2. गीता देवी, फैजाबाद.
3. शरदेंदु शेखर, नयी दिल्ली.
4. हर्षा दवे, बिलासपुर.
5. मीना दुबे, गोरखपुर.
6. अभिमन्यु प्रसाद, पटना.

सारिका कथा पहेली

सारिका गौर से पढ़िए और 200 रुपये के पुरस्कार जीतिए!

'सारिका कथा पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों से अनुरोध है कि वे पूर्तियां इसी पृष्ठ पर भेजें. इस बार के प्रश्न जून: 1990 के अंक पर आधारित हैं. पूर्तियां कार्यालय में पहुंचने की अंतिम तिथि 25 जुलाई है. जिन इलाकों में पत्रिका देर में पहुंचती है. वहां के पाठक 25 तारीख के बाद भी पूर्तियां भेज सकते हैं.

कथा पहेली: जुलाई 1990

निर्देशानुसार खाली स्थान भरिए

1. ....कहानी का शीर्षक व्यंग्यार्थ लिए है.
2. 'आकाश के उस पार' मूलतः...........भाषा का उपन्यास है. हिंदी में इसका अनुवाद...........ने किया है.
3. परिस्थितियों से टूटकर भावुक क्षणों में कम उम्र के युवक से संबंध बना लेने की बात सोचना...........शीर्षक रचना में आया है.
4. अंधविश्वासों पर चलने वाले परिवार की नियति...........शीर्षक रचना में है.
5. संस्मरण के माध्यम से कथाकार...........हमारी मुलाकात एक यादगार चरित्र से कराते हैं.
6. रचनाकार जहां आलोचक की अद्यतन बाधा बन जाता है वहां संदर्भ आलोचक...........और कथाकार...........का है.
7. ....के लेख का अंत एक कुमांऊनी कहावत से हुआ है.
8. 'किराये का इन्द्रधनुष' कहानी में मुख्यचरित्र इन चारों में से कौन है? कहानी का नैरेटर आंटी, पेशा करने वाली लड़की, या टीपू. नीचे दिए खाली स्थान में लिखें.
....
9. इस अंक की सर्वश्रेष्ठ रचना है—...........

नाम...

पता...

....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रैपिडैक्स इंगलिश स्पीकिंग कोर्स

एक रिकार्ड

3,00,00,000 तीन करोड़ से अधिक पाठकों द्वारा अपनायी गयी भारत की बारह भाषाओं में प्रकाशित सबसे अधिक बिकने वाली पुस्तक

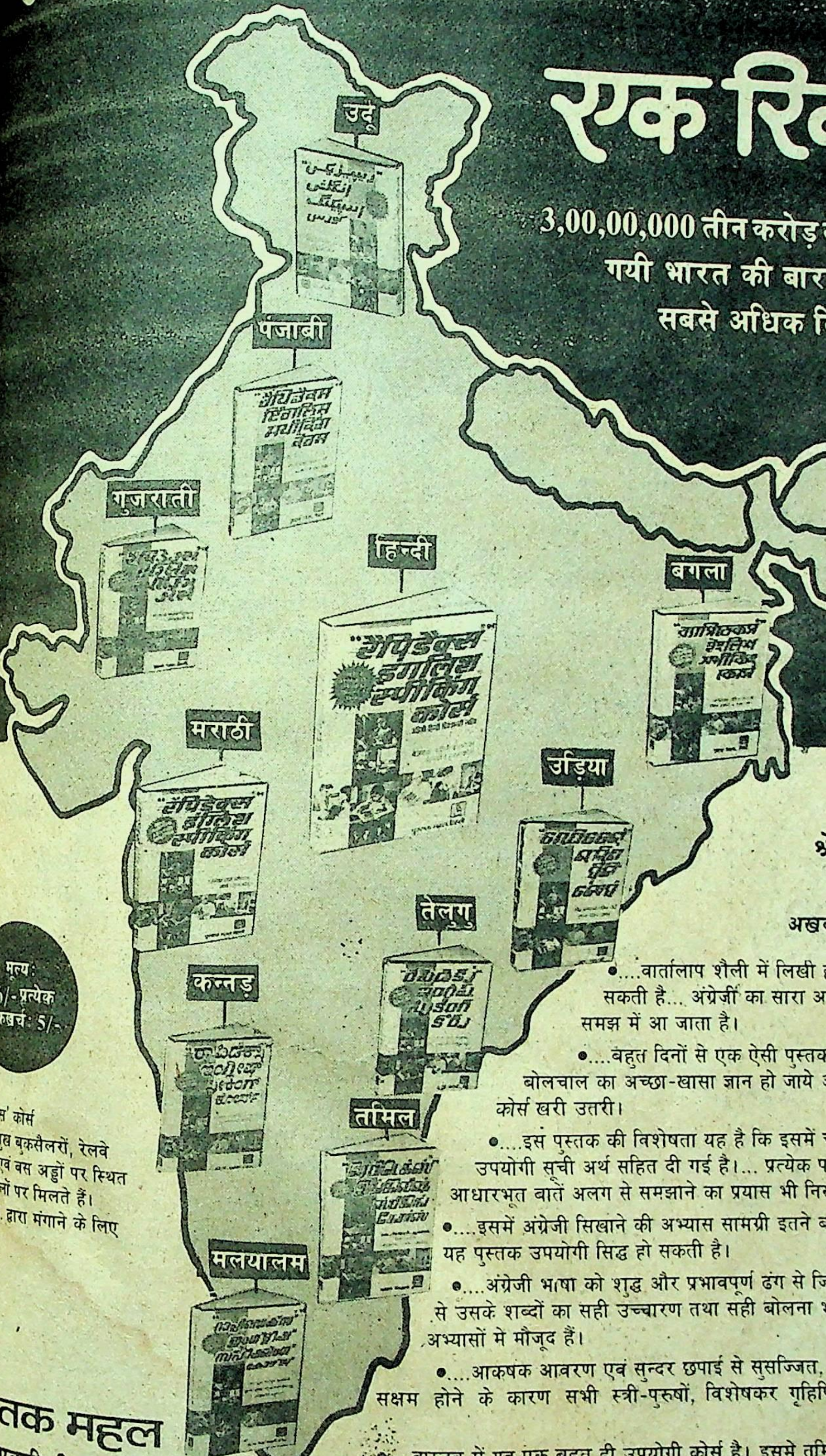

सभी कोर्सों में बड़े साइज के 400 से अधिक पृष्ठ

मूल्य: 36/- प्रत्येक
डाकखर्च: 5/-

'रैपिडैक्स' कोर्स
...प्रमुख बुकसैलरों, रेलवे ...न एवं बस अड्डों पर स्थित ...स्टॉलों पर मिलते हैं।
...वी.पी. द्वारा मंगाने के लिए
...:-

श्रेष्ठता की कसौटी

देशभर के प्रसिद्ध अखबारों की सम्मितियों में से कुछ के अंश:-

●....वार्तालाप शैली में लिखी हुई यह पुस्तक अंग्रेजी बोलना आसानी से सिखा सकती है... अंग्रेज़ी का सारा आवश्यक ग्रामर भी इस पुस्तक को पढ़कर स्वत समझ में आ जाता है। **—नवभारत टाइम्स, दिल्ली**

●....बहुत दिनों से एक ऐसी पुस्तक की तलाश थी, जिसको पढ़ते-पढ़ते ही अंग्रेजी बोलचाल का अच्छा-खासा ज्ञान हो जाये और इस कसौटी पर रैपिडैक्स इंगलिश स्पीकिंग कोर्स खरी उतरी। **—बम्बई समाचार, बम्बई**

●....इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें चुने हुए, दैनिक उपयोग में आने वाले शब्दों की उपयोगी सूची अर्थ सहित दी गई है।... प्रत्येक पाठ के अन्त में भाषा व व्याकरण सम्बन्धी कुछ आधारभूत बातें अलग से समझाने का प्रयास भी निस्संदेह प्रशंसनीय है। **—जुगान्तर, कलकत्ता**

●....इसमें अंग्रेजी सिखाने की अभ्यास सामग्री इतने बढ़िया ढंग से दी गई है कि कान्वेंट स्कूलों में भी यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। **—दिनामानी, मद्रास**

●....अंग्रेजी भाषा को शुद्ध और प्रभावपूर्ण ढंग से जितना लिखना जरूरी है, उतने ही प्रभावपूर्ण ढंग से उसके शब्दों का सही उच्चारण तथा सही बोलना भी जरूरी है और ये सब गुण पुस्तक के क्रमवार अभ्यासों मे मौजूद हैं। **—गुजरात मित्र, सूरत**

●....आकर्षक आवरण एवं सुन्दर छपाई से सुसज्जित, यह पुस्तक अल्प समय में ही अंग्रेजी सिखाने में सक्षम होने के कारण सभी स्त्री-पुरुषों, विशेषकर गृहिणियों के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगी। **—डेक्कन क्रोनिकल**

●....वास्तव में यह एक बहुत ही उपयोगी कोर्स है। इसमे तमिल जानने वाले बगैर किसी परेशानी के ग्रेजुएट जैसी अंग्रेजी बोल सकते हैं। **—सण्डे स्टैण्डर्ड, मद्रास**

●....रैपिडैक्स कोर्स ही एकमात्र ऐसा विस्तृत कोर्स है, जो हर किसी को 60 दिन में अंग्रेजी बोलना व लिखना बिना किसी शिक्षक या स्कूल में गये, सिखाने में सक्षम है। **—नागपुर टाइम्स, नागपुर**

●....अंग्रेजी सीखने के लिए इसका क्रमवार अभ्यास अपनी एक विशेषता है। **—गुजरात समाचार, अहमदाबाद**

...स्तक महल
...री बावली, दिल्ली-110006.
...-B, नेताजी सुभाष मार्ग,
...गंज, नई दिल्ली-110002.
...2, मिशन रोड, बंगलौर-560027

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

''तरह-तरह की यादें, अनगिनत अधूरे चित्र. इन्हीं अधूरे चित्रों, संस्कारों, अनुभवों की पूंजी को लेकर मैं साहित्य की दहलीज पर आ खड़ा हुआ था. शायद सभी ऐसे लोग जो परिस्थितियों द्वारा धकेले जाते हैं, जो व्यवहार की दुनिया में निकम्मे साबित होते हैं, अपने अरमान पूरे करने के लिए साहित्य का दरवाजा खटखटाते हैं...''

चौंकिये नहीं, यह कहना है उम्र के पिचहत्तर वर्ष पूरे कर छिहत्तरवें वर्ष में दस्तक दे रहे हिंदी के वरिष्ठ कथाकार भीष्म साहनी का. इस विशिष्ट अवसर पर सारिका की ओर से प्रस्तुत है एक संग्रहणीय अंक....

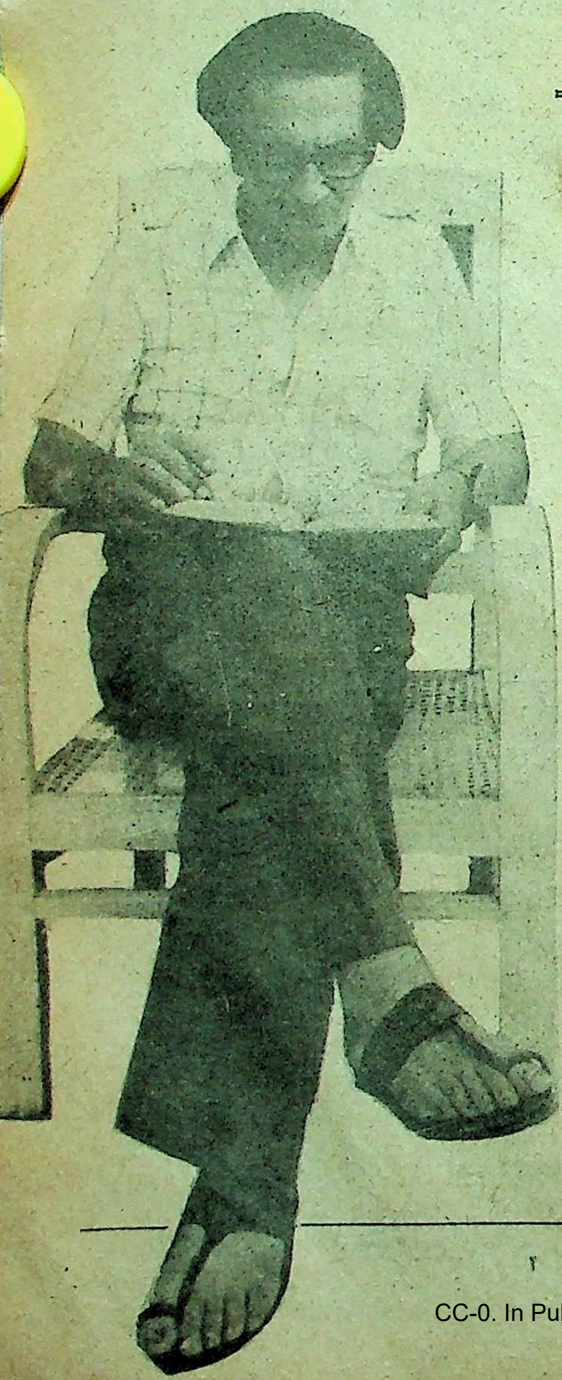

भीष्म साहनी की हीरक जयंती पर विशेष

इस अंक में आप पढ़ेंगे....

- ☐ उम्र के इस पड़ाव पर आकर अपनी जिंदगी के पिछले सफों को पलट रहे हैं भीष्म साहनी, इस अंक के लिए खास तौर पर लिखी आत्मरचना में.
- ☐ हाल ही में भीष्म जी से लिया गया महत्वपूर्ण साक्षात्कार.
- ☐ पहली कहानी की दास्तान जो फिर न मिल सकी.
- ☐ कथाकार भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, शानी और डा. नामवर सिंह की नजर में.
- ☐ 'मेरे पति भीष्म साहनी' : श्रीमती साहनी से बातचीत.
- ☐ भीष्म जी की पहली कहानी.
- ☐ कहानी जो अविस्मरणीय बन गयी....
- ☐ भीष्म साहनी की कथायात्रा पर राजकुमार सैनी का आलेख.
- ☐ भीष्म साहनी की कृतियों के मंचन के दौरान हुए अनुभव सुना रहे हैं निर्देशक, अभिनेता व अभिनेत्रियां.
- ☐ बलराज साहनी की कलम से.
- ☐ अलबम से : दुर्लभ चित्रों का मोहक संसार

यानी एक रचनाकार से सीधा साक्षात्कार

साथ में

श्रवण कुमार की संपूर्ण उपन्यासिका

गणित

सारिका

अगस्त : १९९०

समय, समाज, साहित्य और संस्कृति की पहचान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

समय, समाज, संस्कृति और साहित्य की पहचान

वर्ष : ३०, अंक : ४५८, जुलाई, १९९०

प्रकाशक:
रमेश चंद्र

संपादक:
अवधनारायण मुद्गल

उप संपादक:
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
धीरेंद्र जैन

सीनियर मैनेजर विज्ञापन:
आर.डी. रस्तोगी

मैनेजर रिस्पांस:
डा. राजेंद्रपाल जैन

सीनियर ऑफीसर रिस्पांस:
शबनम अग्रवाल

रिस्पांस सहयोगी:
अशोक माथुर

प्रोडक्शन:
हरेंद्र सिंह नेगी
उदेश कुमार

अंक सज्जा
हेम ज्योतिका

संपादकीय, विज्ञापन, प्रसार एवं व्यवस्था:
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110 002
दूरभाष : 3271911

टाइम्स हाउस, 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277 (20 लाइनें)

अन्य कार्यालय:
डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग, बंबई-400 001
फ्रेजर रोड, पटना
अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड, जयपुर
33 आश्रम रोड, अहमदाबाद-1
13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस, ईस्ट, कलकत्ता-700 062
'गंगा-गृह' तीसरी मंजिल, 6 डी नवाबवक्कम हाई रोड, मद्रास-600 034
88 महात्मागांधी रोड, बंगलूर
407-1 तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411 002

उपन्यासिका

१२. पड़ाव :
कुसुम चतुर्वेदी

उस दिन सीमांत के जाने के बाद अन्विता को लगा कि उसका अस्तित्व जैसे समूचा हिल गया है. सीमांत के एक वाक्य ने उसे भीतर तक पिघला दिया है. देवी चोट, अपना अकेलापन, भविष्य की अनिश्चितता, निकटतम संबंधियों के व्यवहार ने उसे अनुभूतिशून्य सा बना दिया था. यह बच्चा उसके जीवन की समूची जड़ता को अपने एक वाक्य से तोड़ कर चला गया है. रात तक वह कितनी बार रोती रही... बहुत दिनों बाद उसे इतना रोना आया था.

यह लड़का भी अजीब है. एक ओर तो इतनी संवेदनपूर्ण और समझदारी की बातें करने वाला और दूसरी ओर बेहद चुलबुला. कॉलबेल बजाकर छिप जायेगा या लगातार बजाता रहेगा. एक दिन तो अन्विता खीज गयी थी, ''बजाते रहो घंटी. मैं दरवाजा नहीं खोलूंगी.. शैतान कहीं के.''

आवरण पारदर्शी
एस.एस. रतन
आवरण सज्जा
सुधीर गुप्ता

कथा रचनाएं

२६. मस्सा :
यासुनारी कावाबाता
३४. पहली बार / आखिरी बार :
शशिप्रभा शास्त्री
३७. अवरुद्ध :
गोविंद मिश्र
४०. सात समुद्र पार
सुदर्शन नारंग
४५. गाजी :
गौरीशंकर कपूर
५०. कोई दूसरा चाणक्य :
केवल सूद
५२. संघम् शरणम् गच्छामि :
दानिश
५८. यह बंबई है :
प्रबोध जोशी
६०. छल :
प्रदीप पंत
७८. छोटा बकुलपुर का यात्री :
मानिक बंद्योपाध्याय

धारावाही आयोजन

६६. लाल पसीना :
अभिमन्यु अनत
७५. पुरुषोत्तम :
भगवतीशरण मिश्र

कविता

३१. गुलमुहर :
रामदरश मिश्र

विशिष्ट आयोजन

३२. फाइल पढ़ि-पढ़ि.... :
गोपाल चतुर्वेदी
६३. आधे पहुंचकर :
गोविंद मिश्र
७१. कैसे-कैसे लोग :
से.रा. यात्री
७२. आलोचना की पुनर्यात्रा :
सुधीर पचौरी
७४. पुस्तक प्रेमी :
गोपाल शेखरन
८२. माटी की धड़कन को...
डा. नारायणदत्त पालीवाल

स्थायी स्तंभ

४. कथा पहेली
८. आपकी बात
८४. कृतियां
८७. पत्रिकाएं
८८. हलचल

कॉपीराइट ©1990 बैनेट कोलमैन एंड कंपनी लि., विश्वभर में सर्वाधिकार सुरक्षित, बिना पूर्वानुमति के सामग्री का किसी भी रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण वर्जित.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

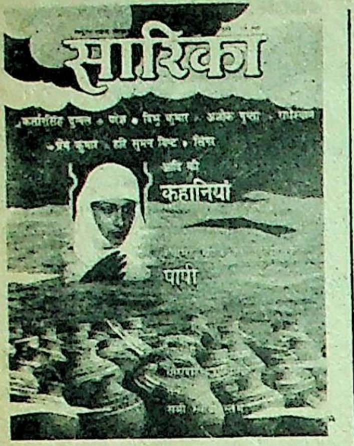

शहादत और शहादत

सारिका का मई ९० अंक कुछेक रचनाओं के कारण अच्छा बन पड़ा है, जिनमें रूपसिंह चंदेल की उपन्यासिका 'पापी' और हरिसुमन बिष्ट की कहानी 'फिर से' खासतौर पर उल्लेखनीय हैं. वैसे 'पापी' का कथ्य कोई नया नहीं है, फिर भी भाषा, प्रवाह और प्रभाव के कारण यह नवीनता का एहसास दिला जाती है. ग्रामीण शब्दों एवं परिवेश का चित्रात्मक वर्णन इस उपन्यास को विशिष्ट बनाता है.

अंक की जिस कहानी ने सर्वाधिक संतोष दिया, वह है 'फिर से'. पंजाब समस्या पर इन दिनों कहानियों की बाढ़-सी आयी हुई लगती है. ऑपरेशन ब्लूस्टार के प्रसंग को, इस कहानी में चीन की लड़ाई से जोड़कर एक तुलनात्मक कथा भूमि दी गयी है. सेना के जवानों की मृत्यु अगर चीन और पाकिस्तान की लड़ाई में हुई थी, तो आपरेशन ब्लू स्टार में भी, मगर दोनों मौतों में फर्क था. देश की रक्षार्थ चीन की लड़ाई में लड़ते हुए जवानों की जब मृत्यु हुई थी, तब वे जवान शहीद कहलाये थे, मगर ब्लू स्टार में दिवंगत हुए जवान?...क्या भाई के हाथों भाई की मौत को भी शहादत कहा जा सकता है? यही कहा है 'फिर से' के कथाकार ने. कहने का अंदाज, भाषा और ऑपरेशन ब्लू स्टार में दिवंगत हुए जवानों के प्रति अपनी गहरी भावना को व्यक्त करते हुए रचनाकार सही अर्थों में इस कहानी के माध्यम से उन जवानों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और खालिस्तान समर्थक तमाम लोगों को यह एहसास दिलाने की चेष्टा करते हैं कि अगर मारना ही है, तो दुश्मनों को मारो ताकि तुम्हारी मौत भी हो जाय तो वह शहादत कहलाये...भाई की हत्या करके तो तुम हत्यारे ही सिद्ध हो सकते हो.

● **रतन वर्मा,**
हजारीबाग (बिहार)

विपन्न पापी

सुषम बेदी ने वर्तमान समाज का अक्स अपनी कमनीय रचना 'चिड़िया और चील' के जरिए बड़ी नफासत से उकेरा.

घर अब सराय में रूपांतरित हो चले हैं. सभी अभिभावक बच्चों में अपनी अभिरुचियां बलात थोपते हैं, उन्हें एक लीक पर चलने को बाध्य करते हैं. उनकी मंशाओं को ढांपते हैं तो फलतः उसी तरह के व्यक्तित्व का सृजन होता है जो बेदी ने अपनी रचना 'चिड़िया और चील' में किया है. यह रचना रूमानियत, असुरक्षा व ख्याली पुलावों के वृत्तों में आबद्ध कुंठित चिड़िया की मनोदशा हेतु एक घर की टूटती जिम्मेदारियों को अपराधी ठहराती है जो बजा है. वीडियो, टी.वी. की नायाब पैठ घर के सदस्यों को घर के प्रति प्रतिबद्धता, निष्ठा से उत्तरोत्तर दूर ले जा रही है. परंपराएं, रूढ़ियां, मेलजोल, स्नेह सब कुछ न जाने कहां उड़न छू हो गये. रिश्ते-नाते की मिठास इंसान के व्यक्तित्व को संबल देती है उसे आत्मविश्वास से परिपूरित रखती है पर अब तो सारे रिश्ते इन संचार माध्यमों में समा गये हैं. वैसे हमारी शिक्षा प्रणाली की खामियां, जर्जर सामाजिक ढांचा, नैतिक मूल्यों का पराभव का समवेत बल क्या इतना ताकतवर नहीं कि वो किसी चिड़िया को परवाज करने से महरूम रखे?

इसी अंक में अशोक गुप्ता की 'त्रिभुवन गाथा', काबिल-ए-दीद रही. उनका यह पृष्ठांकित करना कि ''यूनियन मामूली आदमियों के हित में मामूली आदमियों के ही दम पर चलती है. भले ही उसे चलाते हैं गैर मामूली मक्कार लोग...'' उक्त कथन क्या वर्तमान राजीनतिक दलों व वर्तमान शासन के परिप्रेक्ष्य में भी समीचीन नहीं? त्रिभुवन कथा कथनी और करनी के भेद को लोप करने को प्रेरित करती है पर क्या ऐसा होना संभव है? रूपसिंह चंदेल का उपन्यास 'पापी' आद्योपांत जीवंत बना रहा, इसका शीर्षक कितना गजब का रखा है—ठीक ही तो है—हर विपन्न 'पापी' होता है, उसे ताउम्र अपनी मुफलिसी के अपराध की तल्ख सजा भुगतनी होती है.

● **ललिता कुमारी शर्मा,**
शेखावटी (राजस्थान)

जीवन से जुड़ी कथा

प्रेमकुमार महोदय ने अपनी कहानी 'श्रद्धा के ताजमहल' में संवेदनाओं को आदर्श का चोला पहनाने का सफल प्रयास किया है. इस कहानी का यकीनन या तो स्वयं लेखक के या उनके किसी निकट संबंधी के जीवन से गहरा संबंध है. परिस्थिति के चरम पर पहुंच जाने की स्थिति में कोई क्या कर सकता है उसे महज एक व्यक्ति के निर्णय व कृत्य के माध्यम से प्रतिबिंबित करना पूर्वाग्रह ग्रस्तता व स्वयं के फैसले का आभास कराना है और वैसे भी कहानी का नायक समाज के एक बहुत छोटे से अंश का प्रतिनिधित्व कर रहा क्योंकि गतिकी ने तकरीबन बड़े से बड़े कर्तव्यनिष्ठ एवं बुद्धिजीवी को संवेदन पर नियंत्रण खोने को विवश कर दिया है. फिर ऐसी परिस्थितियों में किये गये फैसले पर स्थानीय परिस्थिति, सामाजिक मूल्यों की तीक्ष्णता, संबद्ध व्यक्ति व उसके ऊपर प्रभाव रखनेवालों के तत्वों से भी बेतरह प्रभावित होती है. प्रोफेसर भी यदि अहंवादी या हवस का पुजारी हो तो इस परिस्थिति का फैसला बिल्कुल अलग हो सकता है. आदर्श को प्रतिबिंबित करने वाला फैसला सर्वदा सबके लिए सम्माननीय नहीं होता क्योंकि यदि प्रेमिका के अव्यक्त प्रेम को शांत करने के लिए (भले ही यह उसके कल्याण के लिए हो) यदि ये फैसला किया जाये तो भी दो राहें बनती हैं. पहली यदि प्रेमिका भविष्य में कहीं और सुखी है तो वह फैसले की आदर्शवादिता का मूल्यांकन कर सकती है परंतु यदि भविष्य में परिस्थितियां उसके लिए नासूर बनने लगें तो फैसले के मूल में कारण तलाश करते हुए वह फैसले को बेहूदा करार दे सकती है. तात्पर्य यह है कि लेखक ने एक आम परिस्थिति में एक खास व्यक्ति के निर्णय को उजागर किया है.

● **जयंत चक्रवर्ती,**
पटना सिटी

संस्कारों पर प्रहार

'सारिका' कई वर्षों से पढ़ रही हूं, कई बार प्रतिक्रिया व्यक्त करने का विचार आता रहा पर यह अंक पढ़ने के बाद अपने विवेक को अधिक दबा न सकी.

इसमें डा. परेश की 'दीपिका' में परिवेश में सर्वत्र व्याप्त युद्ध की कसक है तो दूसरी ओर अंतर्मन के द्वंद्व की मंद-मंद लौ प्रज्ज्वलित हो रही है और साथ ही नारी के प्रति सम्मान भाव की अभिव्यक्ति है.

'पापी' उपन्यासिका में गरीब बंधुआ मजदूर के जीवन की विवशता की छटपटाहट है. 'श्रद्धा का ताजमहल' जहां एक ओर नारी हृदय का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करती है तो साथ ही अध्यापक का यह कहना—''मेरे एक कदम के आधार पर मेरे पूरे वर्ग का मूल्यांकन तुम उम्र भर करती रहोगी. मेरे कारण तुम्हें सारी अध्यापक जाति से घृणा या श्रद्धा हो सकती है.'' पुरुष या अध्यापक वर्ग को सचेत करता है.

'चिड़िया और चील' कहानी में पाश्चात्य परिवेश में पली जिस चिड़िया को इस प्रवासी लेखिका ने दर्शाया है, उसका वह सूक्ष्म विवेचन, भारतीय संस्कारों को झंझोड़ देता है. लेखिका ने अंत में उसे फुदकती नन्हीं चिड़िया से चील

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाकर, उस परिवेश की अवश्यंभावी परिणति की ओर संकेत दिया है. इसके अतिरिक्त लघुकथाएं रोजमर्रा की जिंदगी से रूबरू कराती कथाएं हैं.

● प्रेमदुआ 'सुधा',
नयी दिल्ली

सारिका मेरी प्रेमिका

जब मैंने सारिका की कीमत १७.५० नेपाली रुपयों में अदा की तो हमें लगा सचमुच इसकी कीमत बढ़ चुकी है.

हमें तब अफसोस हुआ जब पूरी अप्रैल की सारिका पढ़ने के बाद मेरे दिल में कोई स्थायी छाप नहीं बनी. जबकि अक्सर इसे पढ़ने के बाद एक नायाब सुकून मिलता था. पुरस्कृत कहानियों के बावजूद इसमें पता नहीं कौन-सी कमी महसूस होती है, फिर भी दो-चार कहानियां एवं लघुकथाएं पढ़कर बुझते दिलों को एक नया रस मिला. केदारनाथ सिंह की कविता 'नमक' मेरे मन को काफी भायी जिसे हम दुबारा पढ़ने से भी नहीं चूके.

संपादक महोदय, शायद 'सारिका' मेरी एक प्रेमिका है, इससे लगाव मेरा हमेशा रहा है. मैं चाहता हूं आप बदलती दुनिया की बिखरती मधुर गजलों और कहानियों को इसके आगोश में एक छोटी-सी जगह दें. फिर भी हमें पूरा यकीन है कि आनेवाला हर एक अंक काफी रोचक और मनोरंजन से भरपूर होगा.

● अनंत छिमेकी,
रत्नगर (नेपाल)

लघुकथाएं छायी रहीं

मैं स्पष्टत: कहना चाहूंगा, जहां सारिका को लेकर कुछ प्रसन्नताएं हैं, अपनी सुखद अनुभूतियां हैं और अपनत्व है वहीं दूसरी ओर पिछले कुछ महीनों से शिकायतें भी हैं. 'सारिका' से पाठकों का (मैं समझता हूं एक अच्छा-खासा बौद्धिक समाज है.) जो पारिवारिक लगाव है, वह क्रमश: धूमिल होता जा रहा है. प्रथमत: मुख पृष्ठ को लेकर ही मेरे एक मित्र ने मेरे हाथ में सारिका देखकर दूर से पुकारते हुए कहा, "भाई मनोहर कहानियां है क्या, जरा दिखाना," मैं झेंप गया. जब हम इसे समय समाज संस्कृति और साहित्य की कहें तो इसका मुख पृष्ठ भी लघु साहित्यिक पत्रिकाओं की तरह कुछ कलात्मक रेखाचित्रित या बिल्कुल सादा होना चाहिए. भीतर के पृष्ठों में आप जो बौद्धिक रेखाचित्र छापते हैं वैसा ही मुखपृष्ठ भी हो.

मई, ९० अंक की कहानियां लो स्टैंडर्ड की रहीं. मात्र दो तीन कहानियों को छोड़कर. परंतु इस माह लघुकथाएं छायी रहीं. 'देवी की मौत', 'चड्डियां', 'जुर्म', 'सिर्फ एक रोटी' आदि कथाएं पूर्णतया जीवंत बन गयीं. मेरा विश्वास है आप अगले अंकों में मुखपृष्ठ और कहानियों पर ध्यान देंगे.

● कुंदन सिद्धार्थ,
नरकटियागंज (बिहार)

नामों का ढोल

सारिका का अप्रैल ९० अंक पढ़कर बहुत निराश हुआ. रचनाओं में दम कम था रचनाकारों के नामों की, भारी-भरकम मोहर अधिक थी. अधिकतर रचनाओं में लेखनी से अधिक माडलों के चित्र ही हावी थे फिर इन चित्रों के ऊपर नीचे अगल बगल इतना स्थान छोड़कर उसे बर्बाद करने का क्या तात्पर्य है. आजकल तो कागज की कीमत बहुत बढ़ गयी है. पूरे अंक में एक भी लघुकथा स्तरीय नहीं है और पूर्व में ऐसी लघुकथाएं सारिका में कभी स्थान न पातीं. अगर सारिका ऐसी पत्रिका की यह हालत है तो हिंदी साहित्य का वर्तमान और भविष्य अंधकारमय ही लगता है. पूरी पत्रिका में एक ही कहानी अच्छी दिलचस्प और स्तरीय है. 'बहका हुआ आदमी'. 'दिशाहीन' तो वास्तव में दिशाहीन रचना है, लगता है केवल नाम से प्रभावित होकर आपने प्रकाशित कर दिया है. शैली और ट्रीटमेंट बचकाना ही कहा जायेगा.

स्थायी स्तंभ गनीमत है कि सभी अच्छे और ज्ञानवर्धक हैं. नागार्जुन से बातचीत रोचक है. 'कथा समीक्षा की पुनर्यात्रा' और 'परिचर्चा' गंभीर सामयिक विषयों पर यथोचित प्रकाश डालते हैं. रवींद्रनाथ त्यागी तो खैर जाने-माने व्यंग्यकार हैं ही. गनीमत है कि उनकी कलम में अभी भी वही पैनापन है. ये केवल औरों की भांति नाम की मोहर से ही नहीं काम चला रहे हैं.

अनुरोध है कि केवल नामों का ढोल न बजाकर कुछ अन्य लेखकों, युवा प्रतिभाशाली लेखकों को भी प्रकाशित कर उन्हें प्रोत्साहित करें जो खासा अच्छा लिख रहे हैं, पुरस्कृत लेखकों से अधिक अच्छा लिख रहे हैं.

● डॉ. प्रमोद कुमार सिंह,
पटना (बिहार)

एक पठनीय पत्रिका

सारिका एक पठनीय पत्रिका है बीस बाईस वर्षों से मैं इसका पाठक हूं. गत साल दिसंबर तक तो यह दुर्लभ पत्रिका राजधानी में 'नालंदा' पुस्तकालय से प्राप्त हो जाती थी मगर फिलहाल वह वहां भी अप्राप्य है. यदि आप से कहूं कि 'सारिका' पढ़े बिना मैं अपने आप को यतीम-सा महसूसता हूं तो आप मेरी इस भावना को अतिशयोक्ति कहेंगे. इस पत्रिका को प्राप्त करने के लिए अब बस एक ही उपाय है कि उसे सीधे कार्यालय से ही मंगाया जाय.

● लोचन विदेशी, मॉरीशस

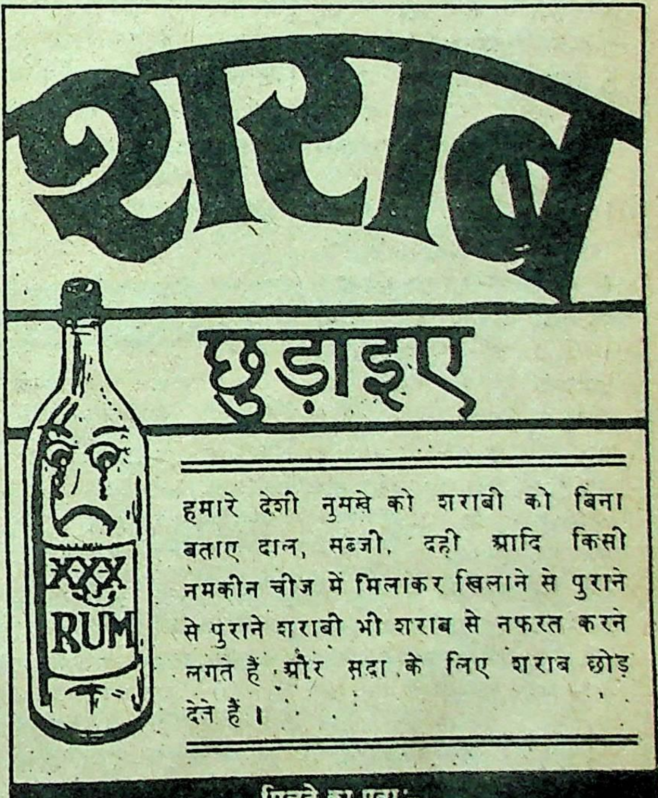

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमचंद के बहाने दूरदर्शन की बीमार मानसिकता

युवा पत्रकार श्री राजेश कालिया ने पी-११ दीवान पुरम् कोओपरेटिव हाउसिंग कालोनी, कोट्टयम, केरल से एक पत्र भेजा है. पत्र में हिंदी के महानतम कथा शिल्पी स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' के केरल दूरदर्शन द्वारा प्रसारित नाट्य रूपांतर का हवाला दिया गया है. इस नाट्य रूपांतर ने दूरदर्शनीय अश्लीलता की तमाम सीमाएं तोड़ दी हैं. हम उस पत्र को ज्यों का त्यों अपने पाठकों और दूरदर्शन अधिकारियों तथा भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्री तक पहुंचाना चाहते हैं;

पत्र इस प्रकार है :—

''महोदय,

मैं आपकी सम्मानित पत्रिका द्वारा केंद्रीय प्रसारण मंत्री एवं दूरदर्शन अधिकारियों का ध्यान तिरूवनंतपुरम दूरदर्शन द्वारा घटिया एवं विकृत मानसिकता के नाट्य कार्यक्रमों पर आकर्षित कराना चाहता हूं. दूरदर्शन द्वारा प्रसारित नाटक न केवल दर्शकों को ही दिग्भ्रमित कर रहे हैं वरन् महान लेखकों के नाम पर घटिया प्रस्तुतीकरण कर उन पर भी कलंक आरोपित कर रहे हैं.

२१ मई को केरल दूरदर्शन द्वारा मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' पर आधारित एक नाटक प्रसारित किया गया. उसकी शुरुआत इस प्रकार थी—दो युवा लड़के दिखायी पड़ते हैं. एक दूसरे से कहता है—

पहला — तुम्हें पता है इस कारखाने में काम करने वाले सभी लोग अपनी बहनों के साथ करते हैं.

दूसरा — हां वे सभी किस्मत वाले हैं. हम लोग तो गये गुजरे हैं. तुम्हारे घर में सुभांगी दीदी हैं. तुमने उनके साथ किया है....

पहला — नहीं. तुम जानते हो कि वह मेरे पिता के भाई की बेटी है.

दूसरा — मैं कोशिश करूं.

पहला — हां, कर लो.

दूसरा — मैं उन्हें आवाज देता हूं.

[पहला घर की सीढ़ियों के नीचे छुप जाता है]

दूसरा — सुभांगी दीदी... सुभांगी दीदी.

[एक लड़की घर से बाहर निकलती है. उसके हाथ में लैंप है.]

सुभांगी — कौन है? ओह तुम हो...मैं देख रही हूं कि आजकल तुम बहुत बिगड़ गये हो. मैंने तुम्हें कारखाने के मजदूरों के साथ घूमते और बीड़ी पीते देखा है. यह अच्छी बात नहीं है. यह सब आदतें छोड़ दो.

दूसरा — [चेहरे पर वासनात्मक उत्तेजना दिखायी जाती है] लेकिन दीदी मैं बड़ा हो गया हूं.

[लड़की आंगन में बैठ जाती है. दूसरा लड़का पीछे से एक-एक कदम रखता उसके पास आता है और अपने हाथ उसके कंधे पर रख देता है.]

दूसरा लड़का — [उत्तेजना में कांप रहा है] सुभांगी दीदी....

सुभांगी — हां, क्या बात है?

दूसरा लड़का —[बहुत अधिक उत्तेजित हो गया है. उसकी आवाज में वासनात्मक उत्तेजना है] सुभांगी दीदी. लड़की को उसकी उत्तेजना का आभास हो जाता है. वह झटके से खड़ी होकर उस पर चिल्लाती है और घर में अंदर चली जाती है.

[पहला लड़का बाहर आ जाता है]

दूसरा लड़का — मैं घर के भीतर जाकर उसके साथ कर लूं.

दूसरा लड़का — हां, चले जाओ और कर लो.

[दूसरा लड़का घर के अंदर जाता है—पहला बरामदे में खड़ा होकर खिड़की से अंदर झांकता है]

[अचानक अंदर से शोर सुनायी पड़ता है. दूसरा लड़का भागता हुआ निकलता है और उसके पीछे सुभांगी गालियां देते हुए पीछा करती है.]

इसी समय दो व्यक्ति आते हैं. एक लड़की का पिता है. उसे जब पता चलता है कि क्या हुआ है तो वह लड़के को पकड़ कर मारता है. इस दौरान लड़के की मां आ जाती है—वह अपने लड़के को निर्दोष कहती है और लड़की को गाली देती है कि यह तो वेश्या है. इस बीच लड़के का बाप आ जाता है. वह भी लड़की को वेश्या कहते हुए लड़के को प्यार के साथ घर के अंदर ले जाता है.

सो यह थी नाटक की शुरुआत. क्या इससे अधिक अश्लील प्रदर्शन दिल्ली के सिनेमाहालों में सुबह के शो में चलने वाली फिल्मों में भी होता है! और तिरूवनंतपुरम दूरदर्शन द्वारा कहा गया कि यह नाटक श्री प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' पर आधारित था. जहां तक मेरी सोच है कि उपरोक्त वर्णन 'रंगभूमि' में है ही नहीं.

क्या आप

अपने घर को कम खर्च में सजाना चाहते हैं. कमरों में सही प्रकार की फर्नीचर सैटिंग चाहते हैं. परदों, दीवारों व फर्नीचर में सही तालमेल चाहते हैं. हर कमरे में बहुपयोगी अलमारियां चाहते हैं. सही प्रकार की योजनाओं की जानकारी चाहते हैं तो हिन्दी में पत्राचार द्वारा इन्टीरियर डेकोरेशन सीखिए

इन्टीरियर डेकोरेशन

(सर्टिफिकेट एवं हॉबी कोर्स)

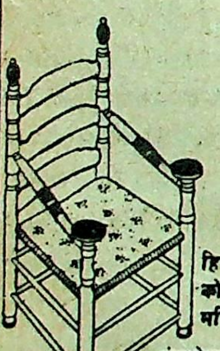

गृहसज्जा का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करें.
सुविधानुसार घर बैठे खाली समय में अध्ययन करें.
आसान भाषा में विशेषज्ञों द्वारा तैयार पाठ्यक्रम
मंहगी पुस्तकें खरीदने की जरूरत नहीं.
कोर्स फीस का आसान किश्तों में भुगतान
कोई तकनीकी न्यूनतम योग्यता आवश्यक नहीं.
अपनी योग्यता बढ़ाएं तथा घर भी सजाएं
बेडरूम, ड्राइंग/डाइनिंग, रसोईघर, आंगन आदि की सजावट स्वयं कम खर्च में करें.
हिन्दी में पत्राचार द्वारा इन्टीरियर डेकोरेशन का एकमात्र कोर्स
महिलाओं, गृहिणीयों, एवं छात्र-छात्राओं के लिए सर्वोत्तम.
रंगयोजनाओं, बहुपयोगी बिल्ट-इन फर्नीचर, परदे, प्रकाश व्यवस्था, नयी सजावट सामग्री, पौधों, फर्नीचर-अरेन्जमेन्ट, कपबोर्ड तथा अलमारियों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी

विवरण के लिए जवाबी लिफाफा भेजें :-

AID

एकैडमी ऑफ इन्टीरियर डेकोरेशन
10A/14 शक्ति नगर, दिल्ली-110007

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पत्र हमें १९ जून, ९० को मिला है और इसका प्रकाशन जुलाई अंक में ही सबसे उपयुक्त लगा है क्योंकि ३१ जुलाई को प्रेमचंद जी का ११०वां जन्मदिन है. और हम चाहते है कि 'सारिका' के विचारवान पाठक, भारत सरकार और दूरदर्शन के अधिकारीगण हिंदी के इस महानतम कथा शिल्पी और भारतीय संस्कृति एवं नैतिक मूल्यों के सशक्त पक्षधर की केरल दूरदर्शन द्वारा की जा रही इस अपराधपूर्ण छीछालेदर को देख और समझ सकें तथा दूरदर्शन की इस घटिया प्रवृत्ति के खिलाफ हमारे समस्त पाठक और लेखक सामूहिक रूप से अपनी सम्मिलित और जोरदार आवाज सरकार तथा दूरदर्शन अधिकारियों तक पहुंचा सकें.

शत प्रतिशत साक्षर और सबसे अधिक शिक्षित कहे जाने वाले प्रदेश केरल का दूरदर्शन यह व्यवहार सिर्फ हिंदी साहित्य और उसके साहित्यकारों के प्रति ही नहीं अपना रहा अपितु वहां की निजी भाषा मलयालम के साहित्य को भी विकृत और बीमार मानसिकता के ढंग से प्रस्तुत कर रहा है. इस संबंध में श्री कालिया ने एक उदाहरण इसी पत्र द्वारा और भी भेजा है. उसे भी आप देख पढ़ और समझ लीजिए.

''इसी प्रकार मलयालम धारावाहिक 'देवा मनोहारी नी' की कथा कहानी कुछ इस प्रकार थी—कुछ लोग एक लड़की के साथ बलात्कार करते हैं और बाद में अपनी राजनीतिक पहुंच और पैसे के बल पर खुद तो छूट ही जाते हैं—लड़की को पागल करार करवा कर पागल खाने में बंद करा देते हैं.

एक महिला पत्रकार पूरी कहानी अखबार में छपवाती है और एवज में न केवल नौकरी से निकलवा दी जाती है बल्कि एक शाम जब वह समुद्र के किनारे बैठी है वही बदमाश जाकर उसे गोली मार देते हैं..

दूरदर्शन के इस धारावाहिक से क्या युवा धनाद्य को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा कि जो मर्जी हो कर लो—बिगड़ेगा कुछ नहीं.

संपादक महोदय, केरल भारत में अकेला ऐसा प्रांत है जो शतप्रतिशत साक्षरता के बहुत करीब है. क्या ऐसी उपलब्धि के समय इसे दूरदर्शन का षड्यंत्र नहीं कहा जायेगा कि घटिया कार्यक्रम दिखलाकर पूरी मानसिकता को ही विकृत बना दिया जाये ताकि साक्षरता का व्यक्तित्व विकास से कोई लेना-देना ही न रह जाये.''

हम श्री कालिया के अंतिम पैराग्राफ में व्यक्त निष्कर्ष विचारों से पूरी तरह सहमत हैं. हमारी भारतीय संसद से भी प्रार्थना है कि वह दूरदर्शन की इस बीमार, घटिया और विकृत मानसिकता की भर्त्सना करे. यदि दूरदर्शन जैसे सशक्त संचार माध्यम साहित्य को इस तरह विकृत करते रहे तो भारतीय साहित्य का जा अहित होगा उससे कहीं अधिक अहित भारतीयता तथा भारत की महान दार्शनिक विचार-परंपरा का होगा.

—संपादक

साहित्यिक कृति पुरस्कार

दिल्ली के उपराज्यपाल एयर चीफ मार्शल (रि.) श्री अर्जुनसिंह द्वारा हिंदी अकादमी, दिल्ली की ओर से राजनिवास मे आयोजित एक समारोह में वर्ष ८७-८८ के लिए २८ लेखकों को उनकी कृतियों के लिए पुरस्कार भेंट किए गये. इस अवसर पर उन्होंने लेखकों को बधाई देते हुए कहा— 'समाज की छवि में निखार लाने और उसे नया रूप देने में साहित्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान होता है. इसलिए साहित्यकारों का सम्मान करने तथा उनकी कृतियों को पुरस्कृत करने से हमारा ही मान बढ़ता है. 'इस समारोह में उपराज्यपाल द्वारा कहानी की ५, कविता की ६, ५ उपन्यास, ३ हास्य-व्यंग्य और ९ विविध विषयों पर लिखी गयी कृतियों को पुरस्कृत किया गया. प्रत्येक पुरस्कृत लेखक को ११,१०१/- रु. की पुरस्कार राशि तथा एक प्रतीक चिह्न भेंट किया गया.

वरिष्ठ पत्रकार श्री अक्षय कुमार जैन ने सभी पुरस्कृत लेखकों को बधाई देते हुए कहा कि अकादमी की यह पुरस्कार योजना लेखकों की प्रतिभा की पहचान के रूप में बड़ी लोकप्रिय हुई है, इसे सभी ओर से सहयोग मिल रहा है.

प्रो. विजयेंद्र स्नातक ने सभी साहित्यकारों को बधाई दी और कहा कि हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में आप सभी लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान है. अतः आपको पुरस्कृत कर अकादमी ने अपने कर्तव्य का ही निर्वाह किया है.

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री भीष्म साहनी ने कहा कि इस प्रकार का सम्मान या पुरस्कार लेखक के उन मूल्यों और आदर्शों का होता है, जो उसके सृजन से संबद्ध हों. ऐसे कार्य से विशेष कर युवा पीढ़ी निश्चित रूप से प्रोत्साहित होती है.

इस अवसर पर जिन कृतियों को पुरस्कृत किया गया उनमें प्रमुख हैं: भीष्म साहनी, नरेंद्र कोहली, रमेश उपाध्याय, रामदरश मिश्र, रणवीर रांग्रा, प्रदीप पंत, जयदेव तनेजा, वीरेंद्र जैन, पद्मा सचदेव, डा. विनय, प्रणव कुमार वंद्योपाध्याय, विजयकिशोर मानव, बलराम, रूपसिंह चंदेल और भगवान सिंह. □

सद्य प्रकाशित — नवीन ग्रन्थ

स्वामी अभेदानन्द प्रणीत

मृत्यु के पार

मृत्यु होने पर मनुष्य कहां जाता है? किस अवस्था में रहता है? आत्मा का अस्तित्व है या नहीं? परलोक में जीव का अवस्थान किस प्रकार रहता है? यह सभी जिज्ञासा आदिम युग से ही मानव मन को आन्दोलित करती रही है। इस सभी की मीमांसा स्वामी अभेदानन्द महाराज ने अपने ग्रन्थ "मृत्यु के पार" में अपनी अभिज्ञता के आधार पर की है। इहलोक एवं परलोक के निगूढ़ रहस्यों का परिचय देते हुए उपरोक्त प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर इस ग्रन्थ में उन्होंने दिया है। मानव एवं प्राणीमात्र की आत्मा का विनाश नहीं है, किन्तु जीव भाव का क्रमविकास होता है एवं मृत्यु क्रम विकास की ही प्रतिछबि है। मनुष्य जन्म-मृत्यु के मध्य विचरण करते हुए ही परम रहस्यमय निज आत्मसत्ता की उपलब्धि करता है।

डिमाई साइज, पृष्ठ संख्या १६८ : — मूल्य— बीस रुपया।

प्रकाशक:
श्रीरामकृष्ण वेदांत मठ
१९-बी, राजाराजकृष्ण स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००६

नोट : पुस्तक मंगाने के लिए अपना पूरा नाम और पता पिनकोड सहित साफ-साफ अंग्रेजी में लिखें तथा रजिस्ट्री डाक खर्च समेत रु. २५ अग्रिम भेजें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ाव

□ कुसुम चतुर्वेदी

विविध पत्र-पत्रिकाओं में लगभग सौ कथा-रचनाएं प्रकाशित. कविताएं रेडियो रूपक भी लिखे हैं.

संप्रति: हिंदी विभागाध्यक्ष, महादेवी कॉलेज, देहरादून, (उ.प्र.)

संपर्क: 7/3, उग्र रोड, डालनवाला, देहरादून—248001

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतने दिनों से अन्विता ने अखबार देखा तक नहीं. पत्रिकाएं एकत्र हो गयी थीं. सहकर्मियों के मध्य अनेक खबरों की चर्चा से उसने जाना कि इतने दिनों उसने टेलिविजन पर समाचार तक नहीं सुने हैं. केवल एक काम उसके मन-प्राण पर इन दिनों छाया रहा. उसी के लिए सुबह उठते ही ४.३० शाम की प्रतीक्षा, फिर उस शाम से अगले दिन शाम के ४.३० बजने की प्रतीक्षा...

सीमांत को किसी परिचिता ने उसके पास भेज दिया था. उसे इंटर परीक्षा के लिए हिंदी पढ़नी थी. अनमने-आधे मन से वह उससे कहती रही थी कि नियम से रोज पढ़ने का समय उसके पास नहीं है, जहां कहीं उसे कठिनाई होगी, वहां वह बता देगी. सीमांत लाटानुप्रास, विभावना, विशेषोक्ति, द्रुतविलंबित, वंशस्थ जैसे नामों से चकरा गया था. पूछ रहा था, "आप मुझे यह सब कुछ पढ़ा दोगे?"

"मुझे तुम इंगलिश मीडियम वालों को पढ़ाना नहीं आता. 'इंद्र जिमि जंभ पर'—प्रारंभ करते ही पूछोगे, इंद्र कौन था—?" किसी संदर्भ को याद करके अन्विता ने कहा. वह यह भूल गयी कि इस बीच टी.वी. पर आने वाले पौराणिक सीरियलों से छात्रों के तत्संबंधी ज्ञान में पर्याप्त वृद्धि हुई है.

सीमांत ने तुरंत इंद्र के बारे में बताकर अन्विता को जैसे भरोसा दिलाया कि वैसा अज्ञानी छात्र वह नहीं है. उसे परेशान देखकर अन्विता को दया आ रही थी. सोचा, खाली ही तो है, उसे पढ़ा देगी तो उसका अकेलापन ही दूर होगा...कुछ दिनों के लिए ही सही.

हफ्ते भर सीमांत को पढ़ाकर अन्विता थक गयी. एक दिन में कितना पढ़ाना चाहिए इसका अभ्यास उसे नहीं था. कॉलेज में पढ़ाने का तो निश्चित समय होता है. शिष्य निस्संदेह रुचि और भक्ति से पढ़ता है. एक दिन पढ़ाने के बीच से दृष्टि उठाने पर उसे अपने को श्रद्धापूर्वक देखते हुए पाकर अन्विता के कुछ पूछने के पूर्व ही सीमांत से कहा, "आपको कुछ बहुत बड़ा व्यक्ति होना चाहिए था."

अन्विता हंसी, "बड़ी नहीं हूं क्या? उम्र में, कद में, अभाग्य में...सभी में तो..."

कहकर अन्विता को लगा अपने छात्र के सामने अभाग्य की बात उसे नहीं कहनी चाहिए थी.

उसने थोड़ा-सा पढ़ाया. वह फिर बोला, "मिस सेनगुप्ता को आप कैसे जानते हो ?"

वे मेरी नेबर मिसेज जलोटा के पास आती रहती हैं. कभी-कभार मुझसे भी उनकी भेंट हो जाती है. मेरा उनसे खास परिचय नहीं है."

"मैं उनका बहुत थैंकफुल हूं कि उन्होंने मुझे आपके पास भेज दिया."

अन्विता को मुंह पर अपनी प्रशंसा सुनने में अजब-सा लगा. थोड़ा हंसकर उसने आगे पढ़ाना जारी रखा.

"मैं घर में भी आपकी बात करता रहता हूं. इतने बड़े घर में आप अकेले रहते हो...आपके व्यवहार के कारण लोग आपके पास आते रहते हैं...आप इतनी मुसीबतों में हंस सकते हो..."

अन्विता ने क्षण भर रुककर उसकी बात सुनी और पढ़ाती रही.

"मेरा घर भी काफी बड़ा है, हम तीन-चार लोग ही रहते हैं. मैं बाद में भी आपके पास आया करूंगा. आ सकता हूं?"

अब अन्विता को उत्तर देना आवश्यक-सा हो गया, "जब तेरा जी करे, तब आ जाना. इस समय तो पढ़, तू बातें ज्यादा बनाता है, पढ़ता कम है. घर में तो तू बिल्कुल नहीं पढ़ता होगा? पढ़ा कर बैठकर...गाने सुनता रहता होगा..." सीमांत ने ही अपने संगीत-प्रेम की बात अन्विता को बतायी थी.

"मेरे यहां आने के बाद मिस सेनगुप्ता मिली थीं? मेरे बारे में कुछ कह रही थीं?"

अन्विता ने किताब बंद कर दी, "हां, वे कह रही थीं कि तू बहुत शैतान है. तुझे डांटकर रखूं...पर मैंने तो तुझे सिर पर चढ़ा रखा है..."

किताब बंद देखकर उसके चेहरे पर स्वस्ति उभरी, "मिस सेनगुप्ता बड़ी सख्त हैं. स्कूल में उन्होंने मेरा कान ऐसा खींचा था कि डॉक्टर को बुलाना पड़ा था. मेरा कसूर सिर्फ इतना था कि मैं डाइनिंग रूम में धीरे-धीरे खा रहा था, जबकि और बच्चे खाना खाकर चले गये थे...ऐसी हैं, तभी तो उनकी शादी नहीं हुई..." बचपन की बात वह ऐसे दुखी होकर बता रहा था मानों कल की घटना हो.

"तेरे जैसों को पढ़ाकर यही तो होगा. पहले तो शैतानी करते होगे, पिटने पर बद्दुआ देते होगे...अच्छा है जो मुझे इंगलिश मीडियम स्कूल में नहीं पढ़ाना पड़ा. मेरी छात्राएं मेरा सम्मान तो करती हैं."

वह बातों में अन्विता से आगे निकल जाना चाहता था, "डॉ. अन्विता श्रीकांत, आप अपने मुंह

अपने वैधव्य को झेलते, अपनी इकलौती संतान से दूर रहते उसके एकाकी जीवन में आया है यह नन्हा मित्र, आयु के इतने अंतर के बावजूद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मियां मिट्ठू बन रही हो.''

अन्विता चिढ़ गयी, ''तू ऐसे तो कहेगा ही, वाह रे कलियुगी चेले!'' माना आजकल एकलव्य तो कोई हो नहीं सकता पर तू तो सारे ज्ञान का रौब मेरे ही ऊपर डालने में लगा रहता है.''

सीमांत मुस्कराता रहा, ''मैं तो आपको चिढ़ा रहा था. आप भी महाभारत सीरियल की एक्जांपुल बहुत देते हो.''

अन्विता द्वारा महाभारत सीरियल की अपने संदर्भ में की बात उसने उसी पर पलट दी थी. वह दिनोंदिन मुंह-लगा होता जा रहा था.

कल रात को सीमांत ने उसे घर से फोन किया था. किसी बूढ़े की-सी आवाज बनाकर बोल रहा था, ''हलो, थ्री एट ट्रिपल थ्री...''

''हां, कौन साहब बोल रहे हैं?'' अन्विता ने पूछा.

''बताओ कौन?''

'बताइये' को 'बताओ' कहने से अन्विता समझ गयी सीमांत है. बच्चा है, आवाज बदलकर उसे धोखा देने का आनंद ले रहा है. अन्विता जान-बूझकर कुछ देर तक न समझने का अभिनय करती रही थी.

पढ़ाने के दौरान बीच-बीच में वह बोलता बहुत है. महाभारत सीरियल की बातें करना उसका खास शौक है. वह उसे सूरदास पढ़ा रही थी—'मोहन मांग्यो अपनो रूप...'

राधा का जिक्र आते ही उसने अपनी जानकारी बघारी, ''महाभारत में राधा को कृष्ण से बड़ा दिखाया गया है. कहते हैं कृष्ण पैदा हुए थे, तब राधा पालने के पास खड़ी थी. वे विवाहिता थीं और वे कृष्ण की शायद कुछ रिश्तेदार भी लगती थीं...कृष्ण की शादी तो रुक्मिणी से हुई थी, राधा तो कृष्ण से फिर कभी मिली भी नहीं थीं...''

अन्विता दो-तीन पद पढ़ा देना चाहती थी, ''तूने तो राधा के बारे में अच्छी-खासी रिसर्च कर रखी है! यह भी कहते हैं कि राधा कोई थी ही नहीं, यह नाम आराधना शब्द से निकला है.''

''होंगी तो जरूर.'—उसने जोर देकर कहा, ''ऐसा तो हो नहीं सकता कि राधा एकदम न हों...'' राधा के बारे में उसकी व्यग्रता अन्विता को बड़ी रोचक लगी.

''तू ऐसा कर...मुझे पढ़ा दे.'' अन्विता ने किताब उसके सिर पर धमक दी.

सीमांत खिसिया गया, ''नहीं, मैं क्या पढ़ाऊंगा आपको! आप पढ़ाओ, अब मैं बात नहीं करूंगा.''

इसी बीच बराबर के कमरे में अन्विता के फोन की घंटी बजनी शुरू हुई. वह फोन रिसीव करने गयी तो वह आकर दरवाजे पर खड़ा हो गया था, ''आपका बैडरूम तो काफी बड़ा है. आप इतने बड़े घर में अकेले कैसे सोते हो? डर नहीं लगता?''

अन्विता चुप रही.

''आप ढंग से खाते-पीते नहीं हो, तभी इतने कमजोर हो.''

''बिना खाये कोई रह सकता है?'' अन्विता ने उत्तर देने के लिए कहा.

''आपको खाने में क्या पसंद है?'' सीमांत ऐसे पूछ रहा था, जैसे उसकी पसंद की चीज़ लेकर आयेगा.

''फल...'' जब तक वह कुछ और पूछे अन्विता ने स्पष्ट किया, ''क्योंकि उन्हें पकाना नहीं पड़ता.''

''आप आलसी भी हो.'' उसने तुरंत अपनी राय दी.

फोन पर बातचीत से वह समझ गया था कि अन्विता की चचेरी बहिन का था, ''आप अपनी दीदी के यहां जाते

''इकलौती संतान को इतनी दूर भेज देना आसान नहीं है.'' सीमांत ने कहा था, ''वे गयी कहां हैं? वे तो आपकी याद में हरदम आपके साथ हैं.''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

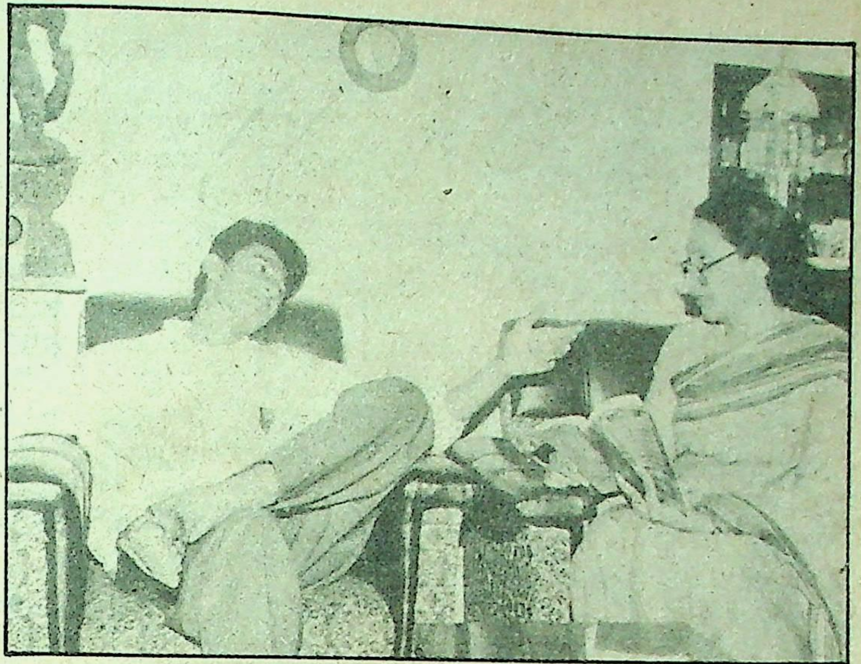

"यह हमेशा अन्विता के हृदय के कोमल-झीने तंतुओं को छू देता है. जब आया था, बाहर निकलते समय कहता था, 'बाहर बैठा करो न. आप शाम को कमरे में क्यों रहते हो?'"

नहीं हो?"

"कभी-कभी जाती हूं. उनका घर कुछ दूर पड़ता है."

"मैं छोड़ दूंगा. मेरे घर से उनका घर पास है."

अन्विता को ध्यान आया, "मैं कल सुबह तेरे घर की तरफ गयी थी. २६ नंबर बंगले में मुझे किसी आदमी से जरूरी काम था."

"मेरे घर आ जाते."

"सुबह के सात बजे थे जनाब! वह टाइम था किसी भले आदमी के घर जाने का?"

"मैं 'किसी आदमी' हूं आपके लिए?"

"चल भला आदमी तो तुझे माने लेती हूं. सात बजे सुबह सड़क पर सिर्फ मॉर्निंग वॉक करने वाले लोग दिख रहे थे. घरों में लोग सोये पड़े थे. जिससे मेरा काम था उसके गेट में ताला पड़ा था. 'बिवेयर ऑफ डॉग्स' की तख्ती अलग लगी थी. उनसे मिल भी नहीं सकी."

"हमारे यहां सब सुबह जाग जाते हैं. मैं जॉगिंग के लिए जाता हूं."

"तब तो तेरे घर में कोई मुझे जरूर पहचानता!"

आप बता देते. एक दिन मैं आपको अपने घर ले जाऊंगा. इतवार को महाभारत दिखाकर पहुंचा जाऊंगा. आपका टी.वी. खराब है न."

अन्विता को उसके भक्तिभाव का पता है. एक दिन अपनी मित्र के साथ बाजार से लौट रही थी. सुनंदा कांपलेक्स के सामने सीमांत मिल गया, "मैं आपको घर छोड़ देता हूं" उसने तुरंत कहा था.

अपनी मित्र के साथ के कारण उसने मना कर दिया. थोड़ी दूर जाकर मित्र का रास्ता बदल जाता था. अन्विता उनसे पृथक होकर घर की तरफ बढ़ी थी कि सीमांत दुबारा मिल गया. वह घूमकर वापस उसी रास्ते पर आ गया था. अपनी मोटर साइकिल पर वह उसे घर तक छोड़ गया था.

अन्विता को सीमांत के आने, उसे पढ़ाने, उससे बातें करने का व्यसन-सा होता जा रहा है. अपने वैधव्य को झेलते, अपनी इकलौती संतान से दूर रहते उसके एकाकी जीवन में आया है यह नन्हा मित्र, आयु के इतने अंतर के बावजूद. सीमांत भी उसे एक वेतनभोगी ट्यूटर मात्र समझता होगा क्या? वह सोचती रही थी.

एक दिन मोटर साइकिल गेट के बाहर खड़ी करके आया. पीली शर्ट पहने, कंधे पर पीला स्वेटर पड़ा हुआ, बेहद आकर्षक लग रहा था. अन्विता से उसने इंगलिश के टीचर डॉ. महेश्वरी का पता पूछा. तुरत चला गया. लगभग आधे घंटे में लौट आया... महेश्वरी जी नहीं मिले थे. सामने वाली कुर्सी पर वह बैठ गया... पानी मांगा... पानी पीकर उठा अन्विता के बराबरवाली कुर्सी पर बैठ गया. पढ़ाते हुए अन्विता ने लक्ष्य किया कि वह कुछ सुन नहीं रहा है, उसका ध्यान न जाने किधर है. खोया-खोया-सा बैठा है.

"सीमांत!" अन्विता कुछ आगे कहती, उसके पहले ही उसने बड़ी जोर से 'हां' कहा, जैसे किसी ने उसे दूर से, जोर से पुकारा हो.

"इतने जोर से क्यों बोले?" अन्विता ने डांटा, "सो रहे थे क्या?"

"आज पढ़ाई समझ में नहीं आ रही," सीमांत ने किताब बंद कर दी, "आज बातचीत करते हैं."

"बातें करने के लिए पैसे खर्च करोगे?" अन्विता ने परिहास किया, "तू तीन दिन तक मुझसे ट्यूशन फीस पूछता रहा था. मैंने तो कभी किसी को ऐसे पढ़ाया नहीं मुझे पैसे मांगने में संकोच हो रहा था. तभी मैं कह देती थी कि मिस सेनगुप्ता से पूछ लेना. तू कैसे भाव-ताव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

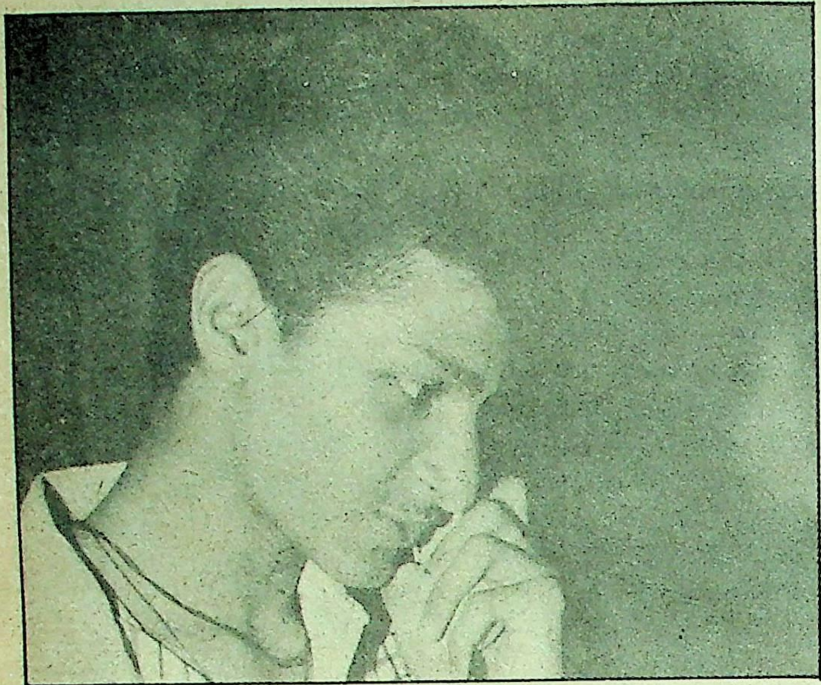

यह बच्चा उसके जीवन की समूची जड़ता को अपने एक वाक्य से तोड़कर चला गया है. रात तक वह कितनी बार रोती रही.. बहुत दिनों बाद उसे इतना रोना आया था.

कर रहा था, बिजनेसमैन जो ठहरा.''

वह शरमा गया, ''संकोच तो मुझे भी हो रहा था पर मैंने पूछ ही लिया था.''

''तुझे बहुत पैसे देने पड़ेंगे. चंद्र कश्यप को तो एक ट्यूटर डेढ़ सौ रुपयों में तीन विषय पढ़ा रहा है, तूने बताया था न!''

''आपको नाम याद है,'' सीमांत का गोरा चेहरा झेंप से लाल हो गया, ''आपने मुझसे कहा था, तुम भी उसी ट्यूटर से पढ़ लो. मुझसे पढ़ना है तो या तो मुफ्त में पढ़ लो या अच्छा पेमेंट करो. नयी मोटर साइकिल पर घूमते हो, अध्यापक को पैसे देने में कंजूसी करना चाहते हो!''

''कभी-कभी तो तेरी याददाश्त मुझे काफी तेज लगती है,'' अन्विता हंसी, ''पैसे ठहराने में मैं तुझे अपना गुरू मान सकती हूं. मैं तो इतनी बड़ी होकर भी एकदम व्यवहारज्ञान शून्य हूं. पैसे कमाने-बचाने में मैं हमेशा मूर्ख रही.''

''ऐसा कहकर आप अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हो.''

अन्विता हंसी, ''तू मुहावरों का ज्ञान मत छांटा कर. सारे मुहावरे मेरे ऊपर फिट कर देता है...अपने लिए भी कुछ रखा कर...''

''अधजल गगरी छलकत जाये...'' उसने तुरंत कहा.

थोड़ा पढ़ा, फिर बोला, ''आपकी मेहमान आ गयीं?''

''हां, आज आयीं, कुछ दिन मेरे साथ रहेंगी, तभी तो मैंने तुझे देर से बुलाया था, सब्जियां बनाकर रख दी थीं, जब वे आ गयीं, तब पूरियां बनायीं...''

''...फिर बेटे को याद किया...'' उसने वाक्य पूरा किया.

वह हमेशा अन्विता के हृदय के कोमल-झीने तंतुओं को छू देता है. जब आया था, बाहर निकलते समय कहता था, बाहर बैठा करो न! आप शाम को कमरे में क्यों रहते हो? आप बहुत काम करते हो. कभी गाने वगैरह सुना करो. गजलें सुनते हो आप?''

''नहीं, ग़ज़लें मुझे उदास करती हैं. दूसरे मेरी समझ में उर्दू अधिक नहीं आती.''

''इतनी मुश्किल कविताओं का अर्थ तो आप बता देते हो. उर्दू कैसे समझ नहीं आयेगी? मुझे गुलामअली की आवाज बहुत अच्छी लगती है, आपको मैं उसके कैसेट लाकर दूंगा. कैसेट प्लेयर तो होगा आपके पास?...हर समय आप काम में मत पिसा करो. चेहरे से आप कमजोर नजर आते हो.''

''इकलौती संतान को इतनी दूर भेज देना आसान बात नहीं है,'' अन्विता का दुखों से लबालब भरा मन इतने छोटी आयु के व्यक्ति के संवेदन से भी छलक जाता है.

सीमांत के चेहरे पर दर्द उभरा. उसके चेहरे पर भाव बड़ी पारदर्शिता से उभरते हैं.

एक दिन अन्विता ने उससे कहा भी, ''तू एक्टर क्यों नहीं बन जाता, तरह-तरह की आवाजें भी बना लेता है.'' अन्विता का संकेत उसके फोन-वार्तालापों की तरफ था.

''घरवाले नहीं मानते.'' उसने शरमाते-शरमाते उसे बताया कि स्कूल के साथ वह टूर पर गया हुआ था, वहां उसे कोई पार्टी मॉडलिंग का ऑफर दे रही थी.

''कर लेता...'' अन्विता ने उसके होमवर्क का करेक्शन करते हुए कहा, ''तू कोई लड़की तो था नहीं. अच्छे से पैसे मिलते, कपड़े भी मिलते. पर तू दुबला हो गया है. पहले आया था, तब अच्छा था. बहुत पढ़ता है क्या?...तुझे फिल्मों में चले जाना चाहिए, तब पढ़ना भी नहीं पड़ेगा.''

वह नाराज-सा हो गया, ''पढ़ना तो मुझे अच्छा लगता है.''

''हिंदी तेरे किस काम आयेगी, ट्रकवालों से बातचीत करने के?'' सीमांत के पिता के ट्रांसपोर्ट के व्यापार को लक्ष्य कर अन्विता ने कहा.

''हिंदी मुझे अच्छी लगती है. मातृभाषा जो है. आप अच्छे हिंदी के प्रोफेसर हो जो हिंदी पढ़ने को मना करते हो. मैं हर समय थोड़े ही पढ़ता हूं!'' सीमांत ने सुबह व्यायाम, दिन में पढ़ाई, शाम को बिलियर्ड सीखने का अपना व्यस्त कार्यक्रम बता डाला.

पड़ोसी गीता कमरे में आ गयी थी. मॉडलिंग वाली बात उसने भी सुन ली थी, बोली, ''तुम एकदम आमिरखान जैसे लगते हो, पिक्चर में चले जाओ. 'कयामत से कयामत तक' देखी है तुमने?''

वह मुस्कराया. अन्विता ने कहा, ''यह वैसे ही अपने को हीरो समझता है. परसों काली शर्ट पहनकर पूरे हीरो के स्टाइल में आया था. तुमने उसे आमिरखान बता दिया, अब तो यह जो पढ़ाई-लिखाई करता होगा वह भी छोड़ देगा!''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता के जाने के बाद उसने पूछा, "आपको याद रहा कि मैंने कल काली शर्ट डाली हुई थी?"

"काला रंग होता ही स्ट्राइकिंग है," अन्विता ने उसे छंद पढ़ाने प्रारंभ कर दिये, जो उसे सबसे अधिक कठिन और उबाऊ लगते थे. उसकी काली शर्ट की बात से वह उबरा गयी. अपने बेटा न होने से अन्विता को समझ नहीं आता कि लड़के की प्रशंसा कैसे की जाये. दूसरे अध्यापिका होने से एक बड़प्पन उसे हमेशा बांधे रखता है.

"आपका इनकमटैक्स का काम हो गया?"

उसे स्नब करने की बजाय अन्विता ने कहा, "आज जब मैं ऑफिस पहुंची तो देखा पहले वाले अफसर का ट्रांसफर हो गया है. उनकी जगह दूसरा व्यक्ति बैठा हुआ था. ही वाज ए हैंडसम फेलो. जो सुंदर होता है, वह व्यवहार में भी अच्छा होता है." एकाएक बात बीच में रोककर अन्विता ने कहा, "पर तू ऐसा नहीं है."

वह मुस्कराया. अन्विता द्वारा की गयी अपनी व्याजस्तुति वह समझ गया था.

अन्विता सोफे के साथ की कुर्सी पर बैठी हुई थी. सोफे पर बैठे सीमांत ने एक कुशन सिर के नीचे लगा रखा था और एक गोद में रख रखा था. अन्विता ने 'वाह लाटसाहब!' वाली दृष्टि से देखा तो उसने चटपट कुशन अपने सिर के नीचे से निकालकर अन्विता के सिर के पीछे लगा दिया. अन्विता ने कुशन निकालकर कार्पेट पर फेंक दिया, "इतनी नक्शेबाजी तेरे लिए ठीक है. मैं वैसे ही ठीक हूं. पढ़ता-वढ़ता तो ध्यान से है नहीं, मैं बकवास करती रहती हूं."

उसने कुशन उठाकर यथास्थान रख दिया और पढ़ने लगा. सिर झुकी होने से उसके घने, सुनहले, कोमल बाल अन्विता की बांह के एकदम पास थे बच्चे के जन्म के बालों की सुगंधि देते हुए. अन्विता ने कितनों को शिक्षा दी है. सीमांत को पढ़ाना एक नया और प्यारा अनुभव है.

सीमांत के प्रति उसके मोह का कारण उस लड़के की संवेदनशीलता है. अन्विता के यह कहने पर कि 'इकलौती संतान को इतनी दूर भेज देना आसान नहीं है.' सीमांत ने कहा था, "वे गयी कहां हैं? वे तो आपकी याद में हरदम आपके साथ हैं."

उस दिन सीमांत के जाने के बाद अन्विता को लगा कि उसका अस्तित्व जैसे समूचा हिल गया है.

सीमांत के एक वाक्य ने उसे भीतर तक पिघला दिया है. दैवी चोट, अपना अकेलापन, भविष्य की अनिश्चितता, निकटतम संबंधियों के व्यवहार ने उसे अनुभूतिशून्य-सा बना दिया था. यह बच्चा उसके जीवन की समूची जड़ता को अपने एक वाक्य से तोड़ कर चला गया है. रात तक वह कितनी बार रोती रही...बहुत दिनों बाद उसे इतना रोना आया था.

यह लड़का भी अजीब है. एक ओर तो इतनी संवेदन-पूर्ण और समझदारी की बातें करने वाला और दूसरी ओर बेहद चुलबुला. कॉलबेल बजाकर छिप जायेगा या लगातार बजाता रहेगा. एक दिन तो अन्विता खीज गयी थी, "बजाते रहो घंटी, मैं दरवाजा नहीं खोलूंगी...शैतान कहीं के!"

डाइनिंग टेबुल पर बैठकर पढ़ता है तो बिना हत्थों की कुर्सी में अधलेटा-सा हो जाता है. अन्विता ने डांटा, "तुझसे ठीक से बैठा नहीं जाता! तू वह कुर्सी ले ले जिस पर कुशन है. रईस जो ठहरा!"

वह दो कुर्सियां उठा लाया.

"मेरे लिए रहने दे. तू ही इधर-उधर करवटें-सी बदलता रहता है. मुझे तो कष्ट सहने की आदत है...सारा फर्नीचर उलट-पुलट करने से तो अच्छा है सोफे पर बैठ जाते हैं." वह उठकर सोफे पर जा बैठी.

सीमांत बराबर में सोफे पर बैठ गया. अन्विता को आमने-सामने बैठकर पढ़ाने की अपेक्षा पास बैठे सीमांत को पढ़ाना अधिक ठीक लगा. बिना उसका मुंह देखे बिहारी और घनानंद के रसमय पद्य उसने बिना किसी हिचकिचाहट के पढ़ा दिये.

"मुझे घनानंद अच्छे लगे." वह अपनी राय दे सकता था.

अन्विता ने रीतिमुक्त कवियों के बारे में उसे बताते समय बोधा की प्रेमिका सुभान के बारे में बताया था. दूसरी बार उसके मुंह से बोधा की प्रेमिका का नाम सुजान निकल गया. सीमांत ने उसकी त्रुटि तुरंत पकड़ी, "आप घनानंद की प्रेमिका बोधा को दिये दे रहे हो."

हंसकर उसकी टिप्पणी को उड़ा देने के सिवा अन्विता और क्या कहती.

"आप सोने की चेन नहीं पहनते?" अन्विता के गले में चांदी की चेन देखकर उसने पूछा.

दूसरी बार उसके मुंह से बोधा की प्रेमिका का नाम सुजान निकल गया. सीमांत ने उसकी त्रुटि तुरंत पकड़ी, "आप घनानंद की प्रेमिका बोधा को दिये दे रहे हो."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

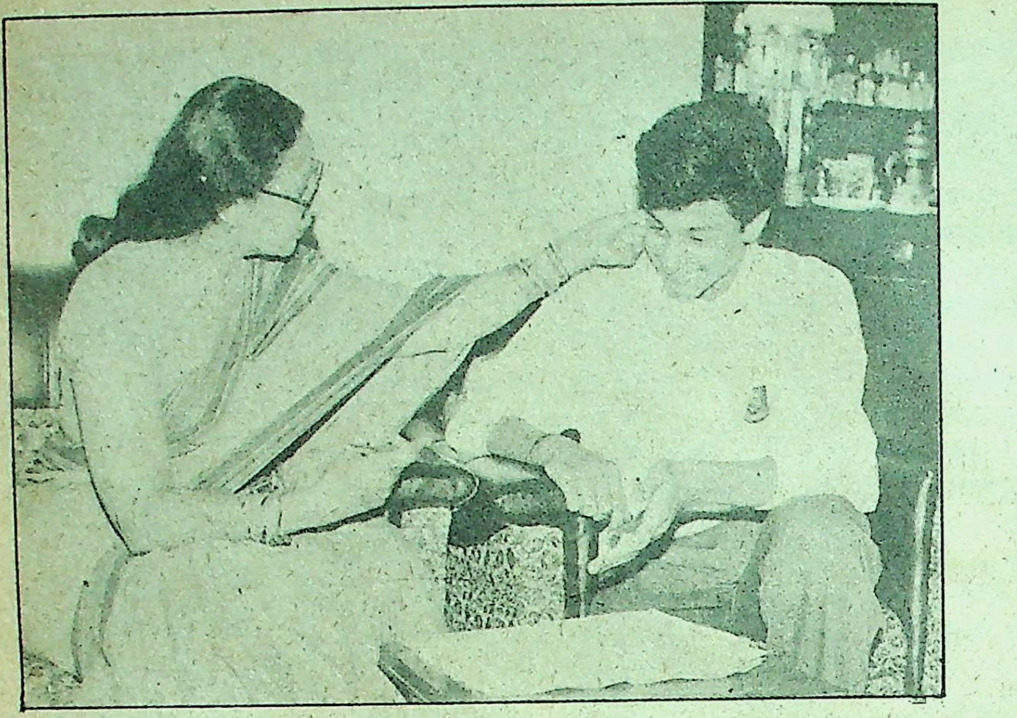

वंदना उसके खिले चेहरे को देखकर कह रही थी, "तुम ऐसे ही हंसती रहा करो, कितनी अच्छी लगती हो हंसते हुए... मैं तुम्हारे सीमांत को देखना चाहती हूं."

"मेरी चेन कोई दिन में खींच ले गया था. तबसे मैंने चेन पहनना छोड़ दिया है. दूसरे जेवर भी उतार दिये तभी से..."

"...सब जेवर संभाल कर रख दिये, बेटी की शादी में काम आयेंगे, फिर मैं संन्यास ले लूंगी..."

अन्विता ने उसके सिर पर चपत जमायी, "तू मेरे शब्दों को मत दोहराया कर... बदतमीज कहीं का!"

वह अन्विता को घर में एक स्कूल खोलने की सलाह दे रहा था. तब अन्विता ने कहा था, "बहुत कमा-खा लिया, तू मुझे मोह-माया के जाल में फंसने को कह रहा है, मैं संन्यास लेने की सोच रही हूं. क्या करूंगी मैं रुपये-पैसों का?"

"पैसों से बहुत काम हो सकते हैं. आप रंगीन टेलिविजन ले सकते हो. सोना खरीद सकते हो, कार रख सकते हो, अपनी बेटी से मिलने जा सकते हो."

"यह सब कुछ अब मेरे लिए नहीं, मैंने अपनी जिंदगी जी ली जैसी कुछ भाग्य में थी..." अन्विता ने बेटी से मिलने जा सकने वाली बात सारे प्रलोभनों में से छांट ली थी मन ही मन.

सीमांत ने किसी का शेर कहा, "कुछ पी ली कुछ छलका दी, यूं ही हमने जिंदगी बिता दी."

अन्विता चुप रही. कुछ कहने-सुनने की जरूरत भी नहीं थी.

एक दिन दोपहर में वह जल्दी आ गया. अन्विता सोकर उठी थी. मुंह धो रही थी. घंटी बजाने के ढंग से समझ गयी, सीमांत होगा. दरवाजा खुलने तक लगातार बजाता रहेगा. दरवाजा खोलने पर उसके भीगे मुंह को देखकर सीमांत ने पूछा, "सो रहे थे?"

"हां, तू बैठ, हाथ-मुंह पोंछकर मैं स्वेटर पहन लूं, बिस्तर से निकलकर ठंड लग रही है." अन्विता ने झुरझुरी ली, सीमांत को खाली शर्ट पहने देखकर उसने पूछा, "तुझे ठंड नहीं लग रही?"

"नहीं!" वह मुस्कराया, "बच्चों को मैं छेड़ती नहीं, बूढ़ों को मैं छोड़ती नहीं, चाहे ओढ़े सात रजाई....पर आप तो बूढ़े नहीं हो."

"बूढ़ों के क्या सींग-पूंछ होते हैं? बूढ़ी तो हो ही रही हूं."

"आपको तो सौ साल जीना है. ग्रैंड चिल्डरेन खिलाने हैं." उसने आशीर्वाद की मुद्रा में कहा.

"अच्छा-अच्छा दादाजी धन्यवाद! तू बोलता बहुत है."

"क्योंकि मैं शठ और धूर्त हूं."

तुलसी लिखित "अंगद-रावण-संवाद" में प्रयुक्त इन शब्दों को सीमांत द्वारा अपने लिए प्रोग करने पर अन्विता को हंसी आ गयी.

"मैं आपको काफी हंसाता हूं."

वह अपने बारे में अन्विता की राय जानना चाहता है. अन्विता उसकी तरह मुखर नहीं हो सकती. उसने चुपचाप उसे पढ़ना प्रारंभ कर दिया. मन में विगत वर्ष घूमते रहे—पति की बीमारी के दिनों की दुश्चिंताएं, परिश्रम, आशंकाएं, परेशानियां, तत्पश्चात उनकी मृत्यु का शोक, अकेले जीवन की अनेकानेक समस्याएं. वह सोचती थी कि वह कभी हंस नहीं सकेगी. सीमांत की बात ने उसकी आंखों में आंसू ला दिये.

आंखें चश्मे में छिपी थीं, सीमांत बराबर में बैठा था. अन्विता ने हल्के से नाक सुड़की तो सीमांत ने सिर उठाकर देखा. पर बोला कुछ नहीं. अन्विता उसकी इस भावप्रवणता और समझदारी पर हैरान रह गयी. उस दिन उससे सीमांत को ठीक से पढ़ाया नहीं गया.

सीमांत उसके जीवन में एक निश्चित बदलाव लेकर आया है. उसने अपनी मित्र वंदना को सीमांत के बारे में बताया था. यह भी कहा था कि सीमांत के आने के बाद से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह हंस सकी है. वंदना उसके खिले चेहरे को देखकर कह रही थी, ''तुम ऐसे ही हंसती रहा करो, कितनी अच्छी लगती हो हंसते हुए...मैं तुम्हारे सीमांत को देखना चाहती हूं.''

उसका सीमांत के बारे में सोचना सकारण है क्योंकि निकटस्थ और कोई व्यक्ति सोचने के लिए जो नहीं है. सीमांत को तो ऐसा कोई अभाव नहीं है. फिर भी वह उसके बारे में सोचता है, प्रयत्न करता है वह खुश रहे, उसे अच्छी तरह तैयार देखकर प्रसन्न होता है. अन्विता की बेटी भी मां को नार्मल देखकर प्रसन्न होती है, पर वह तो अपनी आत्मजा है. सीमांत से तो यह ले देकर महीने भर का गुरु-शिष्य संबंध है.

सीमांत उसके लिए होली की मिठाई लेकर आया था. होली के दिन आने को कह गया था, आ नहीं पाया, उसके बहुत से मित्र आ गये थे. शाम को उसने फोन किया था. मिठाई का डिब्बा अन्विता के हाथ में पकड़ाकर वह चरण-स्पर्श करने को झुका. फिर थोड़ी देर बाद आने को कहकर वह कहीं चला गया. अन्विता ने देखा, मिठाई के डिब्बे के साथ एक कागज पर लिखा है—''डीयरेस्ट मैडम, विद लव एंड रिगार्ड्स.'' पुनश्च करके लिखा था, ''होप यू आल्वेज कीप स्माइलिंग.''

अन्विता ने वह कागज सहेजकर अपने महत्वपूर्ण कागजों में रख दिया. सीमांत की शुभाकांक्षाओं ने उसे भीतर तक छुआ. पिछले अगस्त में डॉक्टर ने उसे गले में कैंसर का शक बताकर चेकप के लिए दिल्ली भेजा था. आसन्न अंत की संभावना में उसने पहली बार अपने लिए सोचा था. वंदना कहती है, ''तुम सोचो जब तुम्हारी शादी नहीं हुई थी, तब तुम क्या बनना चहाती थीं, वही बनने की कोशिश करो.''

सीमांत आधे घंटे में लौट आया. कल होली के दिन भर के हुड़दंग के कारण वह थका हुआ लग रहा था. उसे उबासियां आ रही थीं. अन्विता ने पढ़ाना प्रारंभ कर दिया थ. सीमांत ने पूछा, ''आने होली खेली थी?''

''नहीं, मेरा आठ आने का गुलाल भी बच गया.''

सीमांत ने कोई उत्तर नहीं दिया. अपने युवा साथियों के साथ होली की धींगामुश्ती की स्मृतियों में वह खोया हुआ था. अन्विता को लग रहा था कि वह बहुत उखड़ा-उखड़ा सा पढ़ा रही है. सीमांत ने राय दी, ''मुझे भूषण अच्छे नहीं लगे, घनानंद अच्छे लगते हैं, जायसी ने भी अच्छा लिखा है...''

''तू ध्यान से पढ़ता तो है नहीं, टिप्पणी करने को तुला बैठा रहता है. मैं तुझे शिवाजी के बारे में कुछ बता रही थी तो तूने मुझे मुसलमानों के खिलाफ ठहरा दिया था. निष्कर्ष तो तू एकदम निकाल लेता है.''

गीता पूछ रही थी, ''आपका स्टूडेंट होली के दिन नहीं आया?'' अन्विता को यह खोज-बीन अच्छी नहीं लगी. वह आये न आये गीता को क्या लेना-देना है? मन में कसका—सीमांत को आना चाहिए था.

सीमांत थकान के कारण एकाग्र नहीं हो पा रहा था. होली के दिन के अन्विता के अकेलेपन को ध्यान आने पर उसने पूछा, ''आपके पास लोग आते तो रहते हैं, कल कोई नहीं आया?''

''शाम को मेरे रिश्तेदार आ गये थे. एक लड़का भी आया था, रशियन भाषा का इंटरप्रेटर है, साहित्यिक अभिरुचि वाला है. मुझे पूछ रहा था कि मैं कभी-कभी आपके यहां आ सकता हूं? मैंने कहा, क्यों नहीं, यू कैन कम, यू आर जस्ट लाइक माई सन.''

''गीता जी नहीं आयीं?''

अन्विता ने कहा, ''कल वह यहीं तो थीं, तुमने फोन पर आवाज बदलकर मुझे और गीता को डराया क्यों था?''

''आप डरते बहुत हो. आपने मुझे पहले दिन नहीं

अन्विता ने देखा, मिठाई के डिब्बे के साथ एक कागज पर लिखा है—''डीयरेस्ट मैडम, विद लव एंड रिगार्ड्स.'' पुनश्च करके लिखा था, ''होप यू ऑल्वेज कीप स्माइलिंग.''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डरा दिया था. अनुप्रास, यमक, उत्प्रेक्षा, न जाने क्या-क्या कह-कह के..."

"वो सब तो तेरे कोर्स में था. मैं तो तुझे भगाने वाली थी. जब तू मुझसे पैसे ठहरा रहा था. पता नहीं क्या सोचकर मैंने तुझे अपने शिष्यत्व में ले लिया."

"सब काम ईश्वर की मर्जी से होता है." उसने अन्विता के इस भाग्यवादी वाक्य को दोहराया. "आप किस भगवान को मानते हो?' अन्विता के बारे में जानने की उसे बड़ी उत्सुकता रहती है.

"किसे बताऊं? अपने यहां ढेर सारे देवी-देवता हैं. तू किसे मानता है?"

"मैं तो सुबह नहाकर यह प्रार्थना करता हूं—"क्यों व्यर्थ चिंता करते हो, किससे व्यर्थ डरते हो? आत्मा न पैदा होती न मरती है—" थोड़ा बता कर वह रुका और अचानक विषय बदलकर कहने लगा, "एक लड़की आपसे पढ़ना चाहती है."

"रहने दे, मैं ट्यूशन कभी नहीं पढ़ाती. तू ही मेरा पहला और आखिरी शिष्य है. क्लास में दूर बैठी छात्राओं को पढ़ाना आसान है. तुझे मैं पास बिठाकर पढ़ाने लगी तो मुझे पहले दिन पढ़ाना नहीं आ रहा था."

"पर आपने अच्छा पढ़ा दिया."

"तू मुझे एक सर्टिफिकेट दे देना."

"अभी लो." उसने अन्विता का हाथ पकड़कर हथेली पर लिखा—'आप महान हैं.' फिर बोला, "आपकी हथेली में पसीना आ रहा है, लिखा नहीं जा रहा. आपने "ऑयल ऑफ ओले' ज्यादे लगा रखा है."

अन्विता ने उसके सिर पर चपत जमायी. उसकी बेटी के प्रसाधनों में ऑयल ऑफ ओले रखा हुआ उसने देख लिया था. वही जानकारी जता रहा था.

"तुझे पढ़ने के सिवा सब कुछ याद रहता है, तुझे पढ़ाकर, फोन नंबर देकर मैं पछता रही हूं. पढ़ना है तो पढ़, बकवास बंद कर..."

"बत्तमीज!" उसने वाक्य पूरा किया. ".मुझे आपका पढ़ाया सब कुछ याद है," मनो चली आंगन कठिन-तातें रातें पांय—उत्प्रेक्षा अलंकार का उदाहरण उसने सुना

शक्ति

श्रीकान्त चौधरी

अभूतपूर्व लोमहर्षक दृश्य था. स्वयं श्रीराम भी बहुत धैर्य और कुछ आश्चर्य से देख रहे थे. मेघनाथ का गर्जन और उससे भी प्रबल उसके तरकश से निकले तीर.

मेघनाथ गरजा, 'लक्ष्मण, सावधान! ये है जेड एन जी बिजन का बनाया हुआ, चलने में बेजोड़, निशाने में अचूक—सुपर सानिक बाण, अब तुम नहीं बच सकते."

मेघनाथ ने बाण चलाया. लक्ष्मणजी घायल होकर गिर पड़े. □

डाला. बीच में वह हकला गया था. अन्विता को वह अपनी विद्वत्ता से आक्रांत लगता है. फोन पर साफ बोलता रहता है, सामने अक्सर हकला जाता है. अन्विता को उसे छेड़ना अच्छा लगता है, "कोई अंग्रेजी ऐसे अटक-अटककर बोले तो लोग कहें इसे आती नहीं. हिंदी चाहे जैसे बोलो."

"मैं अटकता कहां हूं—सुनिये—सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है..." संदेह अलंकार का यह उदाहरण उसे बहुत अच्छा लगता था.

हिंदी पर उसका अधिकार भले न हो, पर कहीं भी अस्पष्ट अर्थ बताकर उसे टाला नहीं जा सकता. अन्विता जो पढ़ाती है उसे ध्यान से सुनता है. किसी पंक्ति का अर्थ वह दुबारा बताने लगे तो वह मना कर देता है. अन्विता एक दिन नाराज हो गयी, "मैं पूरी पंक्ति का अर्थ दुबारा बताऊंगी तभी तो अर्थ की कड़ियां पूरी बैठेंगी."

वह खिसिया-सा गया तो अन्विता को लगा कि वह उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करता रहता है, वह उसे मजाक में ही सही, हमेशा नीचा दिखाती रहती है. अन्विता ने कहा, "वैसे तु है समझदार, एक बार में अर्थ समझ लेता है."

दो-चार पंक्तियां पढ़ाकर अन्विता ने जैसे वाक्य पूरा किया, "मुझे समझदार लोग अच्छे लगते हैं."

सीमांत ने उसके दो अलग-अलग वाक्यों को जोड़ दिया था, वह संतुष्ट दिखा. अन्विता के प्रशंसा करने के ढंग को वह जान गया था.

अन्विता काफी देर से लगातार भावार्थ बताती रही थी. उसने किताब बंद कर दी थी, "अब मैं एक कप चाय पीकर पढ़ाऊंगी."

"आपकी नौकरानी तो चली गयी जो चाय बना लाती थी. आप मिसेज जलोटा से कहो."

"अरे वे क्यों बनायेंगी!" अन्विता ने मिसेज जलोटा के रुखे स्वभाव को ध्यान में रखकर कहा.

"तो आप अपने किरायेदार से कहना वह चाय बनाकर करेगा. उसके किराये में पच्चीस रुपये कम कर देना.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...मेरी चाय बना दिया कर."

"रुपये कम करने की क्या जरूरत है, वह वैसे भी मुझे चाय ऑफर करता रहता है, पर उसके कप बहुत छोटे हैं."

सीमांत मुस्कराया, "आप एक दिन दो बड़े मग खरीदकर उसे प्रेजेंट कर दो, कहना—बेटा बाजार में ...आये थे तो तुम्हारे लिए भी लेती आयी थी."

सुबोध जोशी जैसे सीधे-सादे किरायेदार को दो मग उपहार में देकर अपने चाय पीने की तिकड़म बिठाने की बात पर अन्विता के हंसी के कारण पेट में दर्द हो गया.

जब से सीमांत पढ़ने आता है, अन्विता को लगता उसके पास मेहमान बहुत आने लगे हैं. (पढ़ने में व्याघात शायद ऐसा लगता हो.) एक दिन कोई सेमवालजी आ गये. किसी और के घर का पता पूछने आये थे पर पूरे दो घंटे जमे रहे. सीमांत पूरे समय शैतानी करता रहा. अन्विता को उसकी शैतानियों पर हंसी भी आ रही थी और डर भी लग रहा था कि सेमवालजी नाराज न हो जायें. उन्होंने जाते समय कहा, "मैंने आपका बहुत समय लिया, मुझे आपसे बातचीत करके बहुत अच्छा लगा. यह पता ही नहीं चला कि कब दो घंटे निकल गये. और मुन्ना, तुम्हें भी धन्यवाद जो तुमने मुझे दो घंटे बर्दाश्त किया."

"बर्दाश्त की क्या बात है? इट वॉज़ माय प्लेज़र."

वह बाहर तक सेमवालजी को पहुंचा आया. आते ही उसने अन्विता से शिकायत की, "आप भी खूब बातें करते हो, तभी तो वे जम गये थे. अब मैं जा रहा हूं, घरवाले फ्रिक्र करेंगे...कल पढूंगा."

बाहर बरामदे में खड़े होकर उसने जींस कमर पर ठीक की, "मैं मोटा हो गया हूं?"

"मैंने तुझे पहले नहीं देखा."

"आप कह रहे थे तू दुबला हो गया है, पढ़ता बहुत होगा."

अन्विता समझ गयी कि वह अपने बारे में कुछ सुनना चाहता है. उसने पूछा, 'तेरी लंबाई क्या होगी?"

"पांच फीट नौ इंच!"

"तब तो नाटा हुआ. फाइव नाइन भी कोई हाइट हुई? मोटा वैसे होने लगा है. पढ़ते समय लेट-सा जाता है, ऐसा आलसी रहा तो और क्या होगा!" अन्विता ने उसे छेड़ा.

वह अपने शारीरिक श्रम की बात बताने लगा. आवेश या तेजी में वह हकलाने लगता है.

अन्विता ने उसे आश्वस्त किया, "अभी तो तू बढ़ेगा. बीस साल तक लंबाई बढ़ती रहती है. इनक्रेमिन पिया कर."

वह मुस्कराकर मोटर साइकिल की ओर बढ़ गया.

दो-तीन दिन वह देर से आया था. पिता के साथ व्यापार-संबंधी कोई काम देखना था. तीसरे चौथे दिन साढ़े तीन बजे कालबेल सुनकर अन्विता ने समझा पोस्टमैन होगा. दरवाजा खोलकर उसने बरामदे के सिरे पर जाकर पोस्टमैन को झांका, वह नहीं था, पीछे मुड़ी तो सीमांत को देखकर वह चौंक गयी. घंटी बजाकर वह खंभे के पीछे छिप गया था. उसने काली शर्ट पहन रखी थी, "आज मि. महेश्वरी ने मुझे देर में बुलाया है, कल तो बताया नहीं. आप पढ़ा दोगे अभी?"

"हां, पढ़ लो."

"आपने सोने के टॉप्स पहन रखे हैं."

अन्विता कमरे में आ गयी थी.

"मैंने देख लिया न!" वह सोने के टॉप्स को संकेतिक कर रहा था.

"ऐसी जासूसी तो तू काफी कर सकता है. मैं कहीं गयी हुई थी, अभी-अभी लौटी हूं. तुझे बताया तो था."

"हां, याद आया, आप कब गये थे?"

"गये थे नहीं, गयी थी."

वह झेंपा, "हां, गयी थी, आपकी फ्रेंड भी गयी होंगी साथ में? आपकी साड़ी बहुत अच्छी लग रही है. और लोगों ने भी तारीफ की होगी. अच्छी लगेगी तो सभी कहेंगे. आप ऐसे ही चौड़े बार्डर पहना करिये."

अन्विता ने प्रशंसा के लिए धन्यवाद भी नहीं दिया, चुपचाप सुनती रही. बच्चों को भी मां-बाप का अच्छा

गौ सेवा

□ दुर्गेश

वे मरणासन्न थे. अंतिम क्षणों में उन्होंने अपने बड़े पुत्र को बुलाकर कहा, "संसार में गौ सेवा से बड़ी कोई सेवा नहीं है. तुम तो अच्छी तरह से जानते हो मैं बरसों तक पैसे-पैसे के लिए तरसता रहा. घर में संपत्ति नाम की कोई चीज नहीं थी. लेकिन विभिन्न गौ सेवा समितियों का कार्य संभालते ही मेरा भाग्य चमक गया. फिर गाय बेचारी खाती भी क्या है? पूले में से एक तिनका..." लड़के ने अपने पिता को आश्वस्त किया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'थोड़ी देर बाद उसने सूंघने का अभिनय करके कहा, ''आपने सेंट लगा रखा है?''
अन्विता ने झुककर अपनी साड़ी सूंघी, ''हां, बेटी ने भेजा था.''
''लिखो कि और भेज दें.''
''तुझसे पूछकर ही तो लिखूंगी! तुझे हर बात में दखल क्यों रहता है? पढ़ने-लिखने में तो मन लगता नहीं, इधर-उधर की बातें करवा लो.''

दिखना भाता है. बेटी के स्कूल में फाउंडर्स डे के दिन वह पेरेंट्स के साथ दौड़ी थी तो बेटी कह रही थी, ''और लड़कियों की मम्मी लोगों से, मेरी मम्मी कितनी अच्छी लग रही थीं.''

अन्विता किताब उठाकर झटपट पढ़ाने बैठ गयी. सीमांत ने थोड़ी देर में पूछा, ''आपको मिस सेनगुप्ता मिली थी? क्या कह रही थी?''

''तू अपने को इतना महत्वपूर्ण क्यों समझता है कि वे जब भी मिलेंगी तेरे बारे में बात करेंगी.''

''नहीं, बताओ, आप कह रहे थे कि वे कहती हैं मोटर साइकिल पर हीरो बना घूमता है.''

अन्विता ने किताब पटक दी, ''पढ़ने में तेरा मन कभी नहीं लगता. मैंने तेरी मैडम को कहा कि आपने सीमांत के कान खींच-खींचकर उसे इसकी आदत ही डाल दी है.''

''मैडम को क्या याद होगा! उन्होंने तो पचासों बच्चों के कान खींचे होंगे. बच्चा इनडिविजुअल होता है. वह सोचता है किसने कान खींचे, किसने केनिंग की, किसने डांटा...(हकला कर) किसने सिर पर चढ़ाया.''

अन्विता मुस्करायी. उसके शब्दों को सीमांत ने किस खूबसूरती से उसी पर घुमा दिया. उसने कहा, तेरे कानों को खिंचने की याद आती होगी, आदत जो पड़ी हुई है.''

''लो खींचो.'' उसने अन्विता का हाथ पकड़कर अपने कान पर टिका दिया.

अन्विता ने किताब उठा ली, ''बातें काफी कर चुका, अब पढ़! जायसी तो तुझे अच्छा लगता है.!''

''बनजारा खंड की पंक्तियां—गुनी न कोई आपु सराहा-पढ़कर अन्विता ने कहा, ''तोता तेरी बात कह रहा है कि अपने मुंह मियां मिट्ठू नहीं बनाना चाहिए.''

सीमांत ने अन्विता के लिए यह मुहावरा प्रयुक्त किया था. आज वह चुप रहा.

थोड़ी देर बाद उसने सूंघने का अभिनय करके कहा, ''आपने सेंट लगा रखा है?''

अन्विता ने झुककर अपनी साड़ी सूंघी, ''हां, बेटी ने भेजा था.''

''लिखो कि और भेज दें.''

''तुझसे पूछकर ही तो लिखूंगी! तुझे हर बात में दखल क्यों रहता है? पढ़ने-लिखने में तो मन लगता नहीं, इधर-उधर की बातें करवा लो.''

''आपके एक बेटा भी होना चाहिए था,'' उसने न जाने क्या सोचकर कहा, आप लोगों ने सोचा होगा, बेटी की शादी करके आराम से रहेंगे.''

अन्विता सोचती रही—होना तो न जाने क्या-क्या चाहिए था. सब कुछ वही तो नहीं होता जो हम चाहते हैं. तेरे जैसा खूबसूरत ही होता मेरा बेटा यदि पिता पर जाता तो. तू भी तो मेरे बेटे जैसा ही है. वह चुपचाप सोचती रही, बोली कुछ नहीं. जिस तरह प्रारंभ में उससे रुपये का भावताव कर रहा था, उससे पक्का व्यापारी लग रहा था. उसका निश्छल स्नेह भी अन्विता को कभी-कभी बनावटी को लगता है. व्यापारी वर्ग में एक अतिरिक्त कृत्रिम नम्रता और शिष्टता होती है. अन्विता का अनुभव यही रहा है.

किताब पर निगाह डालते हुए उसने कहा, ''तू बोलता बहुत है.''

''आप नहीं बोलते क्या? जो भी आपसे मिलने आता है, पूरे दो घंटे बैठा रहता है.''

''तू मुझे शिक्षा मत दिया कर. गुरु की श्रद्धा-भक्ति करना सीख. मैं अपने सारे काम रोककर तुझे यही पढ़ाती है?''

उसने हल्के से कहा, ''पता नहीं आपने या किसने पढ़ाया है! मैंने आपको कितना हंसाया है.''

अन्विता ने उसकी बात को अनसुना कर दिया. पढ़ते समय वह किताब के ऊपर कोई आकृति बनाता रहा था. अन्विता ने देखा तो बोला, ''अपने-आप एक शक्ल बन गयी है.''

अन्विता ने उसकी बात का उत्तर न देकर पढ़ाना चालू रखा. देखा कि उसका ध्यान नहीं है. वह पैन से लकीरें खींचने में लगा है, झटके से अन्विता ने कापी खींच ली.

''मैं आपका चित्र बना रहा था.''

अन्विता ने देखा उसके माथे और बालों को उसने काफी सही बनाया है. वह किताब बंद करके उठ गयी. ''तेरा क्या, तू मेरी शक्ल की जगह कोई कार्टून बना देगा. तेरा पढ़ने का मन नहीं है. मुझे भी कुछ काम है. अभी लौटकर कपड़े भी नहीं बदले हैं.''

''कहीं जाना हो तो मैं छोड़ दूंगा.''

''जाना नहीं है. डाक्टर मुझे देखने आयेगा, मेरा परिचित है. दस-बारह दिनों से मेरी तबीयत खराब है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंजेशन है, रात को नींद नहीं आती. सांस चढ़ती रहती है."

"मुझे भी डाक्टर को कनसल्ट करना है."

"क्यों तुझे क्या हुआ है?"

"मेरा दिमाग खराब हो गया है."

"यह तो मुझे पहले दिन से ही मालूम है कि तेरे दिमाग का कोई स्क्रू ढीला है. इसमें क्या नयी बात हुई?"

गीता आकर खड़ी हो गयी थी, उसे दरवाजे की तरफ देखते पाकर सीमांत ने पूछा, "आप किसका इंतजार कर रही हो?"

"किसी का नहीं. मैं क्यों किसी का इंतजार करूंगी. तू मुझसे बेकार के मजाक मत किया कर." गीता झूठमूठ नाराजी दिखा रही थी. सीमांत के मसखरे स्वभाव से वह भी परिचित थी.

गीता के जाने के बाद सीमांत ने कहा, "आपने काफी बड़े होकर पी-एच.डी. किया, गीताजी ने कितनी कम उम्र में कर लिया."

"तो क्या हुआ?"

"गीताजी काफी होशियार हैं. आपसे भी ज्यादा."

"तू उन्हीं से पढ़ लेना." अन्विता ने किताब बंद कर दी.

वह अचकचाया, "मुझे तो बस आप ही पढ़ा देना. मैं तो उनकी बुद्धि की प्रशंसा कर रहा था. उन्होंने आपसे कितनी कम उम्र में डाक्टरेट ले ली. आप आप उन्हें भोले पिक्चर की बसंती बता रही थीं. मैं किसी दिन उनसे कहूंगा."

अन्विता सचमुच नाराज हो गयी, "तू अभी बता दे, तू चढ़ा सके तो मुझे सूली पर चढ़ा दे. कैसा शिष्य है कि गुरू को ब्लैक-मेल कर रहा है!"

"मैं तो गीताजी का गुण गा रहा हूं."

अन्विता ने किताब पटक दी, "तू मुझे जला मत!" उसका अभीष्ट सिद्ध हो गया था. अब वह मन लगाकर पढ़ने लगा था.

सात तारीख को सीमांत को अन्विता से पढ़ते महीना पूरा होना था. वह समय से कुछ पहले आ गया और एक मिठाई का डब्बा मेज पर रख दिया, "मैं बाजार से आ रहा हूं आपके लिए थोड़ी मिठाई लेता आया हूं."

"तू मुझे मिठाई परीक्षा देने से पहले ही खिलाये दे रहा है, खैर पास तो हो ही जायेगा."

"आप सारी मिठाई खुद खाना, (उसने अन्विता के मेहमानों को मिठाई खिला डालने की आदत देख रखी थी) कुछ रुककर उसने कहा, "आप मिठाई खाकर थोड़े मोटे होना, पर हम देखने नहीं आयेंगे" वह अन्विता के पास बैठ गया. भावुक-सा हो रहा था, "मैं बचपन से ट्यूशन पढ़ता आ रहा हूं. आपके पास पढ़कर मुझे बहुत अच्छा लगा..."

अन्विता चुप रही.

"आपको कैसा लगा मुझे पढ़ाकर? मैं तो आपका

पहला और आखिरी स्टूडेंट हूं."

"टीचर की कभी पॉजिटिव राय नहीं होती...वह हर अभिव्यक्ति पर लाल निशान लगाने का आदी होता है. उसका अपरहैंड ही रहना चाहिए." अन्विता समझ न सकी कि वह और क्या कहे? वह तो भोला-भाला बच्चा है, अपनी बात भी सरल-सीधी शब्दों में कह सकता है. अन्विता कुछ कहने लगेगी. तो उसके जीवन के दर्दों की लंबी पंक्ति बिखर जायेगी.

"आप कैसे गुरू हो? मैं लिख रहा था तो आप कह रहे थे, भगवान करे गलत लिखा जाये....आप अपना बड़प्पन बनाये रखना चाहते हो."

"नहीं, बच्चे ऐसा नहीं है. अन्विता ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा, "माता-पिता और गुरू तो बच्चे को अपने से आगे बढ़ा देखकर प्रसन्न होते हैं.

सीमांत ने तुरंत अपने पहले आग्रह को दोहराया, "मैं आगे भी हिंदी पढ़ना चाहता हूं, आप पढ़ा देना."

"जिंदा रही तो पढ़ा दूंगी." अगले सालों की योजना बनाते समय अन्विता की अगस्त महीने की अपनी बीमारी याद आ जाती है, जो भयंकर भी हो सकती थी.

"आप हमेशा यही जवाब देते हो. ऐसे तो मैं भी मर सकता हूं!"

"ऐसा मत कह," अन्विता विचलित हो उठी, "तू तो बच्चा है, खुश रहे, जिंदा रहे, फले-फूले...मैं तो..."

"...अपना जीवन जी चुकी," उसने अन्विता के पहले कभी कहे शब्द दोहरा दिये, "पर आपकी बेटी को तो आपकी जरूरत है."

"क्या जरूरत है, कह रही थी मुझे फो-. .रेगी, पर

गीता आकर खड़ी हो गयी थी, उसे दरवाजे की तरफ देखते पाकर सीमांत ने पूछा, "आप किसका इंतजार कर रही हो?"

"किसी का नहीं. मैं क्यों किसी का इंतजार करूंगी. तू मुझसे बेकार के मजाक मत किया कर." गीता झूठमूठ नाराजी दिखा रही थी. सीमांत के मसखरे स्वभाव से वह भी परिचित थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर

शिव कुमार शिव

बूढ़ी सास ने पुकारा, "बहू, थोड़ा दूध हो तो दे दो, मैं रोटी उसी के साथ खा लूंगी."

"नहीं मांजी. दूध कहां है? सेर भर दूध को चम्मच भर भी आने-जाने वालों की चाय में डालूं—तो भी कम पड़ जाता है. अगर होता तो तुम्हें क्यों नहीं देती?" बहू ने सास से कहा.

सास ने फिर पुकारा, "अच्छा बहू, न हो तो जरा सी दही का ही लगावन दे दे."

"दही? पहले क्यों नहीं कहा मांजी. मैंने अभी-अभी तो गिट्टू को लस्सी बनाकर दी है." बहू ने कहा.

सास ने फिर कुछ नहीं कहा और कोरी रोटी ही मुंह में डालकर गुनगुनायी.

"चाह डालता सारो दूध डाल मो दीयो रोटी देता जोर आवे उत्तर देवो कोरो"."

किया ही नहीं."

"आप बच्चों की सी बात करते हो, पिछले हफ्ते ही तो आपने फोन किया था." एक वयस्क पुरुष की तरह उसने अन्विता की अनावश्यक व्यग्रता का तिरस्कार किया.

"मैं कल से दूसरे विषय पढ़ूंगा. बाद में हिंदी पढ़ूंगा. कोई चीज समझ नहीं आयी तो पूछने आऊंगा. आ सकता हूं?"

"फोन करके आ जाना, आजकल कॉलेज में परीक्षाएं चल रही हैं. मेरे घर में रहने का समय निश्चित नहीं है."

गीता आ गयी थी. अन्विता ने उसे मिठाई दी तो देखा डब्बे के साथ सौ-सौ के पांच नोट हैं. इतने रुपये ही अन्विता ने सीमांत को पढ़ाने के लिए बताये थे. उसने रुपये उठाकर सीमांत से कहा, "तू इतने ढेर रुपये ले आया? मैंने तुझसे बहुत ज्यादे रुपये ले लिये शायद! तू कह रहा था डेढ़ सौ में..."

"आप बार-बार यह बात मत कहो...आप इनसे अपने लिए साड़ी लेना...चौड़ी बार्डर की..."

अन्विता को उसकी प्रशंसा याद आयी जो उसने उसे कानों मो सोने के टॉप्स और चौड़े बार्डर की साड़ी को देखकर की थी. अन्विता के भीतर बहुत गहरा सूनापन उमरने लगा...एक महीना सुंदर स्वप्न की तरह बीत गया. आपनी अस्वस्थता, एकाकी जीवन की चिंताएं और व्यस्तताएं, इकलौती संतान का अनिश्चित भविष्य, अन्य ढेर से सोच...सभी कुछ भूली रही वह. एक सुगंधित झोंक की तरह वह उसके संतप्त जीवन में छाया रहा.

"मैं कल आपको अपने घर ले जाऊंगा."

"तेरे पास होने पर आऊंगी."

"तब दुबारा आ जाना."

"नहीं, आजकल मैं बहुत व्यस्त हूं. जब काम नहीं रहता, तब मुझे बहुत सूना लगता है, तब तेरे यहां जाकर लगेगा. अभी मेरे आने से तेरी पढ़ाई में भी हर्ज होगा. जब आऊंगी तो खूब जमकर बैठूंगी. दो-तीन बार चाय पीयूंगी. तेरा कमरा देखूंगी."

"कमरा देखकर क्या होगा?"

"कमरे को देखकर व्यक्ति का पता चलता है, तूने मेरा कमरा देखा है न, फोन रखा है जिसमें."

"अधूरी जानकारी के आधार पर निष्कर्ष निकालने की तेरी इस आदत से मैं बहुत तंग रही. हर बात में क्यू.ई.डी. ..."

"मैं आज अपना एलबम भी लाया हूं. आपसे मैंने कहा था न कि किसी दिन दिखाऊंगा."

एलबम के कवर पर उसने अपने हाथ से बनी पेंटिंग लगा रखी थी काली पृष्ठभूमि पर गुलाबी हेबिसकस!

"तू पेंटिंग जानता है?"

"मेरे घर में मेरी बनायी काफी पेंटिंग्स लगी हैं. आप आना, तब देखना."

"एक मेरे लिए भी बना देगा." कहकर अन्विता उसके चित्र देखने लगी. शुरू के चित्रों में सात-आठ साल का वह बरामदे की सीढ़ियों पर बैठा हुआ है. दूसरे चित्र में समुद्र से नहाकर निकला है, नंगे बदन बैठा कुछ खा रहा है.

"क्या खा रहा है? लॉलीपॉप?" अन्विता ने मजाक किया.

अगली फोटो देखकर अन्विता ने कहा, "इसमें तो तू एकदम हीरो दिख रहा है."

वह प्रसन्न दिखा.

एक फोटो दिखाकर उसने कहा, "यह पेशोला झील के किनारे की है."

"इसमें तूने मुंह क्यों खोल रखा है?"

"कहां खोल रखा है!" उसने इठलाती-सी शिकायत की, "आप हमेशा कुछ-कुछ कहते रहते हो!"

कुछ किशोरों-युवाओं के मध्य वह नाच रहा है एक किशोरी ठीक उसके सामने है. अन्विता के पूछने से पहले ही उसने बता दिया, "नये साल के दिन क्लब की फोटो है यह."

बचपन से किशोरावस्था तक उसके अनेक चित्रों को अन्विता रूचि से देखती रही, कुछ न कुछ टिप्पणी करती रही. एक चित्र में वह अमिताभ बच्चन के साथ खड़ा हुआ था, दो सुंदर व्यक्तित्व. अन्विता ने मुक्त प्रशंसा की, "इसमें तो तू ग्रेट लग रहा है."

शाम के सात बज गये थे. अन्विता ने उसका शेष कोर्स समाप्त करवा दिया था. सीमांत ने एलबम उठा लिया, "अच्छा, अब चलूं. दोपहर को आप क्या किया करोगी? सोती तो आप हो नहीं."

"अभी तो कॉलेज की परीक्षाएं चल रही हैं. तेरे कारण ड्यूटी नहीं लगवायी थी...अब शुरू कर दूंगी."

"इस धूप में? आप मत जाना."

"नहीं, वह पार्ट ऑफ दी सर्विस है."

"अच्छा, अब चलता हूं," उसने झुककर अन्विता के पांव छुए. अन्विता को वह बेहद छोटा और प्यारा लगा. उसके बालों पर हाथ फेरकर उसने आशीर्वाद दिया, शुभकामनाएं दीं.

"आशीर्वाद लेने तो अभी आऊंगा."

अन्विता बाहर उसकी मोटर साइकिल तक उसे पहुंचाने आयी. वह चला गया! अन्विता को भीतर कुछ दुखा...गहराई में दुखा. वह लौटी क्योंकि शीतल झरने के किनारे से उठकर उसे जीवन की रेगिस्तानी यात्रा में फिर से चल पड़ना था... □

पड़ाव
छायाकार
पवन महेंद्र
मॉडल
अन्विता : कमलाक्षी शर्मा
सीमांत : लहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी अकादमी, दिल्ली
का महत्वपूर्ण प्रकाशन

'इन्द्रप्रस्थ कहानी संग्रह'

- इस संग्रह में वरिष्ठ पीढ़ी के एवं युवा पीढ़ी के कहानीकारों की रचना-दृष्टि एक साथ ही पाठकों के लिए उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है ।
- लगभग 300 पृष्ठ के इस कहानी संग्रह में 35 कहानियां संकलित की गई हैं ।
- ये कहानियां जहां आज के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पहलुओं का आईना प्रस्तुत करती हैं, वहीं जीवन के विभिन्न पक्षों को अपने अंक में समेटते हुए मानवीय रिश्तों, संवेदनाओं और परिवेश से भी जुड़ी हुई हैं ।
- कृपया अपनी प्रति आज ही सुरक्षित कराइए ।
- रॉयल डिमाइ आकार में पक्की जिल्द सहित संग्रह का मूल्य केवल 100/- रु, जिसे सचिव, हिन्दी अकादमी, दिल्ली के नाम मनीआर्डर/पोस्टल आर्डर/बैंक ड्राफ्ट द्वारा नीचे दिये गये पते पर भेजा जा सकता है ।
- अधिक जानकारी के लिए कृपया सम्पर्क करें :

—डॉ. नारायणदत्त पालीवाल
सचिव,
हिन्दी अकादमी,
ए-26/27, सनलाइट इंश्योरैंस बिल्डिंग,
आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110 002.

733950
730274

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्सा

'जिस समय तुमने मुझे देखा था, मैं पत्नी की अपेक्षा बच्ची ही अधिक थी. शर्म के मारे कैसी तो घबरा गयी थी मैं. मेरी उस मन:स्थिति की तुम या तुम-सा कोई पुरुष कल्पना भी कर सके तो आश्चर्य ही होगा मुझे...' क्यों हुआ होगा ऐसा?

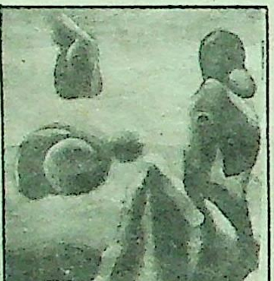

रेखांकन : बागान सरकार

□ यासुनारी कावाबाता

१९६८ के नोबेल पुरस्कार विजेता जापानी साहित्यकार. 'इजू नर्तकी' और 'हाउस ऑव द स्लीपिंग ब्यूटीज' जैसी कथा-रचनाओं के कथाकार.

इस मस्से को ही देखा मैंने सपने में भी.

तुम्हें परेशान करने के लिए वैसे तो ये दो अक्षर ही काफी हैं—मस्सा. इसी की वजह से तो न जाने कितनी बार तुमसे क्या-क्या सुन चुकी हूं.

मेरे दाहिने कंधे पर या फिर कह लो गर्दन पर है यह मस्सा.

''छेड़-छेड़कर इसे मटर जैसा तो कर ही लिया है. अब भी हाथ वहीं का वहीं रहता है. देखना किसी दिन यह अंकुवा जाएगा. बस, फिर मटर ही मटर...'' तुम मुझे चिढ़ाया करते थे. जैसा तुम कहते थे, सामान्य मस्सों से कुछ बड़ा तो था ही यह...अच्छा खासा गोल-मटोल, उभरा हुआ दाना.

बचपन में बिस्तर पर लेटी-लेटी मैं इसके साथ खेलती रहती थी पहलेपहल जब तुम्हारी नजर इस पर पड़ी तो मैं एकदम ही सकुचा गयी थी. रोना ही आ गया था मुझे. तुम्हें भी इसे देखकर आश्चर्य हुआ था न?

''बस कर सायोको. जितना छेड़ेगी, उतना ही बढ़ता जाएगा यह हांऽ ऽ ऽ'' मेरी मां भी मुझसे कहती रहती थी. उस समय मैं बारह-तेरह वर्ष की किशोरी ही रही हूंगी. बस, तभी से मैंने सबकी नजर बचाकर इसे सहलाना शुरू कर दिया था. फिर तो अनजाने ही मेरी यह आदत जड़ पकड़ती चली गयी.

जिस समय तुमने इसे देखा था, मैं पत्नी की अपेक्षा बच्ची ही अधिक थी. शर्म के मारे कैसी तो घबरा गयी थी मैं. मेरी उस मन:स्थिति की तुम या तुम-सा कोई पुरुष कल्पना भी कर सके तो आश्चर्य ही होगा मुझे. उसमें शर्म और संकोच के अलावा भी कुछ विशेष भाव था. लगा था, यह तो बहुत ही भद्दी बात हो गयी है और तभी से मुझे लगने लगा कि विवाह कोई खतरनाक चीज है.

इस मस्से के कारण, हां इस मस्से के ही कारण, अब तक के मेरे सारे रहस्य जैसे एक-एक करके उद्घाटित हो गये थे. मैं स्वयं जिन लज्जास्पद बातों से अब तक अनभिज्ञ थी, तुम जाने कहां कहां से खोज-खाजकर इसी प्रकार की बातों को उघाड़ा करते और मेरे पास तो जैसे सहारे के लिए कोई तिनका भी नहीं बचा था.

तुम तो उस सबके बाद खर्राटे लेने लगते थे. मुझे भी कुछ राहत मिलती थी उस स्थिति में, लेकिन अकेलापन भी कचोटने लगता था. फिर एकाएक ही हड़बड़ाकर मस्से की तरफ जाते हुए अपने हाथ को मैं खींचकर रोक लिया करती. कई बार मन होता कि मां को लिख दूं. अब तो मस्से की तरफ मेरा हाथ बढ़ता ही नहीं है. फिर यह विचार आते ही चेहरा शर्म से लाल हो उठता था.

तुमने एक बार कहा था, ''पगली, एक मस्से को लेकर इतना परेशान हुआ जाता होगा.'' सुनकर मैं कितनी खुश हुई थी. आज जब उन बातों पर विचार करती हूं तो लगता है कि मस्से से खेलने की मेरी इस कुटेव को तुमने इतना तूल न दिया होता, सहज मन से झेल लिया होता तो कितना अच्छा होता?

इस मस्से की आखिर बिसात ही क्या थी? लोगों की नजरें ऐसी बातों की टोह में स्त्रियों की गर्दनें थोड़े ही टटोलती रहती हैं. किसी कुबड़ी या विकलांग लड़की के संदर्भ में कोई भले ही कुछ कह देता हो, लेकिन एक मस्सा...भले ही कितना भी बड़ा क्यों न हो, इसे विकलांगता या कुबड़ेपन की निशानी तो नहीं माना जा सकता. पता नहीं कैसे, तुम्हारे मन में बैठ गया था—कि मुझे इस मस्से से खेलने की लत पड़ गयी है. उसके बाद तो मेरी यह आदत तुम्हारी नजरों में शूल की तरह गड़ने लगी थी.

''बस करो, बहुत हो गया.'' तुम चिढ़कर झल्ला पड़ते थे. तुमने मुझे जाने कितनी बार इस तरह डपटा होगा,'' आखिर तुम्हें इसके लिए अपना बायां हाथ ही क्यों काम में लेना पड़ता है?' एक दिन कुछ ज्यादा ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिढ़कर तुमने कहा था.

"बायां हाथ?" तुम्हारे प्रश्न से एकदम चौंक कर पूछा था मैंने. हां सच, इससे पहले कभी मेरा ध्यान ही नहीं गया था कि मैं इसके लिए हमेशा अपने बायें हाथ का ही प्रयोग करती थी.

"यह मस्सा तुम्हारे दाहिने कंधे पर ही तो है, फिर दाहिने हाथ से ही क्यों नहीं वह सब करती हो?"

"ओह." मैंने अपना दाहिना हाथ उठाकर कोशिश की थी. फिर कहा था, "ऊं हूं ऐसे तो बड़ा अटपटा लगता है."

"अटपटा क्या है इसमें?"

"मुझे तो बाएं हाथ से ही ठीक लगता है."

"और तुम्हारा दाहिना हाथ ज्यादा पास पड़ता है, सो?"

"पर इसे यों पीछे मोड़ना मुश्किल है."

हंसेगा कि जरूर इसके श्रीमानजी के गड़ा होगा यह मस्सा."

"तुम डाक्टर से साफ-साफ कह देना कि मुझे इससे छेड़-छाड़ की गंदी आदत पड़ गयी है इसलिए इसे हटाना जरूरी लग रहा है."

"सच ? पर यह बेचारा मस्सा, ऐसी जगह पड़ा है जहां शायद ही किसी की नजर जाती हो. फिर भी तुम...? इससे तो तुम ही थोड़ा सह लिया करो तो...?"

"अरे बाबा, इस मस्से से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है. बस, तुम यह हर समय की छेड़-छाड़ बंद कर दो तो...?"

"क्या करूं? ध्यान ही नहीं रहता कुछ भी."

"झक्की हो तुम तो. मैं कुछ भी क्यों न करूं, तुम अपनी आदत से बाज आने वाली नहीं हो."

"कोशिश तो करती हूं कि वहां हाथ न जाय, इसीलिए तो बंद गले के

कपड़े पहनने शुरू कर दिये हैं."

"मोड़ना मुश्किल...?"

"और क्या? इस हाथ को तो फट से बढ़ाकर वहां तक ले जा सकते हैं और दाहिने हाथ को तो पीछे घुमाकर वहां तक पहुंचना पड़ेगा."

उन दिनों, वैसे तो मैं सहजता से तुम्हारी हर बात मान लिया करती थी, इस बात पर भी मन में आया तो था कि आलिंगन के समय कहीं ऐसा तो नहीं लगता था तुम्हें कि मैं वैसा करते हुए अपने उस तरह बढ़े हुए हाथ की कोहनी से तुम्हें परे धकेल रही हूं? यह भी लगा कि मैं तुम्हारे प्रति कुछ अधिक ही कठोर होती जा रही थी.

मैंने ठंडे स्वर में प्रति प्रश्न किया था कि बायें हाथ से यह सब करने में आखिर ऐसी क्या बुराई है? तुमने कहा था, "बायां हो या सीधा, यह आदत ही बकवास है."

"तो मैं कहां इनकार कर रही हूं."

"कितनी बार कह चुका हूं कि डाक्टर से कटवा-कुटवाकर छुट्टी कर डालो. सो नहीं हो सकता तुमसे."

"न, मुझे शर्म आती है."

"शर्म की क्या बात है इसमें?"

"मस्सा कटवाने के लिए भी कोई डाक्टर के पास जाता होगा?"

"क्यों नहीं? कई लोग जाते हैं."

"जाते हैं, लेकिन चेहरे पर हो तो भी समझ में आता है. गर्दन या कंधे के मस्से के लिए कौन जाता होगा डाक्टरों के पास? डाक्टर भी सुनकर

"फिर भी कोई फर्क तो पड़ा नहीं है."

"पर इसे छूने में तुम्हारा बिगड़ता क्या है?"

"बिगड़ेगा क्या? बस तुम्हारी यह लत मेरी आंखों में खटकती है बुरी तरह. इसीलिए छोड़ने को कहता रहता हूं."

"अच्छा. लेकिन इसमें खटकने वाली बात क्या है आखिर?"

"वह सब छोड़ो. मुझे अच्छा नहीं लगता तो नहीं लगता और इसीलिए तुम्हें अपनी यह बेहूदी हरकत छोड़ देनी चाहिए."

"मैं कहां कह रही हूं कि नहीं छोड़ूंगी!"

"मुंह से ही कहोगी लेकिन हाथ वहीं का वहीं पहुंचता रहेगा. और यदि उस समय तुम्हारे चेहरे के भाव देखो तो लगेगा कि जैसे बिलकुल ही बेखबर और अनजान हो, मुझे इसी बात से तो और ज्यादा कोफ्त होती है."

तुमने शायद बिल्कुल सच कहा था लेकिन इन शब्दों ने जैसे मेरा हृदय चीरकर रख दिया था. चिढ़कर मैंने कहा था, "ठीक है, जब भी तुम मुझे इसे छूते देखो तो फटाक से मेरे हाथ पर लगाना एक खींचकर, बल्कि थप्पड़ भी जड़ देना मेरे मुंह पर."

"ओफ्फो तुम खुद ही क्यों नहीं समझतीं कि दो तीन साल से यही कि यही बात सुननी पड़ रही है तो इस बेकार-सी आदत को छोड़ ही दो?"

मैं बिना कुछ बोले तुम्हारे पिछले शब्दों में ही उलझी जा रही थी, "मुझे - इसी बात से तो ज्यादा कोफ्त होती है."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

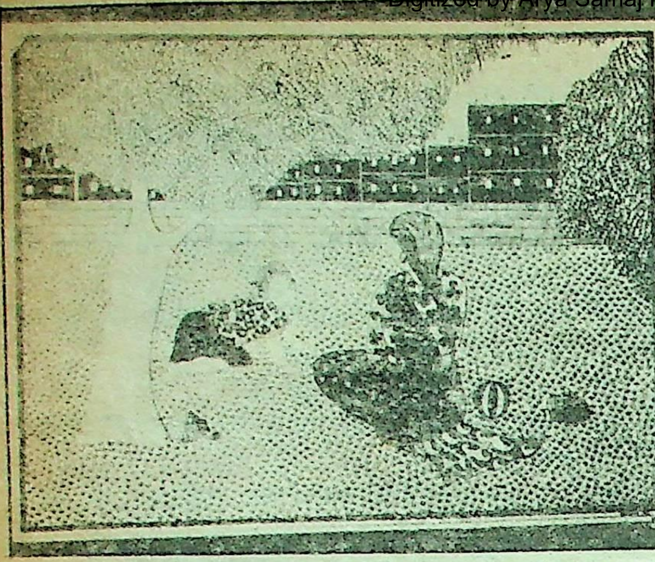

अपना बायां हाथ गर्दन पर लपेटे खड़े होते समय मेरी स्थिति कितनी उदास और करुण लगती थी. अपनी उस स्थिति के लिए एकाकीपन जैसा भारी भरकम शब्द प्रयोग में लाते हुए मुझे कुछ संकोच होता है. मैं उस स्त्री की तरह दीन-हीन प्रतीत होती थी जो मात्र अपने आप को ही बहलाने की कोशिश कर रही हो. और मेरी मुग्धमुग्ध तुम्हारे कथनानुसार एकदम बेखबर और अनजान...ऐसा क्यों?

क्या तुम्हें ऐसा कुछ लगा कि तुम्हारे प्रति समर्पण के समय मैंने तुमसे कुछ छिपाये रखा था? कि अपनी इसी आदत के कारण मस्से को छूते समय मैं किसी दिवास्वप्न में डूब जाती थी और मेरे अंतर की वास्तविकता मेरे चेहरे पर उभर आती थी?

कहीं इस समझ के पीछे यह तो कारण नहीं था कि तुम स्वयं मुझसे असंतुष्ट थे और उसी वजह से मेरी इस न कुछ-सी आदत को इतना तूल दे रहे थे? सोचती हूं, मेरे हाथ को उस दिशा में बढ़ते देख यदि तुम जरा-सा हंसते हुए ही मेरी ओर देख भर लेते, इससे आगे कुछ भी न सोचते तो क्या वह तुम्हारे प्यार का प्रतीक नहीं होता?

मेरे मन में उगा यह विचार कितना भयंकर था कि क्या दुनिया में कहीं कोई ऐसा भी पुरुष हो सकता है जिसे मेरी यह आदत प्यारी लगे, लगती रहे...?

आरंभ में तो प्यार के कारण ही तुम्हारा ध्यान इस ओर गया था, इसमें मुझे लेशमात्र भी शंका नहीं है. लेकिन क्या ये छोटी-छोटी बातें ही बढ़कर वैवाहिक जीवन को कटु नहीं बना देतीं? सच्चे सुखद दांपत्य में इस तरह की बातें दृष्टि से ओझल हो जाती हैं. ऐसे लोग भी होते हैं जो एक दूसरे में मीन-मेख निकालते कुछ न कुछ खोज ही लेते हैं. मेरा मतलब यह नहीं कि जो दंपती एक दूसरे के मनोनुकूल ही व्यवहार करते हैं वे ही एक-दूसरे को अधिक प्यार करते हैं और जिनके बीच खटपट चलती रहती है, वे एक दूसरे के शत्रु ही होते हैं. मेरा आशय मात्र इतना ही है कि तुमने मेरी इस आदत को अनदेखा कर दिया होता, इतना तूल न दिया होता तो बहुत अच्छा रहता.

आखिर नौबत यहां तक आ पहुंची कि तुम मुझ पर हाथ उठा बैठे, तुमने मुझ पर लात तक चला दी. तड़पकर मैंने कहा था, ''अपने आप को जरा सीमा में रखोगे? एक मस्से को छूने के बदले मुझे यही सब झेलना पड़ेगा?''

अब कुछ भी नहीं किया जा सकता. तुमने कांपते स्वर में कहा था. तुम्हारी मन:स्थिति मैं भांप रही थी अस्तु मुझे तुम पर क्रोध नहीं आया. लेकिन मैं यह बात किसी को भी बताती तो वह यही सोचता कि तुम बेहद क्रोधी स्वभाव के हो. सच तो यह कि हमारा संबंध उस बिंदु पर पहुंच गया था जहां छोटी से छोटी बात भी हमारी विसंगति को बढ़ाने लगी थी. उसी स्थिति में तुम्हारा हाथ मुझ पर उठ गया था,. इससे हमारे बीच एक खुलापन भी आया.

मैंने आवेश में कहा था, ''नहीं, मेरी यह आदत कभी नहीं छूट सकती, किसी तरह नहीं छूट सकती. चाहो तो मेरे हाथ बांध दो.'' कहते हुए मैंने दोनों हाथ तुम्हारे सामने बढ़ा दिये थे. तुम भी घबरा गये थे. तुम्हारे क्रोध का उबाल ठंडा पड़ गया. तुमने कमर में लटकती डोरी खींच कर मेरे हाथ बांध दिये और उन्हीं बंधे हाथों में मेरे बिखरे बालों को संवारते हुए तुम मेरी ओर ताकते रहे. उस समय तुम्हारी दृष्टि का भाव देखकर मुझे बहुत-बहुत अच्छा लगा था. लगा था, अब मेरी यह आदत छूट ही जाएगी.

उसके बाद तो यह हुआ कि किसी के मुंह से मस्से का नाम भी सुनाई देता तो गुस्सा आने लगता था. लेकिन थोड़ा समय बीतते न बीतते मेरी आदत फिर सिर उठाने लगी. क्या इसलिए मैं तुम्हारा रहा-सहा प्यार भी खो बैठी थी? तुम्हारी भंगिमा मानो यह कहने लगी थी कि मैं तो तौबा मान गया, अब जो मन में आए, करो! उसके बाद तो मुझे मस्से से छेड़-छाड़ करते देखकर भी तुम ऐसे बन जाते थे मानो कुछ देखा ही न हो. फिर कभी तुमने एक शब्द भी इस विषय में नहीं कहा.

और फिर न जाने कैसे, जो आदत इतने कुछ के बाद भी नहीं छूट सकी, एकाएक गायब हो गयी.

''देखा तुमने, मस्से से मेरा खेलना एकदम ही छूट गया है?'' ध्यान में आते ही मैंने कहा था.

''ऊं...'' करके तुम चुप रह गये थे. तुमने मेरी ओर ऐसी खाली दृष्टि से देखा था जैसे इस सबसे तुम्हारा कभी कोई सरोकार ही न रहा हो.

मन हुआ. पूछूं कि यह बात तुम्हारे लिए इतनी गौण थी तो इतना सब मेरे साथ क्यों किया था तुमने? लगा—कि तुम भी शायद ऐसा ही कुछ कहना चाहते होगे कि तुम्हारी यह कुटेव बिना कोशिश यूं ही छूट सकती थी तो तुम इतने दिन तक इसे पकड़े क्यों बैठी रहीं. लेकिन तुम तो जैसे मुझसे कुछ भी न कहने की कसम खाए बैठे थे, कुछ नहीं बोले. तुम्हारे चेहरे के भाव यह कह रहे थे कि ऐसी आदत जो न औषधि थी न विष...गयी तो क्या और रही तो क्या? मुझे इस सबसे क्या? भले न सारे दिन इसी में लगी रहो. मेरा मन एक दम बुझ गया और तुम्हें खिझाने के लिए ही तुम्हारे सामने खड़े-खड़े एक बार उसे छू लेने की इच्छा हो आयी. पर

ग़ज़ल

□ राम बहादुर सिंह भदौरिया

जलते-जलते बचा आशियाना मेरा,
भा गया उनको फिर गुनगुनाना मेरा.

बिजलियों से अदावत कभी थी नहीं,
हां, मकसद था बहुत मुस्कराना मेरा.

जिंदगी घूमती है बियाबान में,
लोग आज पूछते हैं ठिकाना मेरा.

अश्क से हाले दिल सब बयां हो रहे,
मुख्तसर हो गया है फसाना मेरा.

बुलबुलें बाग में चहचहाने लगीं,
काम आया जिगर का जलाना मेरा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्चर्य, हाथ ही नहीं उठा. गर्दन झुकाये मैंने अपने होठ काटे. मेरे कान तुम्हारे मुंह से ये शब्द सुनने को तरसते ही रहे कि अरे तुम्हारे मस्से का क्या हुआ? अब तो 'मस्सा' शब्द ही हमारी शब्दावली से गायब हो गया था.

मां के यहां आने पर मैं एक दिन मां के साथ नहा रही थी. मां ने टोका, ''सायोको, कैसी हो गयी है तू? अभी से यह हाल है तो आगे क्या होगा!'' मैंने चौंककर मां की तरफ देखा. हां, वह तो अब भी वैसी ही थी, पहले जैसी. वही गठा हुआ शरीर और ताजादम चेहरा.

''और तेरा मस्सा, कितना सुंदर लगता था!''

मन हुआ, कह दूं मां से कि इसी मस्से की वजह से तो मुझ पर जाने क्या-क्या बीती है! लेकिन कहा इतना ही कि वह तो कहते है कि 'डाक्टर के यहां जाकर कटवा डालती तो ठीक रहता.'

''कटवा देती? और वहां घाव का दाग रह जाता, सो? हम तुझे कितना चिढ़ाते थे कि सायोको ससुराल जाकर भी इसी के साथ खेला करेगी.''

''खेलती तो थी.''

''सो तो हम जानते ही थे.''

''पर मां, यह आदत थी तो खराब ही न? मैंने कब शुरू किया होगा इससे खेलना?''

''अब कैसे बताऊं? मुझे तो यह भी ध्यान नहीं कि मस्से किस उम्र में निकलते होंगे. जन्म के समय तो होते नहीं हैं शायद.''

''मेरे किसी भी बच्चे के नहीं है कोई मस्सा.''

''अच्छा? तब तो बड़े होने पर ही निकलते होंगे. और एक बार दिखाई देने के बाद तो इससे चिपक ही जाते होंगे. सायोको, इतना बड़ा मस्सा मैंने किसी के भी नहीं देखा. तू बहुत छोटी थी, तभी से देखती आ रही हूं मैं इसे.'' कहते हुए मां मेरे कंधे की ओर देखते हुए हंसने लगी.

मुझे याद है, बचपन में मां और बहनें मस्से को छेड़ा करती थीं. तब तो यह छोटा ही था. शायद बार-बार छेड़ने के कारण ही मेरा ध्यान इस तरफ जाने लगा होगा. बाद में मेरी आदत ही बन गयी इससे खेलने की. आज एक बार फिर इससे खेलते हुए अपने बचपन और जवानी की स्मृतियों को पीने की कोशिश कर रही हूं. इससे खेले हुए मुझे न जाने कितने वर्ष हो गये हैं.

तुमसे दूर... अपनी मां के यहां.. जहां मैंने जन्म लिया था, वापस आ

गयी हूं. जितना चाहूं इससे खेलूं. मुझे कोई रोकने-टोकने वाला नहीं है. लेकिन अब कोई तुक नहीं रह गयी है. जब भी मेरी अंगुलियां इसे छूती हैं, आंखें बरसने लगती हैं. मैं अपने बचपन के उन दिनों के याद करना चाहती हूं किंतु मस्से की ओर हाथ बढ़ाते ही तुम मेरी दृष्टि के सामने आ खड़े होते हो. बेहया पत्नी के रूप में बदनाम हो चुकी हूं मैं और शायद मुझे तलाक भी मिल ही जाएगा. मैंने कभी भी नहीं सोचा था कि यहां बिस्तर पर पड़े-पड़े मुझे तुम्हारे ही ख्याल आते रहेंगे. आंसू से तर तकिये पर मैं करवट बदलती हूं और यह मस्सा मेरे सपने में भी आ खड़ा होता है.

नींद उड़ने पर यह तो समझ में नहीं आया कि वह कमरा कहां था. लेकिन उस कमरे में हम दोनों के अलावा एक और स्त्री थी. मैं पी रही थी. खूब पी चुकी थी. किसी बात पर तुम्हारे सामने गिड़गिड़ा रही थी. मेरी वह आदत फिर शुरू हो गयी थी. हमेशा की तरह हाथ सामने से ले जाकर मस्से तक ले गयी थी कि मस्सा उखड़ कर मेरी चुटकी में आ गया. जरा भी दर्द नहीं. एकदम अनायास. मेरी चुटकी में जैसे कोई भुना हुआ मटर का दाना ही हो.

सिर चढ़े बच्चे की तरह मैंने उसे तुम्हारी नाक के पास के गड्ढे में रखने की जिद पकड़ ली. खूब रोना धोना और पैर पटकना शुरू कर दिया. तुम्हारे हाथ खींचे, गर्दन में झूल गयी. सबेरे जागने तक मेरा तकिया भीग चुका था. मैं तब भी रोये ही जा रही थी. थककर मैं चूर हो चुकी थी लेकिन मन कुछ हल्का लग रहा था जैसे कोई भारी बोझ हट गया हो. मेरे होठों पर क्षणिक मुस्कान कौंधी. मैं उसी तरह पड़ी रही. सोचा, सचमुच ही तो मस्सा गायब हो गया? सुनिश्चित करने को मस्से की ओर हाथ ले जाते हुए मन जाने कैसा होने लगा.

अब बात इतनी-सी है कि मस्सा जस का तस है, मटर के काले दाने जैसा. तुम्हारी नाक के पास भी एक मस्सा है जिसके लिए मेरे मन में कभी भी कोई ऐसी वैसी बात नहीं आयी. मैंने उसके विषय में कभी एक शब्द तक नहीं कहा था, फिर भी लग रहा है कि शायद उसका भार रहा ही होगा. अपने मस्से को तुम्हारे मस्से में रखने पर वह फूलकर खूब मोटा हो जाता और उसमें से एक सुंदर परी-कथा जन्म लेती. तब मेरी जगह तुम मस्से का सपना देख रहे होते,यह सब ध्यान में आते ही मैं कितना खुश हो रही थी.

एक बात तो मैं भूल ही गयी. उस दिन तुमने कहा था, ''मुझे इसी बात से तो ज्यादा कोफ्त होती है.'' तुम्हारी इस बात का मर्म मैं अच्छी तरह समझ गयी थी. मुझे लगा था कि तुम्हारे शब्दों में अब भी लगाव का कोई अंश शेष रह गया है. मस्से को छूते समय मेरे मन का प्रतिबिंब मेरे चेहरे पर झलक आता होगा क्या? इतने पर भी मन पूछता है कि मैंने जो

ग़ज़ल

□ लक्ष्मीशंकर बाजपेयी

जिनके माथे पे कामयाबियों के सेहरे हैं,
ऐसे लोगों में कई ख़ौफ़नाक चेहरे हैं.

जिनके दरबार में फ़रियाद सुनी जाती है,
ये सुना जाता है, वो लगे जरा बहरे हैं.

कैसे पहुंचेगी मेरे दर्द की बू उनके करीब,
उनके डर और खुशबुओं के कड़े पहरे हैं.

हमको मालूम नहीं उनकी हकीकत क्या है,
वो जो दिखलाते हैं वो ख्वाब तो सुनहरे हैं.

आपकी झूठी तसल्ली से भला क्या होगा,
यूं न भर पाएंगे, ये ज़ख्म बहुत गहरे हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दादाजी, चिड़िया और भिखारी

□ सुधीर सक्सेना 'सुधि'

घर में दादाजी की मृत्यु हो गयी थी. वह चार साल की आंखों से टुकुर-टुकुर देखता रहा था. मां, पिताजी, बुआ, चाचा सभी रो रहे थे. वह भी रोने लगा था. फिर उसने देखा कुछ लोग आये थे और दादाजी को 'रामनाम सत्त है' कहते हुए ले गये थे.

कई सप्ताह बाद एक दिन उसने देखा कि घर के आंगन में बनी नाली में चिड़िया का बच्चा मरा पड़ा है और दो चिड़ियां कपड़े सुखाने वाली तनी पर बैठी जोर-जोर से चीं-चीं कर रही हैं. उसने सोचा, 'अब फिर कुछ पक्षी आयेंगे और इसे ले जाएंगे. वह वहीं बैठा रहा. आखिर उसने मां से पूछा, ''मां, वो चिड़िया का बच्चा...''

''हां बेटे, अभी मेहतरानी आयेगी, तब बाहर फिंकवा देंगे.''

''लेकिन क्यूं? कोई मरता है तब तो...मां दादाजी की जब मृत्यु हुई थी तब तो खूब लोग आये थे और...''

मां, बेटे की भोली जिज्ञासा समझ गयी. बोली, 'नहीं रे, इनसान का ही दाह-संस्कार किया जाता है जैसे तुम्हारे दादाजी का किया था.'' उसकी समझ में यह बात आ गयी थी.

तीन दिन बाद ही उसने सुना कि गली के नुक्कड़ पर एक बूढ़ा भिखारी कल रात मर गया है. मुहल्ले के कई बच्चे उसे देख आये थे. वह भी देखने गया. उसने देखा, भिखारी पर मक्खियां भिनभिना रही हैं. लोग मुंह बिचकाकर आगे बढ़ रहे हैं. कोई-कोई दूर से ही सिक्का फेंक रहे हैं. वह एकटक देखे जा रहा था. अचानक उसने देखा कि दो कुत्ते उस भिखारी के फटे कुरते को अपनी ओर खींच रहे हैं. वह घबरा गया. भागता हुआ वापस घर लौट आया.

''मां! मां! ! वो बूढ़ा बाबा....''

''हां बेटे वो भिखारी था, मर गया है.''

''लेकिन मां, कुत्ते उस बाबा के कुरते को खींच रहे थे...''

''हां बेटा, लावारिस था न!''

''अब?''

''अब क्या? कमेटी वाले आयेंगे और उसे ठेले में डालकर ले जायेंगे बस!''

''बस!'' उसकी आंखों में दादाजी, चिड़िया का बच्चा और भिखारी बार-बार घूमने लगे. वह सोचने लगा, दादाजी इनसान थे. चिड़िया? चिड़िया थी, लेकिन वो बूढ़ा भिखारी? वो भी तो इनसान था! □

इतनी बातें कही हैं, क्या उनमें से कोई भी मुझे उस हीनत्व से मुक्त करने के लिए काफी नहीं है? मैंने तुमसे कहा था कि मेरी मां व बहनों ने बचपन में बहुत ही सहलाया है, इसीलिए बाद में मेरी भी आदत पड़ गयी.

मैंने मां से एक दिन पूछा भी था कि उसने मुझे एक बार इस बात के लिए खूब डांटा था न?

''हां, डांटा तो था पर उस बात को तो कई साल हो गये.''

''लेकिन तुमने मुझे डांटा क्यों था?''

''क्यों क्या... आदत ही एकदम बेकार थी.''

''फिर भी. देखकर तुम्हें लगता कैसा था?''

''अब कैसा क्या... अच्छी बात तो नहीं थी.''

''सो छोड़ो, उस समय कैसा लगता था? क्षोभ होता था? बदतमीजी लगती थी? आंखों में खटकता था?''

''अब क्या बताऊं. बस जब तू नींद की-सी खुमारी में जब तब हाथ को वहीं घुमाती रहती थी तो मन में आता था कि ऐसा न करे तो ठीक.''

''तुम्हें बेहद गुस्सा आता होगा न?''

''हां, कई बार बड़ी चिढ़ चढ़ती थी.''

''फिर भी तुम लोग मुझे चिढ़ाना बंद नहीं करते थे न?''

''सो तो है.''

क्या ऐसा नहीं हो सकता कि अपने उसी बचपन को अवचेतन में याद करते हुए अन्यमनस्क भाव से ही मस्से की साथ खेलने लगती हूंगी.

अब मुझे तुमने यही पूछना है कि कहीं तुम आरंभ से ही किसी गलत-फहमी में तो नहीं रहे? कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम्हें लगता रहा हो कि मैं किसी अन्य पुरुष को याद करते हुए वह सब करती थी? मस्से से खेलने की आदत कोई ऐसी बात तो नहीं थी कि मुझे बहाने की जरूरत पड़ती. एक ही प्रश्न है मन में कि मुझे पत्नी रूप में अयोग्य सिद्ध करने के लिए जिन बातों का सहारा लिया गया, उन सबका आरंभ इसी तरह तो नहीं हुआ था?

आरंभ में जो बातें हमारे प्यार का संकेत थीं, उनकी ओर से तुम्हारा ध्यान हट गया और फिर वे ही सब बातें पत्नी रूप में मेरी अयोग्यता का प्रमाण लगने लगी थीं न तुम्हें? यह सब लिखते समय मेरे मन में यह आशंका भी है कि कहीं कोई यह न कह बैठे कि अब मैं अपने पति को गलत सिद्ध करने की कोशिश कर रही हूं. खैर जो भी हो, यह सब एक बार तुमसे कहे बिना रह नहीं पा रही हूं. □

अनुवाद : मनमोहिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

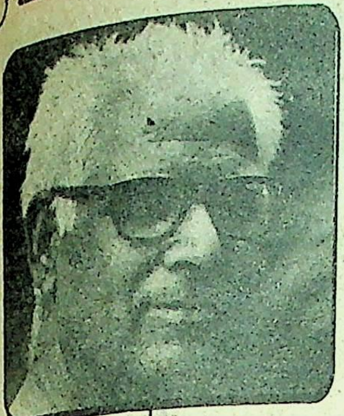

गुलमुहर

दहक रहा है गुलमुहर
जलती हुई मई की दोपहरी में
पोर-पोर से फूट पड़े हैं
लाल-लाल फूलों के गुच्छे
और रंग रहे हैं जलता हुआ सन्नाटा.

चलते-चलते लोग
यहां आकर ठहर जाते हैं
भर जाते हैं ये फूल—
किसी की आंखों में
मई के क्रांति-दिवस की तरह
किसी की आंखों में
प्रेयसी के दहकते कपोल की तरह
किसी की आंखों में
कल के खूबसूरत सपनों की तरह
किसी की आंखों में
आज की जलती भूख की तरह
ये फूल
बच्चों की आंखों में
गुब्बारे बन जाते हैं
बूढ़ों की आंखों में
पूजा के फूल
और युवतियों की आंखों में
जूड़े में सजाये जाने की कामना बन
कसमसाते हैं

इसे मैंने अपने एक जन्मदिन पर लगाया था
अपने मकान में, फाटक के पास
इसकी छांह
मकान के बाहर सड़क पर फैल गयी है
गर्मी से घायल आते-जाते लोग
इसके नीचे आकर ठहर जाते हैं
कुछ देर के लिए
और अंग-अंग से पीने लगते हैं
इसकी आत्मीयता शीतल जल की तरह
काम से थकी कोई मजदूरनी
दोपहर को
यहां आकर लेट जाती है
और अपने शिशु को दूध पिलाती है
छाती से चिपकाये हुए
केंआ...केंआ...रोता हुआ बच्चा
धीरे-धीरे सो जाता है
और किसी सुंदर सपने से
उसके होंठ फरफराने लगते हैं

हांफती-हांफती गायें
इसके नीचे आकर बैठ जाती हैं
और पगुराने-रंभाने लगती हैं
पेड़-विहीन मकानों के इस जंगल में
न जाने कौन-कौन से पंछी
कहां-कहां से आते हैं
डाल-डाल पर फुदकते हैं
चहचहाते हैं, गाते हैं
और भर देते हैं आदिम राग से
मेरा पक्का मकान

धूल भरी आंधियां आती हैं
मेरे घर की ओर
प्रतिरोध में लड़ता है यह पेड़
सिर और बांहें हिला-हिलाकर
दिन भर धूप में खिलखिलाता है
रात भर चांदनी में नहाता है
वर्षा में मस्त होकर भीगता है
और देर तक
उसके शरीर से बूंदें टपकती हैं
टप...टप...टप....
हां, मैंने इसे अपने जन्म दिन पर
लगाया था
अन्य जन्म दिन तो महज भोग बनकर
आये थे
और न जाने कहां विलीन हो गये
यह जन्मदिन तो दान बनकर आया था
और एक मूर्त रचना बन गया है
गुलमुहर के रूप में
मेरे घर और सड़क के बीच
एक लय-सा तन गया है. □

□ रामदरश मिश्र

जन्म : १५ अगस्त १९२५.
हिंदी के प्रमुख कवि कथाकार.
प्रमुख कृतियां : 'जुलूस कहां जा रहा है' 'पथ के गीत', 'पक गई है धूप', 'कंधे पर सूरज', 'दिन एक नदी बन गया' सहित अनेक कविता संग्रह. 'इकसठ कहानियां', 'दिनचर्या', 'सर्पदंश', 'वसंत का एक दिन' [कहानी संग्रह]. 'अपने लोग', 'दूसरा घर' और 'पानी के प्राचीर' [उपन्यास]
संप्रति : स्वतंत्र लेखन.
संपर्क : आर-३८, वाणी विहार, उत्तम नगर, नई दिल्ली-११००५९.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशासन में मूंछ प्रिंसिपल

□ गोपाल चतुर्वेदी

सच है. समय बलवान है कभी मुख्य मंत्री बदलता है, कहीं गवर्नर कभी पूरी की पूरी सरकार. हमने आजादी के बाद से देखा है. हर अहम परिवर्तन के साथ शिक्षा नीति में इंकलाब ज़रूर आता है. पढ़ाई कभी 'बुनियादी' हो जाती है, कभी 'तकनीकी'. गनीमत है कि ट्यूशन, टूटी स्लेट और टाट-पट्टी की कक्षाएं कुत्ते की दुम-सी वैसी की वैसी रहती हैं. हम अपने विद्वान मित्र आतताई जी की शरण में जाते हैं.

''ऐसी क्या ख़ास बात है कि हर सरकार तालीम के दायरे में सुधार पर उतारू रहती है?''

''बिना ढंग के एजुकेशन के अच्छे नागरिक, बेहतर इंसान और रुपये-पैसे या चने-चबैने की तरह जनसेवा की कसम खाने वाले लोग कैसे उपलब्ध होंगे. तस्करी में तरक्की, मतदान में मारपीट, हर क्षेत्र मूल्यहीनता का माहौल कड़ी मेहनत और गहन चिंतन से बना है. शिक्षा जैसी महत्वपूर्ण चीजों पर ध्यान नहीं दें तो क्या बढ़ती कीमतों जैसे मामूली मामलों से मगज़-पच्ची करें.''

हम प्रभावित हुए. आततार्इ फिलहाल लैक्चरर तक नहीं हैं. किसी न किसी रोज़ शिक्षा मंत्री अवश्य बनेंगे. हमने उनके साथ का पूरा फायदा उठाया:

''भाई साब, अंग्रेजों के पलायन के पश्चात सब कुछ बदला है. पर हमने अपनी प्रशासनिक व्यवस्था को प्रजातंत्र की जरूरतों के मुताबिक क्यों नहीं ढाला?''

''आपके विचार से सरकार कौन चाहता है?'' आततार्इ जी मुस्कराये.

''यह भी कोई पूछने की बात है, जनता अपने नुमाइंदे चुनती है, चुने लोग अपना नेता. मुख्य मंत्री-मंत्री बनते हैं. वही सरकार की नैया खेते हैं.''

''बड़े अफसोस का मसला है कि इतने सालों के अनुभव के बावजूद आपकी गलतफहमी अब भी बरकरार है.''

''क्यों?'' हमने आश्चर्य जताया.

''सरकार चलाना गंवार जन प्रतिनिधियों की नहीं, जानकार अफसरों की जिम्मेदारी है.''

''फिर तो कोई बदलाव आना नहीं. अफसर कोई कालिदास हैं जो व्यवस्था की यथास्थिति की डाल काटेंगे.''

''आप ग़लत समझते हैं. अफसर वक्त के साथ अपने को लगातार बदल रहे हैं.''

''वह कैसे?'' हमने उनसे पहेली न बुझाने का अनुरोध किया.

''आई.सी.एस. का नाम आई.ए.एस. हो गया. नये विभाग बन गये. नयी सेवाओं का गठन हो गया. क्या यह सुखद बदलाव नहीं है?''

''मेरा मतलब जनता के प्रति दृष्टिकोण से है. राज गये, अफसर आ गये. रिआया तो वहां की वहीं है.'

''अधिकारी तो अंग्रेजों के साथ देश दौड़ गये. अब तो सरकार में सेवक हैं. जमकर जनता की सेवा कर रहे हैं.''

हम अपने नायाब सार्वजनिक नौकर का सोचने लगे. मिलने की कोशिश करो तो मीटिंग में व्यस्त हैं. फोन करो तो किसी दूसरे अधिकारी से चर्चा में. घर पर सताओ तो या तो नहाता है या पूजा करता है. हमारा सेवक ऐसी सेवा करता है कि जिससे साबका पड़े उसे ठिकाने लगा दे.

पहले कभी नहीं मिलते थे. रिटायर होकर पहली बार हमारे चाचा हमसे आदमी की तरह मिले.

''भतीजे! पहले क्यों नहीं आये? हमने तो हमेशा अपनों का ध्यान रखा. कुछ काम ही करवा देते. अपने आखिर होते किसलिए हैं.!''

''कोई काम ही नहीं पड़ा सर!''

''यह तो कहने की बातें हैं. तुम्हें क्या पता. जब हम राज्य सरकार में थे तो तुम्हारी चाची के मौसेरे भाई के भांजे का साला इंजीनियर था. उसके ऊपर बारह लोग थे. प्रमोशन की पोस्ट एक., अब अपने तो अपने होते हैं न, हमने बारह के बारह सस्पेंड कर दिये और अपने को तरक्की दे दी. हल्ला मचा. सिफारिशें आयीं. हमने दरियादिली दिखायी. 'सस्पेंशन' वापस ले लिया.''

''अंग्रेजों का रूल रहा होगा चाचा!''

''नहीं भतीजे. अंग्रेज मेरिट और सीनियरिटी का बड़ा कायल था. अपनों का भला तो अपने आज़ाद भारत में ही मुमकिन है. ताऊ लोग राजनीति में करते हैं, चाचा लोग प्रशासन में.''

हमने चाचा से शिकायत की कि प्रशासन में अब भी वही अंग्रेजों का तौर-तरीका जारी है. उन्होंने हमें उदाहरण देकर बताया कि ऐसा नहीं है. अंग्रेज इंग्लैंड की कालोनी में काम करते थे. हम अपने देश में आराम करते हैं. उन्होंने प्रशासन को पूरी तरह इंसान-निरपेक्षकर आधुनिक विज्ञान नहीं बनाया था. हमने न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत को फाइल के निपटान में अपनाया है. साइंस के अनुसार ऊपर की चीज का नीचे आना लाज़मी है जैसे सचिव या मंत्री को लिखा गया पत्र. खत खरामा-खरामा सीढ़ी-दर-सीढ़ी सहायक तक आता है. अंग्रेजों के राज में अकसर गैर-साइंटिफिक काम हो जाते थे. हमारे आजाद प्रशासन में ऐसा कभी नहीं होता है. नीचे आकर कागज नीचे ही रहता है. कोई सुविधा-शुल्क की गुलेल से उसे ऊपर उछाले तो बात दीगर है.

हमारे दोस्त प्रशासन के देसी उसूल हैं. अपना यकीन है कि हर असुविधाजनक मामला अनिर्णय से स्वयं अपना हल निकाल लेता है. जैसे किसी ने अपने जूनियर के प्रमोशन के खिलाफ अर्जी दी. प्रशासन में विज्ञान के नियम के अंतर्गत अर्जी नीचे गयी. उतने नीचे वालों को पटाया. उन्होंने अप्राकृतिक हरकत की. फैसले के लिए केस अफसर तक आया. उसने अनिर्णय के सिद्धांत के तहत उसे ठंडे गोदाम में डाल दिया. अब सवाल बर्दाश्त का है. पहले कौन थकता है. कर्मचारी स्मरण पत्र भेजकर या अधिकारी उनको देखा-अनदेखा कर. संभव है, इस दौरान कर्मचारी भगवान को प्यारा हो जाये या सेवानिवृत्त. अगर जिंदा बचा और उसका पौ भारी हो तो उच्च अधिकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या मंत्री से दबाव डलवाये. तब अफसर न्यायप्रिय होने का अभिनय कर ऊपरवालों पर अहसान कर सकता है. फैसले को रोके रखना कार्यकुशल और कारगर प्रशासनिक पद्धति का आवश्यक और अनिवार्य अंग है. आर्थिक क्षेत्र जैसे लाइसेंस-परमिट में अनिर्णय से अर्थलाभ भी होता है. पर हमारी ईमानदार अफसरशाही निर्णय किसी लाभ या हानि के चक्कर में नहीं, उसूल की वजह से टालती है.

"हम प्रशासन में मूंछ-प्रिंसिपल का प्रयोग करते हैं." चाचा ने सूचित किया.

"पर अधिकतर अफसर तो मूंछ नहीं रखते." हमने शंका जतायी.

"क्यों रखें भतीजे! कोई पुलिस-फौज वाले हैं! हमें अपनी ताकत का पता है. नेता के पेट में दाढ़ी होती है, हमारे मन में पूंछ."

"आप मन की मूंछ से शासन कैसे चलाते हैं?"

"मन-माफिक काम कर मूंछों पर ताव देते हैं."

चर्चा से निष्कर्ष यह निकला कि देश का प्रशासन किसी मैनेजमेंट-प्रिंसिपल से नहीं, मूंछ के उसूल से चलता है. मूंछवाले सिद्धांत से तटस्थ और सत्ता से जुड़े रहते हैं. वह हर पार्टी में अपना आका खोज लेते हैं. मूंछवाला बोलता सिर्फ सार्वजनिक हित का और सोचता बस अपनी सुख-सुविधा का है. स्वतंत्रता के बाद. तादाद से लेकर तरक्की तक, असली आज़ादी सिर्फ मूंछवालों को मिली है.

चाचा हमें ज्ञान देते हैं. "प्रशासन के लिए कुशल प्रशासन ज़रूरी है. इसीलिए संकट में हम अपना मनोबल बढ़ाये रहते हैं.

"ब्लड प्रैशर जांचने की मशीन की तरह कोई मशीन है क्या?"

"मशीन की जरूरत अज्ञानियों को होती है. हम तो शक्ल देखकर भांप लेते हैं कि मनोबल कमज़ोर होने का मर्ज क्यों है. फिर कभी हम अपना पद बढ़ाते हैं, कभी वेतन."

"दूसरे एतराज नहीं करते क्या!"

"करते रहें. डाक्टर, वैज्ञानिक इंजीनियर तो दुम-छल्ले हैं. उनका क्या. मनोबल हो तो चलेगा, न हों तब भी चलेगा. ऐसे इधर वह भी हमारी टोल में आ रहे हैं."

"यह किसलिए! उनकी पढ़ाई-लिखाई पर तो देश इतना खर्च करता है. सब कहते हैं कि मुल्क का विकास उन्हीं पर तो मुयस्सर है."

"बहुत दिनों बाद उन्होंने असलियत जानी है. ज्ञान, योग्यता और रिसर्च की पूंछ व्यर्थ है. सत्ता-सुविधा और सामाजिक प्रतिष्ठा हासिल करने के लिए असली बस मन की मूंछ है."

हमें यकीन हो गया है. अब मुल्क में स्वार्थी अंग्रेजों की मतलब-परस्त प्रशासनिक विरासत कतई नहीं बची है. फिलहाल मूंछ-व्यवस्था है, जो संकल्प के साथ अपने से कमज़ोर की 'सेवा' में जी-जान से जुटी है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहली बार आखिरी बार

उसकी पसंद की कसौटी पर खरे उतरने वाले लड़कों की अदाएं अनोखी होती थीं. उनकी नजरें, उनके अंदाज, उठना-बैठना, चलना-फिरना, बोलना-बतलाना—कुछ अजीबोगरीब ही होता था. किसी के भी सीने को चाक कर देने वाले उस तरह के युवकों को वह पहली नजर में ही भांप लेती थी...

□ **शशिप्रभा शास्त्री**

१९५६ से निरंतर लेखन. प्रमुख कृतियां : 'नावें', 'सीढ़ियां', 'परछाइयों के पीछे', 'बरसों के बाद', 'क्योंकि', 'कर्क रेखा' [उपन्यास]. 'धुली हुई शाम', 'दो कहानियों के बीच', 'अनुत्तरित', 'जोड़ बाकी', 'पतझड़' [कहानी संग्रह] संपर्क : ६/६, भगवान नगर, देहरादून (उ. प्र.)

छोटी उम्र के लड़के उसे अच्छे लगते थे. हमउम्र पचपन बरस की उम्र के आदमी उसकी ओर हाथ बढ़ाते, दोस्ती का, प्रेम का, पर हम उम्र होते हुए भी उनसे दूर छिटकी रहती, डरती, खौफ खाती, कहीं उनका पंजा उसके कंधे-पीठ को न छू ले. हैरान होते, उसे सती-साध्वी समझते. कभी बच्ची जैसी समझ वाली, जो अपनी गायकी में लहरा लेने में माहिर होती हुई भी, हर हाव-भाव की बारीकी को अपनी खूबसूरत आवाज में और ज्यादा पैना बनाकर उजागर करती हुई भी (मानो के लफ्ज नहीं, उन घुनों औरतों के साथ वह खुद-ब-खुद साक्षात उड़ी चली जा रही हो) व्यावहारिक दुनिया में वह उसे अजीबोगरीब अंदाज में भला क्यों पेश आती है? वे लोग सोचते, उसके भाव-मनके क्या उसके संगीत की गतों में पुराने के लिए ही हैं? आवाज के अलावा उसके दिल का बांध कभी और कहीं क्यों नहीं टूटता?

अधेड़ उम्र के लोग कहां जानते थे, कि उनकी बेरहम भौंडी शरारतें नहीं, उसको तो मासूम-नादान लड़कों की नासमझ नजरें मात्र ही मोहती हैं. उन अधपके-अधबुझे, सूखे-चुचके अंग-प्रत्यंग वाले, लुचपुचे अधपकी उम्रों के लोगों की गंदी हरकतें, उछाला लेती हुई उनकी नटखटी हरकतें, उसे एकदम बनावटी लगती हैं. महफिलों में बने-संवरे, कायदे-कानून को पहचानने वाले, नैतिकता के चश्मे चढ़ाये बैठे हुए उन सफेदपोश लोगों के सामने उसे कच्ची-हरी अंबियों की तरह नादान-नासमझ उजड़ी-बिखरी जुल्फों वाले मामूली ढंग के लिबास में ढके-मुंदे कमसिन लड़के ही जादू बिखेरते प्रतीत होते हैं, वही उसकी दिल की क्यारियों में फूल खिलाते हैं, भले ही उसके मन के भीतर झांककर देखने की (भोली उम्रों वाले वे) चाहे हिम्मत जुटा पाने की बात भी न सोच पायें, जुटा पाना तो बहुत दूर की बात है.

उसकी पसंद की कसौटी पर खरे उतरने वाले लड़कों की अदाएं अनोखी होती थीं, उनकी नजरें उनके अंदाज, उठना-बैठना, चलना-फिरना, बोलना-बतलाना कुछ अजीबोगरीब ही होता था, किसी के भी सीने को चाक कर देने वाले उस तरह के युवकों को वह पहली नजर में ही भांप लेती थी, सिर्फ वह नहीं, उसके हम उम्र और कम उम्र वाले भी इस तरह के लड़कों की उन खासियतों को पहचानते होते, पर उन पर मर मिटने, अपने मन के बेमालूम तारों से उन्हें घसीटकर लाने की ताकत, बस उसमें ही होती, बाकी लोगों को उनमें सिर्फ बचपना नजर आता, वे उस बचपने को दुलारते, पर वात्सल्य का हाथ फेरते.

वात्सल्य का प्याला उन पर वह भी छलकाती, पर साथ-साथ अपनी खास पैनी निगाहों की नोंक से वह उन युवकों के दिलों में पत्थर बनी पड़ी हसरतों को धीमे-धीमे पिघला देने की सामथर्य भी रखती और पिघला भी देती. उसके बाद उसे कुछ न करना होता. पिघली हुई गरम लावे की तरियों की अपनी हसरतें लिये वे युवक ही उसके पीछे दौड़ते लपलपाते, वह पीछे मुड़कर उनकी ओर देखती, फिर आगे बढ़ जाती और अपने दिलों की धड़धड़ाती धड़कनें लिये उसके पीछे भागते रहते, तब तक जब तक कि वे उसे अपनी हम उम्र महबूबा मान अपनी बाहों को उसके गले का हार न बना लेते.

बाहर से सीधी शांत-प्रशांत दिखने वाली सीधी-सात्विक शालीनता और सौम्यता की प्रतिमूर्ति वह तब उनके लिए वो वो साज सजाती, उनके साथ वो अठखेलियां करती, सागर की छाती पर उमड़-घुमड़ मचाने वाली लहरियों की तरह उनके साथ वह इस तरह के खिलवाड़ करती, कि उसके बाद वे किसी दूसरी स्त्री, यहां तक कि अपनी पत्नी को पाकर भी वह नशा न भूल पाते, जिसके आसव से उसने उन्हें किसी दिन सराबोर किया था. मदमस्त करनेवाली उस भाव-लहरी को बस वे दोनों ही जानते होते, तीसरा कोई उनके बीच में वहां होता ही न था. उसके संगीत में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिठास बस इसी सबसे आती, प्रेमी बनकर उसके हमउम्र जन कहां जानते होते, कि वह मस्ती अपनी अदाओं में वह नुनखारापन—जिसके बल पर महफिल में बैठकर वह उन सबको मदमस्त बनाती है, उसका स्रोत बहुत गहरा है, कहीं बहुत दूर नीचे तल में की किन्हीं नशीली दरारों से चुराया हुआ.

वह खुद भी कहां जानती थी कि उसके भीतर उस तरह की ललक (आग) उस बेतरह छिपी हुई है, उसने तो एक सात्विक कुल में जन्म लिया था, सनातनी पूजापाठी थे वे लोग, दान-पुण्य करने वाले, ईश्वर से डरने वाले, अनेक तरह के विश्वासों में डूबे हुए— वे भी कहां जानते थे, उनकी वह सीधी-सादी-सी दिखने वाली छोकरी किन्हीं मासूमों पर किसी दिन उस तरह के छुरे घोंपेगी और यह भी कि वह उबड़ खाबड़-सी नजर आने वाली खेलखड़ी की कठपुतली-सी लड़की, किन्हीं जनों के लिए किसी दिन उतनी सलौनी नमकीन जान बन जायेगी.

छुटपन में सर्दी के दिनों में उसके पैरों में बिवाइयां फटी रहती थीं, बरसात के मौसम में जामुन बीनते हुए नाखूनों के बीच कीचड़ी मिट्टी-धंस जाती. हथेलियां बड़ी-बड़ी पर पत्ते की तरह कमजोर दिखतीं, नाक दबी हुई, बाल छोटे कमर नाड़ा बंधनी जगह पर गहरा निशान लिए हुए—पर तरुणावस्था के कल्ले फूटते ही उसका वह ऐंडाबेंडापन न जाने कहां विलीन हो गया, आंखें कितनी काली कर्ण-विचुंबित और नुकीली हो उठीं, नासिका का चपटापन न जाने कहां विलीन हो गया, गालों पर चमेली के फूल कैसे खिल उठे, बाल लहराकर कमर तक कैसे झूल आये और वह कमर पंद्रह बरस की उम्र के बाद तो चौड़ाई में जैसे बढ़ना ही भूल गयी थी, हाथ की उंगलियों में लंबाई और नरमाई न जाने कहां से आ गयी, वह सब उसे कुछ पता ही न चला—वह तो उस समय तक स्वर के लोच में कैद हो चुकी थी, स्वर रातदिन कूकता. काले तवों पर रेंगते गानों की आवाजों को उसके होंठ और गला ज्यों का त्यों समेट लेते. कैसे? उसे कुछ चेत नहीं था. वह तो अपने में ही डूबी हुई थी झूठी-बनावटी साज-सिंगार से कटकर स्वर के साथ-साथ देह को भी अपनी मेहनत और लगन से पुष्ट बनाती हुई. औरतें उसकी देह को देखकर ईर्ष्यालु हो उठतीं. वे नादान कहां जानती थीं कि स्त्रियों को भी अपनी देह को मेहनत और हम्माली से कमाना होता है, उस दिशा में उनके लिए भी त्याग-तपस्या और खास तरह की साधना की दरकार होती है.

यही देह अब सुगंध की लपटें बखेरने लगी थी, देह की पुष्टता और लचक के साथ-साथ स्वर में भी खुशबू गमक उठी थी, गोलाइयों में गोलपन और अधिक मजबूत बनकर समा गया था. मर्द के हाथ के स्पर्श की गरमाई का एहसास उसे बरसों बाद पहली बार अपने प्रेमी से ही मिला था. उस क्षण प्रेमी की सांस भी एकाएकी रुक-सी गयी थी. बाद के के दिनों में प्रेमी ने ही बताया था बच्चों की किताबों-कापियों के नीचे रखे वे दो हाथ जैसे एक-दूसरे से चिपक गये हों और सारा संसार उन्हें देख रहा हो. संसार को देखने की उन्हें तब सुध-बुध ही कहां थी. उसके यौवन में सेंध लगाने वाली उम्र की चोरन को जानता-बूझता भी वह उसके पीछे लट्टू हो उठा था. उसके साथ किसी दूसरे को मुस्कराकर बात करते देखता, और उससे अकेले में पूछ बैठता, "यह मेरा राइवल तो नहीं है?" वह भी मुस्कराकर कहती.

"हां हां हां, कहो क्या कहते हो?" और फिर दोनों उस झूठ से आंख-मिचौली खेलते हुए एक-दूसरे से सट जाते. वह उसे बच्ची की तरह थामकर चारों ओर फिरनी की तरह घुमा देता और वह बच्ची की तरह घूमती हुई भी उसे बड़ी बहन की तरह चपतिया देती. दोनों के खेल-खिलवाड़ न बनावटी लगते, न अनूठे. दो प्रेमी जनों के बीच सनातन काल से चले आते खेल-खिलवाड़ों की तरह वे एकदम स्वाभाविक प्रतीत होते.

यों वह सचमुच उससे डरती थी, कहीं वह सचमुच उसे बेवफा न समझ बैठे. वह बेवफा थी भी नहीं, पर प्रयत्नपूर्वक अपने को उस तरह का सिद्ध करने के लिए वह स्वयं को उसके सामने जिस तरह से प्रस्तुत करती, उस आयास से वह थकने लगी थी—थकने और घुटने, सांस लेने की जैसे तमाम खिड़कियां ही बंद हो गयी हों.

एक खिड़की नहीं, एक छोटा-सा झरोखा तब अचानक खुला था—संगीत के उस विराट अधिवेशन में वह एकाएकी मिल गया था. बल्कि उससे पहले उस ट्रेन के डिब्बे में ही जिसे अधिवेशन में भाग लेने के लिए आने वाले प्रतिनिधियों के लिए आरक्षित किया गया था, वही पुरानी कुलन, फिर जगी थी और इस बार दोनों के हाथ नहीं, दिल चिपक गये थे: एकाएकी अचानक वह तो उससे कहीं छोटी उम्र का था फिर वह

अभिनय

रूस के एक महान अभिनेता को गूंगों और बहरों की एक संस्था में बुलाया गया, जहां उन्हें अपनी प्रसिद्ध फिल्मों के खास-खास दृश्य पेश करने थे.

जब वे विभिन्न पात्रों की भूमिकाएं करके दिखा रहे थे, तो एक व्यक्ति उनके पास खड़ा होकर गूंगे-बहरे दर्शकों को अपने दोनों हाथों की अंगुलियों के संकेतों द्वारा समझा रहा था कि वे किस पात्र की भूमिका कर रहे हैं और संवाद बोलते हुए क्या कह रहे हैं!

अभिनेता ने कुछ एक बार उस व्यक्ति की ओर देखा. फिर, जब उन्हें पता लगा कि वह अंगुलियों की हरकतों द्वारा दर्शकों को क्या बता रहा है, तो उन्होंने अपने मन में कहा, "मैं तो व्यर्थ ही अभिनय पर जोर देकर खुद को थका रहा हूं, जबकि यह व्यक्ति सिर्फ अंगुलियों के संकेतों द्वारा ही उन्हें सारी बात समझाये जा रहा है." □

—सुखबीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उससे जुड़ गया था—उसकी पत्नी और उसकी अपनी दोनों की उम्रों का जो जोड़ बैठता था, उस उम्र की उस अजीबोगरीब औरत से. उस संगीत अधिवेशन में उस महिला के कितने ही परिचित जन तो आये थे, उस कला में उससे अधिक माहिर, अधिक नामी-गिरामी, उसको प्रशंसा और प्रेम की निगाहों से देखने वाले भी, पर वह तो वहां किन्हीं सांपों नहीं, उस नन्हें सपोले के द्वारा डस ली गयी थी, नहीं नहीं, डसने की पहल उसने ही की थी या दोनों ने ही—कुछ सुधबुध कुछ चेत नहीं था दोनों को ही—दो भिन्न ठिकानों पर रहते हुए भी दोनों के दिलों को किसी ने एक ठिकाने ही बांधकर डाल दिया था. अधिवेशन के मध्य होने वाले भिन्न-भिन्न सत्रों में से उस रात के सत्र के उपरांत उस ठंडी रात मे वह उसे उसके ठिकाने पर पहुंचाने गया था, ऑटोरिक्शे में दोनों एक-दूसरे का हाथ थामे यों बैठे रहे थे, जैसे वे दोनों क्षितिज के अंतिम छोर को छूने के लिए निकल पड़े हों और तब उन्हें उस वाहन में से उतरना ही न हो, जब तक वे अपनी मंजिल पर न पहुंच जायें.

बरसों गुजर गये थे उस हादसे को भी, जब वह एक दिन अचानक उसके यहां आ पहुंचा था. वह उसे भूली नहीं थी. घटनाओं के सिलसिलों के बीच वह नन्हीं-सी चिनगारी बस दब भर गयी थी. उसके आगमन ने स्मृति की राख को छिटका कर उसे एकाएकी नग्न कर दिया था.हैरान रह गयी थी. वह उस रात उसकी उस मांग को सुनकर. जिस आश्रम में वह कुछ बरसों पहले प्रविष्ठ हुआ था शायद उसकी प्रक्रियाओं ने ही उसे उस दिशा में पटु और प्रगल्भ बना डाला था. उम्र में अधूरा होते हुए भी उस पर हावी होने की कला में भी वह कहीं अधिक प्रवीण हो चुका था. उस मांग और उसको उसने तब एक नादान बच्चे की तरह थपथपाकर शांत कर दिया था, "नहीं, वह डगर तो अब मेरे लिए बहुत कठिन है, एकदम प्रतिबंधित. उस समय जब तुम मुझे पहली बार मिले थे, तब तुम कितने बच्चे थे, कितने नासमझ, अगर तब तुम कुछ कहते तो..."

सुनकर वह अफसोस में डूब गया था.

हे भगवान मैं जिसे चाहती हूं, जो चाहती हूं मुझे वही मिल जाता है, खुद दौड़कर आ जाता है मेरे पास. पर अब नहीं बिल्कुल नहीं, न जाने कितनों को याद करती रही थी वह उस दिन.

और तभी वह आया था उसकी जिंदगी में, उसकी जिंदगी में नहीं, उसकी निगाहों के बीच. वह था उसकी मामा की बेटी की बेटी का पति. कितना मोहक-भोला-नादान और अपनी उन खूबियों से अचेत. बात करने में पटु-शिष्ट-सभ्य-शिक्षित जो उसे देखता, उससे बंध जाता. हैरान थे सब उसे देखकर. औरतों के झुंड के बीच खड़ी उसका टीका करती वह—उसने कभी सोचा भी नहीं था, कि उस युवक ने उसे देखा भी होगा, पर उसने उसे देखा था, फिर अलग से उसकी ख्याति सुनी थी, उसके बोलों की खनक उस उम्र में भी बरकरार थी, उम्र ने काफी लंबा रास्ता तय कर लिया था, पर महफिल में वह अब भी सराही जाती, लोग उसे प्रशंसा की दृष्टि से देखते, उसकी आवाज लोगों को अब भी निःशब्द कर देती. समूह में उनकी आभारी होती, अपनी तारीफों को जर्रानवाजी कहती, पर एकांत में उन हमउम्र वालों से वह अब भी आतंकित रहती, उनका ऊदबिलावी लंपटपन उस उम्र में भी उसे आशंकित बना जाता.

कुछ नहीं रह गया है अब उसमें—वह प्रायः सोचती..लोग सोचते, अपनी उस उम्र में उनकी उस तक पहुंच को वह उनकी कृपा मानेगी, पर उनकी अपने प्रति कोई भी हरकत उसे लुच्चापन नजर आती. वह कमजोर हो गयी थी, समय-असमय बीमार रहने लगी थी. भीतर से जिंदादिल ऊपर से टूटी और विशृंखलित. लेटे-लेटे उसकी याद्दाश्त में प्रायः वे सब सरकते रहते, जिनके लिए लोलिता के प्रेमी सदृश होने की

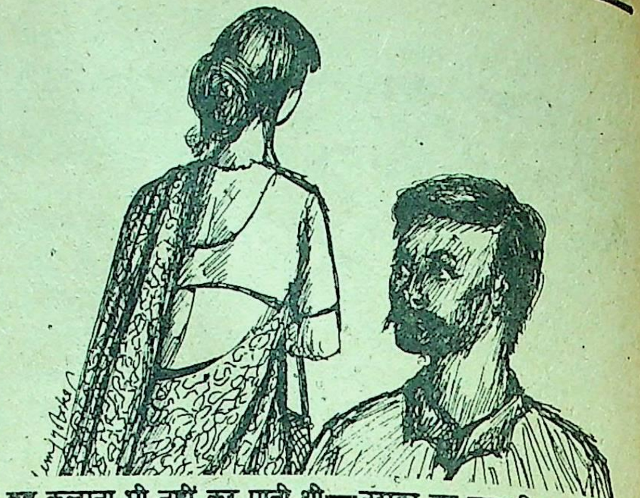

वह कल्पना भी नहीं कर पाती थी—उसका वह नन्हा शिष्ट बंधु कभी उससे मिलेगा, कभी सोचा भी नहीं था हालांकि उसे वह प्रायः याद करती, उसके बारे में सोचती, जानना चाहती, वह उन दिनों क्या कर रहा होगा, किस व्यवसाय में लगा होगा. उसके मामा की बेटी की बिटिया कुमुद उसके साथ कैसे रह-बस रही होगी, कहां होगी वह? इतने अर्से से मामा से उसका कोई पत्राचार भी नहीं हुआ था.

तभी सूरज की पहली किरण की तरह वह उदित हुआ था—वह लेटी हुई थी, थकित थी, आंखें मूंदे कुछ सोच रही थी कि तभी कुछ महसूस हुआ, वातावरण में किसी की आकस्मिक उपस्थिति की सुगंधमय सरसराहट जैसा एहसास—उसने आंखें खोल दीं—वह उसके सामने खड़ा था, दहलीज के उसपार. अविश्वास से उसके होंठ चिपक रहे थे, फिर एकाएकी खुले थे, "अरे! आओ न ! कैसे कहां से तु S S म!!"

"मैं आपके ही शहर में आ गया हूं, आजकल यहीं बस रहा हूं." जैसे वह समझ न पा रहा हो, कैसे शुरू करे.

"ओह, तो कुमुद ने कहा होगा..." स्मृति की दरारों से भानजी की बिटिया का जो नाम फिसल गया था, क्षण के उस नन्हें-से खंड में ही वह न जाने कैसे सरक आया, "जाकर नानी को देख आओ ठीक है न?"

"नहीं नहीं, कुमुद को तो मालूम भी नहीं, कि मैं इधर आया हूं."

"तब तुम्हें मेरा पता कहां से मिला?"

"क्योंS S क्या मुश्किल था, आपका पता तो हमेशा से मेरे पास था कS S ब ..."

"सच रे! अरे कैसे?" वह विस्मय विमुग्ध थी. "अच्छा तो कैसे आये?" उसने यों ही फिर वाक्य बनाया.

"बस ऐसे ही....आपकी गायकी और आपका स्वरूप खींच लाया मुझे."वाक्य उचारकर उसने अपने होंठो को सहला लिया, एकदम सकपकाते हुए.

"हाS Sय राS Sम ! मैं तुम्हारी आभारी हूं." उसने उसकी आंखों में झांका था—कितनी कच्ची उम्र थी उसकी, कितनी निर्दोष अबोध थीं उसकी आंखें. चेहरे पर की मासूमियत, कितना नादान है यह, एकदम नासमझ अनजान—और उसकी अपनी आंखें, इस उम्र में भी मद के प्याले छलकाती उन आंखों में इस समय अचानक किरकिरी भर आयी थी : तो कतार में यह भी खड़ा है, यह नन्हीं-सी जान. अपनी आवाज को साधकर बड़े संयमित ढंग से उसने कहा, "अच्छा किया बेटे, तुम आये, तुम्हें देखकर मुझे बहुत खुशी हुई है, पर अब मैं इस घर से कुछ दिनों के लिए बाहर जा रही हूं, लौटूंगी तो तुम्हें खबर दूंगी जरूर और पहली बार उसने उसे समूचा ही छोड़ दिया था. □

उस सिलसिले का वह आखिर ही था निश्चित रूप से.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवाज दे

'उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा जरूर लिया पर न वे स्वतंत्रता का मतलब समझे न संग्राम का. जरूरत ही नहीं समझी, क्योंकि वे तो अंग्रेजों के लिए नफरत में झुलसते रहते थे...' फिर उस दिन ऐसा क्या हुआ कि उनकी आंखें खुल गईं...?

□ गोविंद मिश्र

जन्म : १९३९ अतर्रा, बांदा (उ.प्र.)
प्रमुख कृतियां : 'लाल पीली जमीन', 'वह अपना चेहरा', 'तुम्हारी रोशनी में', 'धीर समीरे' [उपन्यास]. 'धांसू', 'खाक इतिहास', 'मुझे घर ले चलो', 'पगला बाबा' [कहानी संग्रह]. 'लेखक की जमीन' [साक्षात्कार].
संपर्क : २२ बैलवेडियर, भुलाभाई देसाई मार्ग, बंबई-४०००३६.

टहलने के लिए निकले थे रामेश्वर भाई, सुस्ताने को एक पुलिया पर बैठ गये थे...

देखा, कि सड़क पर एक छोटा-मोटा जुलूस बढ़ा चला आ रहा है. जुलूस में ज्यादातर आदमी थे, सभी खादी की धोती-कुरता पहने और टोपी लगाये हुए. नारे लगाते हुए वे मुख्यमंत्री के निवास की ओर जा रहे थे—

''हमारा नेता...छक्की पांडे...''

''छक्की पांडे आगे बढ़ो, जनता तुम्हारे साथ है...''

ये मुख्यमंत्री की पार्टी के लोग थे और यह प्रचार करने के लिए सड़क पर उतरे थे कि जनता मुख्यमंत्री के साथ है. शायद उससे भी ज्यादा मुख्यमंत्री को यह दिखाना चाहते थे कि ये उनके लिए कितना कर रहे हैं. उन दिनों मुख्यमंत्री के खिलाफ अखबारों में काफी निकल रहा था. हवा बांधने के लिए मुख्यमंत्री के किसी चाटुकार-सलाहकार की यह तजवीज थी कि रोज ऐसे छोटे-मोटे जत्थे मुख्यमंत्री की जयजयकार करते उनके घर जायें. जत्थों को मुख्यमंत्री अपनी कोठी के बाहर आकर संबोधित भी करते थे जो टी.वी. पर दिखाया जाता.

हम कहां से कहां आ गये...रामेश्वर भाई सोचने लगे. जब वे राजनीति में थे तब जुलूस विरोध करने, जान की बाजी लगाने के लिए निकलते थे, आज चापलूसी में कुछ पाने के लालच में निकलते हैं. कहां आजादी की लड़ाई के समय के नेता, जो जन-समुदाय में उतरकर भीड़ के साथ चलते थे, कहां अब के ये नेता जो सुरक्षाकर्मियों की आड़ में अपनी बड़ी-बड़ी कोठियों में दुबके बैठे रहते हैं और घर पर ही अपनी पार्टी के लोगों को संबोधित करके खुश हो लेते हैं. जनता को कुछ कहना हो तो वीडियो-कैसेट बनवाकर जगह-जगह बंटवा दिया. कहां गये रामेश्वरभाई के समय के लोग...ज्यादातर तो उस पार चले गये होंगे, कुछ इधर-उधर छितरे अपना बुढ़ापा जी रहे होंगे. रामेश्वरभाई भी तो सत्तर पार निकल आये! वह तो कहिए कि बयालीस के आंदोलन में इतना पैदल चलना हुआ, इतनी लाठियां खायीं कि आज भी शरीर बुरा भले गया हो, छड़ी की तरह खड़ा है. आदत सीधा खड़े रहने की डाली थी.

एक मामूली-सी घटना रामेश्वरभाई को गांधीजी के आंदोलन में खींच ले गयी थी. रामेश्वर तब दस-बारह के रहे होंगे. उस रोज आतीपाती खेलते वे अकेले नगर के बाहर निकल गये. वह खेल ही ऐसा था...एक टीम को किसी खास पेड़ की पत्ती लाने को कहा जाता. पत्ती लाने के बाद वह टीम दूसरी टीम के लड़कों को खोजने-पकड़ने निकलती. अंधेरा होने तक अगर नहीं पकड़ पाये तो फिर पदना पड़ता—माने अगले दिन फिर कोई पत्ती लाने जाना और उसके बाद दूसरी टीम को ढूंढ़ना. इस तरह खेल कभी-कभी तीन-तीन दिन लगातार खिंचा चला जाता. रामेश्वर नीम की एक डाल पर छिपे बैठे थे कि शरीर की घिसटन से एक छोटी-सी खपच्ची पेड़ से अलग होकर नीचे घूम रहे एक अंग्रेज बच्चे के सिर पर जा गिरी. बच्चा पांच साल का होगा. खपच्ची में वजन ही कितना था, और बच्चे ने अनायास ही उसे अपने बालों से झाड़कर हाथ में ले लिया और थोड़ा अचरज से उसे देखने लगा...लेकिन बच्चे को घुमाने लायी दो औरतें वे आग-बबूला हो गयीं. एक अंग्रेज थी जो बच्चे की मां दिखती थी, दूसरी काली-कलूटी हिंदुस्तानी नौकरानी थी. दोनों औरतों ने जो तरेरकर देखा कि रामेश्वर की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी, नौकरानी तो एकदम ढेला चलाने लगी. रामेश्वर सरपट पेड़ से उतरा और अपने घर की तरफ भागा. उसे तब ध्यान आया कि खेलते-खेलते वह सिविल लाइंस में घुस आया था. सिविल लाइंस अंग्रेजों का एरिया था.

अंग्रेज औरत बच्चे के साथ रह गयी पर नौकरानी रामेश्वर के पीछे-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे ठेला चलाती हुई, उसे खदेड़ती हुई रामेश्वर के घर तक पहुंच गयी. रामेश्वर तो तपाक से घर के भीतर घुस गया, नौकरानी बाहर खड़ी गरियाती रही, रामेश्वर के पिता से न जाने कितना भला-बुरा कहती रही. पिता चुपचाप सुनते रहे. शाम को मां ने पिता से शिकायत की, "एक छोटी-सी खपच्ची ही गिरी थी, वह भी रामेश्वर के अनजाने...उस पर वह मामूली औरत दरवज्जे पर आकर इतना सुना गयी, कैसी-कैसी गंदी गालियां बक रही थी और हम सुनते रहे, एक नौकरानी!"

"हां नौकरानी...पर वह अंग्रेज की नौकरानी है." पिता ने सिर्फ इतना कहा और बाहर निकल गये थे.

अपमान और बेबसी में सुलगता पिता का चेहरा कैसा...राख-सा हो आया था उस समय...जब एक पूरी की पूरी कौम की बेइज्जती एक चेहरे पर आकर पैठ जाती है. उस क्षण ही अंग्रेजों के लिए जबर्दस्त घृणा रामेश्वरभाई के मन में बैठ गयी. गांधीजी के 'अंग्रेजों, भारत छोड़ो' की गूंज उठी कि वे पढ़ाई छोड़कर बिना किसी को बताये आंदोलन में कूद गये, लेकिन चूंकि ऐसा उन्होंने सिर्फ अंग्रेजों के प्रति अपनी नफरत की वजह से किया था, इसलिए उधर अंग्रेज भारत से गये, इधर रामेश्वरभाई अपनी दुनिया में लौट आये...जैसे कि उनके भीतर जो भी आग सुलग रही थी, वह फिरंगी झंडे के नीचे उतरते ही शांत हो गयी थी...

पुलिया पर बैठे रामेश्वरभाई देख रहे थे—जुलूस अब काफी करीब आ गया था. कुछ ही मिनटों में वह पुलिया से गुजरता...कि एकाएक नौजवानों का एक गिरोह कहीं से आकर प्रकट हो गया और जुलूस का रास्ता रोककर खड़ा हो गया. सिर्फ दस-बारह लड़के-लड़कियां जो पानी की अलग-अलग धाराओं की तरह इधर-उधर से बहते हुए आये और सड़क पर आ मिले थे.

युवक-युवतियों के उस दल ने जुलूस को आगे बढ़ने से रोक दिया था. उधर जुलूस की तरफ से नारे और जोर से चल पड़े—

"हमारा नेता...छक्की पांडे..."

"देश का नेता...छक्की पांडे...

"छक्की पांडे संघर्ष करो, जनता तुम्हारे साथ है..."

नारों के शोर के सामने नवयुवकों का दल दृढ़ता से खड़ा था. यह दल विरोधी पार्टी का भी हो सकता था, लेकिन रामेश्वर भाई को एक बात अजीब दिख रही थी—जितना जुलूस वाले चिल्लाते, उतनी ही शांति पर दृढ़ता से उनकी तरफ देखते हुए इधर युवक-युवतियां खड़े थे. स्थिति विस्फोटक थी—जैसे कि दो सेनाएं आमने-सामने खड़ी थीं और कभी भी युद्ध छिड़ सकता था.

जब जुलूस के लोग नारे लगाते-लगाते थक आये तो उनका नेता आगे बढ़कर नवयुवकों के दल से बोला, "आप लोग रास्ते से हट जाइए!"

जवाब में इधर से कोई नहीं बोला.

"रास्ते से हट जाइए...वरना..."

दूसरी तरफ अब भी मौन, जो ज्यादा ताकतवर साबित हो रहा था.

"आप हमारे विरोधी नहीं हैं. पढ़ने-लिखने वाले लड़के हैं. जाइए, पढ़िये-लिखिये. आप राजनीति में क्यों पड़ते हैं!"

उस पर भी नवयुवकों की तरफ से कोई कुछ नहीं बोला तो खादीधारी नेता करीब-करीब बौखला गया, "आखिर हमने आपका क्या बिगाड़ा है? क्या परेशानी है आपको हमसे, क्या चाहते हैं आप?"

"आप अपनी टोपियां फेंक दीजिए." इस बार नवयुवकों में से एक आगे बढ़कर खासी संजीदगी से बोला.

"क्यों?"

"क्योंकि खादी और टोपी से हमें नफरत है. हमने इस पोशाक के खिलाफ जंग छेड़ रखी है."

"वाह साहब! यह भी क्या बात हुई! हमें आपकी पोशाक अच्छी न लगे तो इसके माने हम आपके काम में विघ्न डालें?"

"आपकी यह पोशाक झूठ पर पर्दा डालती है. ढोंगियों और मक्कारों की पोशाक है यह. इसने हमारे देश को चूसा है."

जाहिर था कि जो विरोध कर रहे थे, वे विद्यार्थी थे. उनका विरोध न तो किसी पार्टी का था और न ही वह किसी स्वार्थ से प्रेरित...इसीलिए उसमें दृढ़ता थी. दूसरी तरफ चापलूसों का झुंड था. अवसर के अनुसार अपने को बदल लेने की आदत इन लोगों का स्वभाव बन चुकी थी. हिम्मत वहां कहां!' नौजवानों के दबे हुए ईमानदार क्रोध से जुलूस वाले साफ डरे हुए दिख रहे थे.

रामेश्वर भाई को रोमांच हो आया...तो नैतिकता अब भी शक्ति है! वे अपने आपको टटोलने लगे...वे क्या हैं, क्या रह गये हैं...पहले जो थे, उसका छूंछ मात्र, खोखा! बाहरी चोला, जिसे वे छू सकते थे—वही नजर आया उन्हें. वे भी खादी पहने हुए हैं, सफेद बारीक खादी नहीं, खुरदुरी और डिजाइनदार...इतनी साधारण कि खादी ही मालूम न दे. सिर पर टोपी नहीं थी. उनके बाल लंबे और पीछे झूलते हुए थे. दाढ़ी भी बढ़ी हुई थी. वे राजनेता तो एकदम नहीं, गृहस्थ कम, बाबा ज्यादा लगते होंगे...उन्हें कोई खतरा नहीं था!

"फेंकिये अपनी टोपियां..." विद्यार्थियों में से एक आगे बढ़कर और थोड़ा तमककर जुलूसवालों से कह रहा था.

दूसरी तरफ भी थोड़ा-थोड़ा तैश चेहरों पर उतराने लगा था. आखिर वे मुख्यमंत्री की पार्टी के लोग थे, उनके निवास पर जा रहे थे! वातावरण खासा गरमा गया था...बस, एक तगड़ी बात किसी तरफ से उठी कि मारपीट शुरू हो जाना थी...

रामेश्वर भाई के भीतर कुछ चटक रहा था...उन्होंने स्वतंत्रता-संग्राम में हिस्सा जरूर लिया पर न ही वे स्वतंत्रता का मतलब समझे, न संग्राम का. जरूरत ही नहीं समझी क्योंकि वे तो अंग्रेजों के लिए नफरत में झुलसते रहते थे. अंग्रेजों के पार भी एक संग्राम हो सकता था, मूल्यों के लिए किया जाने वाला सतत संग्राम...इस तक वे उठ ही नहीं पाये. अंग्रेजों के जाते ही उन्होंने अपने आपको खींच लिया—बाहर कुछ भी होता रहे, वे अपनी छोटी-छोटी जरूरतों को पूरा करने में व्यस्त हो गये. वे भूल गये कि अपने नेताओं को रास्ते पर रखने की जिम्मेदारी भी उनकी थी. उन्होंने हाथ झाड़ लिये और एक किनारे जा बैठे, जैसे कि अब बैठे हुए हैं, एक तरफ पुलिया पर...उठो रामेश्वर भाई अब तो उठो, देर भले ही हो गयी हो पर जब समझ में आ जाये तभी उठ जाओ, उठो...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुलिया से कूदकर रामेश्वरभाई करीब-करीब भागते हुए दोनों दलों के बीच सड़क पर जा पहुंचे. सांस फूल आयी थी, पर हांफते हुए ही वे विद्यार्थियों से बोले—

''गांधीजी के समय विदेशी पोशाक फेंकी जाती थी, विदेशी कपड़ों की होली जलती थी, खादी, स्वदेशी को आदर से देखते थे. आप लोग ये टोपी फेंक देने की कैसी मांग कर रहे हैं?''

''खादी और टोपी के नीचे धोखा छिपा होता है...भ्रष्टाचार है!''

''बच्चो,'' रामेश्वरभाई के स्वर में मिठास उतर आयी, ''तुम्हारा रोष एकदम सही है लेकिन खादी और टोपी का क्या दोष? खादी अपने देश में ही बनती है, इससे कितनों की जीविका चलती है और टोपी...उसे तो धूप और गर्मी से बचने के लिए अपने देश में जगह-जगह लोग पहनते हैं...''

''लेकिन ये टोपीवाले...''

''हां, ये...तो ऐसा कहो न. खादी और टोपी तो वही हैं जो पहले थीं, हमीं उसे पहनने के लायक नहीं रहे. तुम्हारी मांग होना चाहिए कि जो टोपी और खादी पहनने के काबिल हों, वही उन्हें पहनें...ठीक?''

एक तो रामेश्वरभाई का सौम्य व्यक्तित्व, फिर बात बेहद तल्लीनता से कही गयी थी...नवयुवकों का दल जुलूस का रास्ता छोड़ एक किनारे हो गया.

जुलूस जा सकता था लेकिन सामने रामेश्वरभाई थे जो अब जुलूस की तरफ मुखातिब हो गये थे—

''भाइयों, ये बच्चे कोई गैर नहीं, आपके-हमारे बच्चे हैं. इन्हें तेज बोलना ही चाहिए, विरोध करना ही चाहिए. ये सच और साफ भी बोल रहे हैं...जैसाकि इनकी उम्र में होना चाहिए. घर के भीतर ये इस तरह बोलते तो शायद हम इनकी बात मान भी लेते. देश भी तो घर ही है...तो इनकी बातों को सोचिये—खादी और टोपी आजादी के सिपाही का यूनीफार्म थे, क्या हो गया कि हमारे बच्चे खादी और टोपी से नफरत करने लगे? कुछ हममें गड़बड़ी हो गयी. अगर हम इन्हें पहनने के लायक हैं तो पहनें, पहने हुए गर्व से जायें, नहीं तो...

आत्मचिंतन शुरू हो जाना चाहिए, यहीं से इसी वक्त से, ताकि हमारे इन बच्चों का विश्वास हममें बना रहे...''

रामेश्वरभाई भी जुलूस का रास्ता छोड़ एक तरफ हट गये.

रास्ता अब खाली था. जुलूस फिर भी आगे नहीं बढ़ा. पहले नारों, फिर दोनों पक्षों की जिरहबाजी...इनके शोरगुल की जगह अब सन्नाटा था. जुलूस के सभी सदस्य सहसा मौन और गंभीर हो गये थे. दरअसल उस मायने में वे खुर्राट राजनीतिक लोग नहीं थे कि रामेश्वरभाई जैसे की बात का भी वहां कोई असर नहीं होता. रामेश्वरभाई जैसे निश्छल व्यक्ति के सामने वे जैसे अपनी जगह जकड़ कर रह गये थे.

कुछ क्षणों तक ऐसा ही रहा. फिर जुलूस के पीछे से एक व्यक्ति कुछ धीरे-धीरे चलता हुआ आगे आया. उसने अपनी टोपी उतारी और उसे रामेश्वरभाई के हाथों में थमा कर आगे बढ़ गया. फिर उसकी देखा-देखी, बाकी सदस्य भी एक के बाद एक वैसा ही करने लगे—अपनी टोपी उतारना, उसे बड़े ही आदर से दोनों हाथों में लिये हुए रामेश्वरभाई तक आना और उनके हाथों में सौंपकर आगे बढ़ जाना.

अब नारे नहीं थे...जैसे जुलूस में सभी के मुंह सिल गये थे, चेहरे संजीदा थे. जुलूस के सब लोग अपनी टोपियां रामेश्वरभाई को सौंप सड़क पर चल दिये. वे धीरे-धीरे जा रहे थे. आगे चलकर उन्होंने मुख्यमंत्री के घर का रास्ता छोड़ दिया और अपनी-अपनी दिशाओं में चले गये.

हाथ में टोपियों की गड्डी लिए रामेश्वरभाई कुछ देर यों ही ठिठके खड़े रहे, फिर वे एक तरफ रुके हुए विद्यार्थियों की तरफ बढ़ गये. □

दंगा

□ अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन'

ठंड अपनी चरम सीमा पर थी. सुबह-सुबह हनुमान मंदिर के सामने सड़क के किनारे एक अच्छी खासी भीड़ जमा थी. आफिस को जा रहे मेरे पैर अनायास ही उस ओर मुड़ गये. पास गया तो देखा कि एक बूढ़ा भिखारी ठंड से अकड़कर मर गया है. उसके शरीर पर एक मैली सी धोती और तार-तार फटी चादर के सिवा और कुछ न था. लाश को घेरे ढेर सारे लोग खड़े थे और तरह-तरह की बातें चल रही थीं. एक बुजुर्ग ने सुझाया कि सभी को मिलजुल कर इस लाश का क्रिया-कर्म कर देना चाहिए.

भीड़ में खड़े एक मौलवी ने दाढ़ी खुजलाते हुए कहा, ''यह आदमी अक्सर नमाज के वक्त दोपहर को मस्जिद के बाहर खड़ा रहता था. मैं सोचता हूं यह मुसलमान रहा होगा. हम मुस्लिम तौर-तरीके से इस लाश को दफनाने के लिए तैयार हैं.''

''खबरदार जो इस लाश को छूकर इसका परलोक खराब किया...यह मंदिर के सामने मरा है इसलिए हिंदू है...इसका क्रिया-कर्म हिंदू रीति से होगा...'' मंदिर के पुजारी ने मौलवी को ललकारा और भीड़ को चीरते हुए आकर लाश के पास खड़ा हो गया.

''अरे वाह...! मैंने दर्जनों बार इसे मस्जिद की सीढ़ियों पर सिजदे करते देखा है...तुम्हारे कहने से मान लूं कि यह हिंदू है...'' यह कहते हुए मौलवी भी लाश के करीब बढ़ आया.

''अगर है हिम्मत तो छूकर देखो इस लाश को!....तुम्हारी दाढ़ी के एक-एक बाल न नुचवा लिया तो मैं भी ब्राह्मण का बच्चा नहीं....'' पुजारी ने पुनः ललकारा.

भीड़ में एक पादरी भी खड़ा था. उसे शक था कि मृतक भिखारी ईसाई है क्योंकि अक्सर सुबह-सुबह वह चर्च के मेन गेट के पास कटोरा लिये बैठा रहता था. लेकिन पुजारी और मौलवी को झगड़ते देखकर पादरी ने चुप रहना ही बेहतर समझा.

पुजारी और मौलवी के बीच तू-तू-मैं-मैं बढ़ती जा रही थी और भीड़ भी धीरे-धीरे दो गुटों में बंटती जा रही थी.

शहर में सांप्रदायिक दंगा भड़कने और अनिश्चित कालीन कर्फ्यू लगने की खबर अगले दिन अखबारों के मुख्य पृष्ठ पर मोटे-मोटे अक्षरों में छपी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सात समुंद्र पार

जिन घोड़ों को हजारा सिंह जी-जान से चाहता था वही उसके लिए एक दिन इतनी बड़ी मुसीबत का कारण बन जायेंगे... उसे क्या पता था! कैसी थी यह मुसीबत... कि न भागते बनता था न ठहरते...

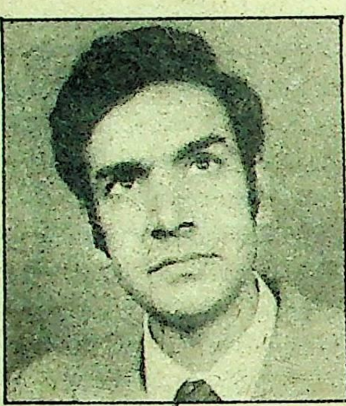

□ सुदर्शन नारंग

जन्म : २८ अप्रैल १९४०. कमों की मंडी, गुजरांवाला में.

पहली कहानी : 'मोड़ पर रुकी जिंदगी' [१९५७ 'साप्ताहिक हिंदुस्तान']

प्रमुख कृतियां : 'कटे हुए दायरे', 'उस पार का अंधेरा', 'दायां हाथ', 'एक था केशोराम', और 'अपने विरुद्ध' [उपन्यास]. 'हमशक्ल', 'इतना बड़ा पुल', 'सिर्फ एक आकाश', 'गंगा घाट' [कहानी संग्रह]

संपर्क : ८३/४ राधापुरी, हापुड़-२४५१०१

मध्य पंजाब का अधिकांश भाग घने जंगल से घिरा था. यह जंगल लाखी के नाम से जाना जाता था. वहां लाखों की संख्या में पेड़ थे. बारिश के मौसम में ऐसे झाड़-झंकाड़ पैदा हो जाते कि उनमें से होकर गुजरना मुश्किल हो जाता. क्या आदमी और क्या जानवर, भटककर रह जाते.

बाप और भाईयों से निपट सुलतान निश्चिंत राजकाज चलाने लगा था. परंतु चैन की नींद सो पाना उसके नसीब में नहीं लिखा था. कोई मनसबदार या सरदार सिर उठाने को होता तो भनक मिलते ही घोड़े दौड़ने लगते. धूल-धक्कड़ फांकती फौज विद्रोहियों का सर कुचलने निकल पड़ती. घोड़ों के बिना वह लड़ाईयां जीतना मुमकिन नहीं था. अच्छी नस्ल के घोड़ों की भनक पाते ही शाही फौज के दस्ते और सिपहसालार धावा बोल देते. दे-फूट नाम की उन गुरिल्ला लड़ाईयों से नावाकिफ एक ऐसा आदमी भी था जिसे राजकाज के झमेलों से कोई वास्ता न था. हजारा सिंह नाम का यह आदमी मनी माजरा का रहने वाला था. उसका एक मात्र शौक था घोड़ों की नस्ल सुधारना और अपने अस्तबल के लिए इनकी संख्या बढ़ाना. उसका जन्म जगरावां में हुआ था. पर पिता की मृत्यु के बाद वह मनी माजरा में अपनी ससुराल में आ बसा था. विरासत में उसे तो कुछ नहीं पर पत्नी को एक हवेली और कुछ घोड़े मिले थे. हजारा सिंह धुन का पक्का और जिद्दी मिजाज का आदमी था. गांव के लोग पीछे अक्सर उसकी अलोचना करते पर प्रत्यक्ष उसकी सनक के आदी हो गये जान पड़ते थे.

हजारा सिंह मेहनती आदमी था. भाग्य ने भी उसका पूरा साथ दिया. जब वह मनी माजरा आया था उसके पास सिर्फ दो घोड़े थे. मनी माजरा की भौगोलिक स्थिति का लाभ भी उसे मिला था. घोड़ों से उसने घोड़ा गाड़ी बनायी जो एक से बढ़कर तीन हो गयीं. तीर्थ यात्रा पर निकले लोग, काम-काज और तहसील कचहरी जाने को निकले लोग और माल-असबाब पहुंचाने को उतावले लोग. हजारा सिंह का काम बढ़ता ही चला गया. जैसे-जैसे उसका काम बढ़ता गया घोड़े पालने का उसका शौक भी. उसके अस्तबल में सबसे कीमती जानवर सात सफेद घोड़े थे जिन्हें हजारा सिंह जी जान से ज्यादा चाहने लगा था. उन घोड़ों को वह गाड़ी में भी न जोतता. कभी-कभी सवारी कर लेना या आने-जानेवालों को चाव से दिखाना और उन घोड़ों के गुणों का बखान करना.

कुदरत का कमाल. हजारा सिंह की सात बेटियां थीं. हर बेटी के जन्म पर उसने एक सफेद घोड़ी खरीदी थी. संभवत: हर दामाद को वह बेटी के साथ-साथ भेंट में घोड़ी भी देना चाहता था. पर लड़कियों के ब्याह की उसे कोई चिंता नहीं थी. उसकी पत्नी ने एक भी बेटा न जना था. पर उसके अस्तबल में एक से एक बढ़िया घोड़े-घोड़ियां थे. हुआ यह कि सात में से एक सफेद घोड़ी बीमार पड़ गयी. उसने खाना-पानी भी छोड़ दिया. हजारा सिंह बहुत दुखी था. पूरा दिन वह अस्तबल में बैठा रहता. घर आने पर वह उस बेटी को घूर-घूरकर देखता जिसके जन्म पर उस घोड़े को खरीदा था. एक भी बेटा न होने से हजारा सिंह अंदर ही अंदर कठोर और रुखाई से भर गया था. उसकी हंसी-ठट्ठा मंद पड़ गयी थी और कोमल भाव दर्शाना भी उसने बंद कर दिया था. घर आता तो उस लड़की को, जिसके जन्म पर बीमार पड़ने वाली घोड़ी खरीदी थी, उठा सीने से चिपका लेता. फिर बेचैनी से उसे पटक वापस अस्तबल पहुंच घोड़ी की पीठ पर हाथ फेरने लगता. घोड़ी ने खाना-पीना छोड़ दिया था. नाल में सरसों का तेल और दवाई भर जबर्दस्ती वह घोड़ी के मुंह में उंडेल देता. तमाम दवा-दारू के बावजूद घोड़ी को बचा पाना संभव नहीं हो पाया था और उसका शरीर अकड़ गया था. पर दूसरी छह बहनों की तरह ही वह लड़की चंपा-चमेली की तरह खिलकर खूबसूरत जवान सुंदरी में बदल गयी. मरी घोड़ी के स्थान पर हजारा सिंह बैसाखी के मेले से नयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

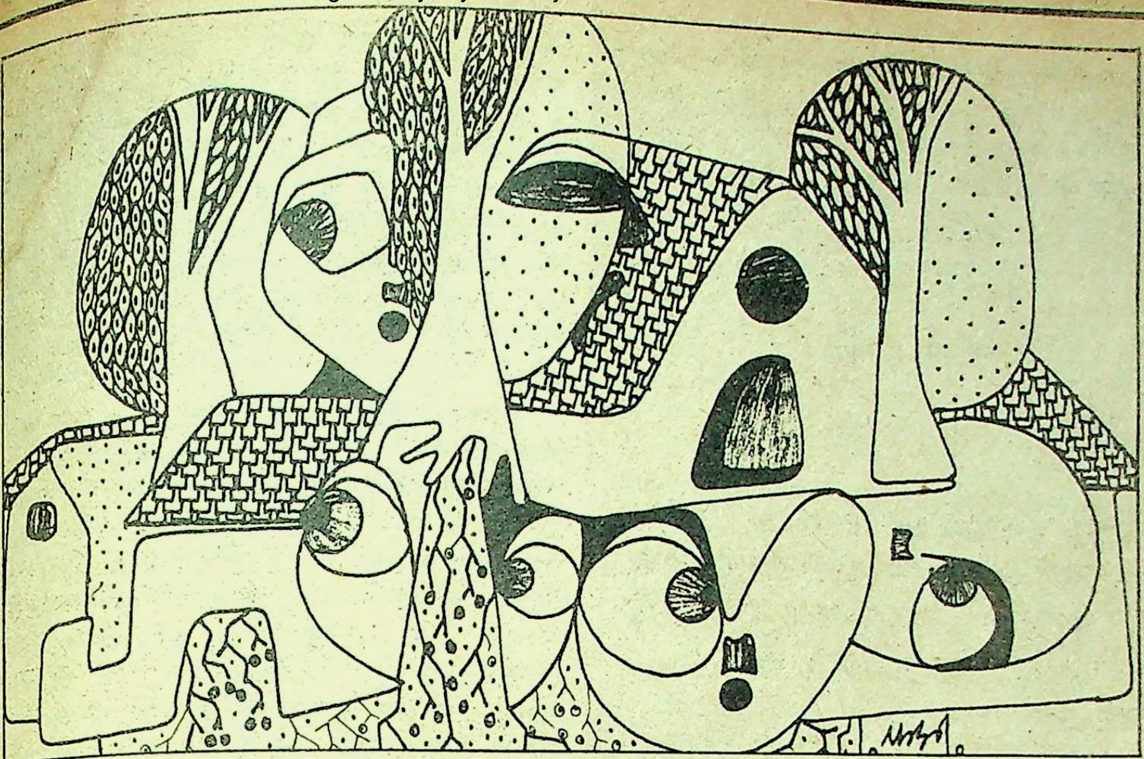

खूबसूरत सफेद घोड़ी, महंगे-सस्ते दामों में खरीद लाया और कुछ ही दिनों में सात घोड़े और सात बेटियों के गौरव में मगन हो गया. मरे का ज्यादा दिन तक अफसोस मनाना हजारा सिंह की प्रकृति में नहीं था.

खुंब की तरह बढ़कर लड़कियां जवान हो गयीं और एक के बाद एक प्रसव के कारण पत्नी थक-टूट संसार से विदा हो गयी. लड़कियां सुंदर थीं. खुश मिजाज, ताड़ से लंबे कद ओर सन जैसे घने लंबे काले बाल. गोरा-चिट्टा रंग और गुलाबी गाल. पत्नी के गम ने हजारा सिंह के मिजाज को चिड़चिड़ा बना दिया था. लड़कियों के साथ वह कठोरता से काम लेता और उन्हें घर से बाहर निकलने की अनुमति भी नहीं थी. छुट्टी के दिन सजधज के साथ उन्हें गुरुद्वारे अवश्य ही वह अपने साथ ले जाता. उस दिन सड़क के दोनों ओर मर्दों की कतारें लग जातीं. जवां, बूढ़े सभी उन लड़कियों की एक झलक पा लेना चाहते और फिर हफ्ते भर का इंतजार. गुरु के आगे मत्था नवा हजारा सिंह देर तक न जाने क्या, मन्नत मांगता रहता. सफेद लंबी दाढ़ी वाले ग्रंथी जी भी लड़कियों को एकटक देखते रह जाते और मुट्ठी भर प्रसाद हर एक की हथेली में उड़ेलते चले जाते. लड़कियां खिलखिलाकर हंस देतीं.

हर एतवार हजारा सिंह ग्यारह रुपये की अरदास करवाता और गुरुद्वारे के द्वारा पर ही सातों लड़कियों के हाथ में तांबे का एक-एक सिक्का मत्था टेकने के लिए थमा देता. मनी माजरा के लोग हर हफ्ते ग्यारह रुपये की अरदास सुन आवाक् रह जाते. बाकी लोग लड़कियों को एकटक देखने में लग जाते.

मनी माजरा से लेकर जगरावां तक के अनगिनत युवक उन लड़कियों में से एक न एक का हाथ थामने को मचल रहे थे. कुछ लोग यह भी आस लगाये बैठे थे कि लड़की के साथ-साथ एक घोड़ी भी दहेज में प्राप्त होगी. पर हजारा सिंह के कान पर जूं भी न रेंगती. लड़कियों और घोड़ों में से कोई भी चीज वह अलग करने को तैयार न था. लड़कियों को सांत्वना देने के लिए वह कहता—जब समय आयेगा मैं स्वयं तुम्हारे लिए वर ढूंढ लाऊंगा. उसे ताज्जुब होता, एक-एक कर लड़कियां सात समुद्र पार चली जायेंगी. मन को समझाने के लिए वह सोचता-लड़कियों ने तो जाना ही है. पर घोड़े-घोड़ियां तो हमेशा उसके पास रहेंगे. उन्हें ही वह बच्चों की तरह मान लेगा.

हजारा सिंह हालांकि प्रभावशाली व्यक्ति था और मनी माजरा में उनका दबदबा भी बहुत था पर उससे ईर्ष्या करने वालों की भी लंबी कतार थी. बहुत सारे लोग बूढ़े और जवान जो उसकी एक न एक लड़की का हाथ स्वयं अपने लिये या अपने किसी पुत्र-पौत्र के लिए मांगना चाहते थे और जिन्हें वह घास नहीं डालता था, हजारा सिंह से असंतुष्ट थे. मनी माजरा में यह आम धारण बन गयी थी कि हजारा सिंह आसपास के इलाके के युवकों को अपनी लड़कियों के लिए उपयुक्त वर नहीं मानता. ईश्वर जाने वह उन ढेर सारी लड़कियों को कहां ढोना चाहता था. हजारा सिंह जानता था कि लड़कियां पराया धन हैं और एक न एक दिन बारी बारी उन्हें विदा करना ही होगा. पर वह टाल करता रहता. लड़कियों और घोड़ों से अपने लगाव के मध्य दामाद नाम के व्यक्ति से ही उसे चिढ़ होने लगी थी. अपनी मान मर्यादा अनुसार प्रत्येक लड़की को दिये जाने वाले दान-दहेज का हिसाब फैलाने पर भी घबराहट उसे आ घेरती. अजीब-सी ऊहापोह के मध्य उसे एहसास ही नहीं हो पाया कि समय की क्रूर चक्की कितना बारीक पीसती है और किसी को नहीं छोड़ती.

हजारा सिंह की हवेली और अस्तबल कस्बे के बाहर और सड़क से दूर बसे हुए थे. रात-बेरात उधर जाने का साहस कोई न जुटा पाता. और फिर हजारा सिंह का बंदूकधारी चौकीदार और डब्बू कुत्ते. हवेली के पिछवाड़े दो-तीन फरलांग के बाद लाखों-करोड़ों पेड़ों और खूंखार जानवरों से भरा लक्खी का जंगल शुरू हो जाता. गर्मी की एक सुबह हजारा सिंह अपनी सबसे छोटी लड़की की उम्र का हिसाब बिठा रहा था. जो चौदह पार कर गयी. अचानक हजारा सिंह को घोड़ों की टाप सुनाई दी जो गांव की दिशा से सरपट भागते हुए हवेली की ओर बढ़ रहे थे. दूर से ही हजारा सिंह ने पहचान लिया. आगे के घोड़े पर गांव के एक किसान बलवंत सिंह का लड़का तारा सिंह और पीछे के घोड़े पर उसका कोई साथी था. तारा सिंह की नजर हजारा सिंह की सबसे छोटी लड़की पर थी. हजारा सिंह कई बार उसे फटकार दे चुका था पर तारा सिंह ने उम्मीद नहीं छोड़ी थी.

घुड़सवारों को देखकर हजारा सिंह हवेली के मुख्य द्वारा पर आ गया. उसे देखते ही तारासिंह ने अपने घोड़े की लगाम खींची और हड़बड़ाहट में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोला, ''सुलतान के आदमी हैं. यार मोहम्मद और उसकी फौज. जंग के लिए घोड़े जब्त कर रहे हैं...अपने दोनों घोड़े लेकर जंगल में छिपने जा रहा हूं...तुम भी अपने घोड़े छिपा लो...''

हजारा सिंह सोच में पड़ गया. तारा सिंह ने घोड़े को ऐड़ लगायी और लगाम ढीली छोड़ी और आगे बढ़ गया

बा अदब बा मुलाहजा

□ रंदी सत्यनारायण राव

मैं अपने मित्र के होटल काउंटर पर बैठा हुआ था. उसी समय एक नये बने युवा नेता तथा उनके सींकिया पहलवान सरीखा बॉडी गार्ड का होटल में आना हुआ. नेताजी हट्टे-कट्टे, किंतु मुस्तंद प्रतीत हुए. उन्होंने प्रवेश करते समय मुझे ऐसे देखा, जैसे मैंने उनका अपमान किया हो, वे नाश्ते से निपटकर पैसे देने काउंटर पर आये और फाड़ खाने के अंदाज में बोले, ''तुम अपने को क्या समझते हो—तुम जैसे दो टकिये के आदमियों को मैं (अपने खादी के कुर्ते के झोलीनुमा जेब की ओर इंगित करते हुए) इसमें रखता हूं.

मैं आश्चर्य और विस्मय से उन्हें देखने लगा कि आखिर ऐसी क्या बात हो गयी जो नेताजी के गले नहीं उतर रही. मैंने विनम्रता से पूछा, ''हमसे ऐसी क्या गुस्ताखी हुई जनाब जो आप इस तरह से पेश आ रहे हैं.''

जवाब में नेताजी का पारा और चढ़ गया. बोले, ''तुमसे पहले एक आदमी यहां बैठता था, मैं जब भी यहां आता, वह 'फौजी-सुल्यूट' से मेरा स्वागत करता था. और गर्मागर्म नाश्ते की व्यवस्था करता था. जबकि तुमने ऐसा कुछ नहीं किया. यह हमारा ही नहीं, इस देश का अपमान है.''

उनकी नाराजगी का कारण जानते ही मैंने क्षमा मांगना उचित समझा, ''क्षमा करेंगे साहब...मैं नहीं जानता था कि आप वही नेताजी हैं, जिनके आगमन पर यहां 'फौजी सैल्युट' की प्रथा है...आईंदा फिर कभी ऐसा सौभाग्य प्राप्त होगा तो बकायदा, 'बा अदब बा-मुलाहजा होशियार...' ताकीद के साथ आपका स्वागत करूंगा...लेकिन अभी तो बख्श दीजिये...'' वे मेरी गुहार सुन कुछ नरम पड़े और उपस्थित भीड़ की ओर देख, इस अंदाज से चल पड़े, जैसे एम. पी. का चुनाव जीत गये हों... □

सहसा हजारा सिंह मुड़ा और हवेली का मुख्य द्वार बंद कर बंदूकदारी चौकीदार को चौकस किया, ''अंदर कोई न आ पाये. मैं बाहर आकर बात करूंगा.''

अंदर पहुंच हजारा सिंह ने हवेली में मौजूद अपने तीनों सईस इकट्ठे किये और उन्हें हुक्म दिया कि सातों सफेद घोड़ों को फौरन जंगल में छिपाने के लिए ले जायें. खतरा टल जाने पर वह स्वयं उन्हें वापिस बुलवा लेगा. कुछ घोड़े गाड़ियों में सामान लाद दूसरे कस्बों की यात्रा पर थे. इसके बावजूद पांच घोड़े अस्तबल में बंधे थे. हजारा सिंह ने सोचा, उन पांचों को भी छिपा दें. सुलतान के आदमियों से कह देगा सभी घोड़े गाड़ियों के साथ बाहर दूर दराज के इलाके में गये हैं. उसे लगा झूठ पकड़ा जायेगा...और फिर यह घोड़े उतने कीमती भी नहीं थे. सात सफेद घोड़ों को बचाने के लिए इन घोड़ों की कुर्बानी देना कोई बड़ी बात न थी. यह भी संभव है कि सुलतान के आदमी घोड़ों की खरीदारी पर निकले हों. ऐसी कौन-सी जंग चल रही है जो सुलतान जबर्दस्ती घोड़े उठवाने चला हो.

चौकीदार को द्वार बंद रखने की हिदायत दे कर हजारा सिंह भीतर के कमरे में जा दीवान पर लेट गया. अनर्थ की शंका से अंदर ही अंदर वह बेचैन हो उठा. सहसा उसे लगा लड़कियों के ब्याह कर देने चाहिए. मनी माजरा में बैठे उसे क्या खबर कि दुनिया-जहान में क्या हो रहा है. जंग लगते ही सिपहसालार और सिपाही कैसे खूंखार भेड़ियों की तरह टूट पड़ते हैं. लड़कियों अपने अपने घर चली गयी होतीं तो लोगों की नजर भी न पड़ती उन पर. अब पछताये क्या होत? घबराकर वह उठ गया. लड़कियों को पुकारने लगा—''संतो...अरे...बिमला...रानो... सुमित्रा...सब इधर आओ!'' यार मोहम्मद और उसकी फौज की नृशंसता के किस्से उसने पहले भी सुन रखे थे. सातों बहनें सहमकर पिता के सामने खड़ी थीं. लड़कियों को देखते ही हजारा सिंह ने हिदायत की, ''सुलतान के आदमी घूम रहे हैं. तुम घर से नहीं निकलना.'' फिर आश्वस्त करने की मुद्रा में बोला, ''वाहे गुरु का शुक्र है...हवेली कस्बे के बाहर है. हो सकता है यार मोहम्मद कस्बे से ही लौट जाये...''

कुछ सोचते हुए उसने अपने नौकर बलदेवा को कस्बे में भेज दिया ताकि वह पूरी खोज-खबर ला सके.

बलदेवा कोई ठोस सूचना नहीं ला सका. अफवाहें, शंकाएं और लोगों की धारणाएं. लोगों का कहना था जो छापामार घोड़े इकट्ठे कर रहे थे, वह सुलतान के आदमी नहीं हैं. वे लुटमार करनेवाले डकैत थे जो निर्दयता से लोगों से मारपीट करते, औरतें उठाकर ले जाते और सर्वत्र विनाश करते निकल जाते. लोगों का विचार था ऐसे छापामार किसी एक इलाके में लूटमार मचा दुम दबाकर भाग जाते हैं. सरकारी मदद आने से पहले ही अपना काम करके वह फूट लेते हैं. उनकी संख्या के बारे में भी किसी को सही जानकारी न थी. दस-बीस को तो हजारा सिंह हवेली की मुंडेर से गोलाबारी कर खदेड़ सकता था. इतना तय था कि वे हर जगह से घोड़े खोल रहे थे और घोड़ों का लश्कर लेकर इलाके के कई गांव और कस्बे रौंद चुके थे.

''इसका मतलब है हमारे लिए खतरें की कोई बात नहीं. घोड़ों का इतना बड़ा काफिला लेकर वह यहां तक नहीं पहुंच पायेंगे. कस्बे तक आ भी गये तो इतनी गद्दारी क्यों कोई करेगा कि हवेली का पता बता दें...'' हजारा सिंह ने स्वयं को ढाढस बंधाते हुए बलदेवा से कहा.

इससे पहले कि बलदेवा हजारा सिंह की हां में हां मिलाता, मुख्य द्वार पर जोर की दस्तक हुई थी. यंत्रवत हजारा सिंह मुख्य द्वार की ओर हो लिया था. उद्विग्न था वह छोटे द्वार के पास जाकर रुक गया जो बड़े द्वार के अंदर जड़कर बनाया गया था. मुख्य द्वारा पर दोबारा जोर की दस्तक हुई. घर के नौकर और लड़कियां घबराहट, उत्सुकता और भयवश गलियारे में इकटठे हो गये थे. मुख्य द्वार पर और तेज दस्तक हुई थी. हजारा सिंह ने छोटा द्वारा खोला और बाहर हो लिया. बाहर क्या बातचीत हुई अंदर सुनायी नहीं दी. पर हजारा सिंह वापिस अंदर आया और मुख्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वार के दोनों पट खोल दिये. शाही वर्दी में सुसज्जित यार मोहम्मद, उसके मातहत फौजदार और दस सिपाही हजारा सिंह की परवाह किये बगैर अंदर घुस आये थे.

पहले यार मोहम्मद और फिर फौजदार समेत सभी तुरत-फुरत घोड़ों की पीठ से उतर नीचे खड़े हो गये थे. यार मोहम्मद और फौजदार को छोड़ सारे सिपाही अस्तबल में घोड़ों की तलाश में बिखर गये थे.

यार मोहम्मद एक ओर चुप खड़ा था. फौजदार ने अपनी रौबीली आवाज में घोषणा की, ''सिपहसालार सफेद घोड़ों की खातिर स्वयं चलकर आये हैं.''

हजारा सिंह ने यार मोहम्मद की ओर आंखें घुमायीं. वह मंद-मंद मुस्करा रहा था. हजारा सिंह को समझते देर न लगी कि कस्बे के लोगों ने गद्दारी की है. यह काम उसके किसी शरीफ का है या उसकी लड़कियों पर नजर रखने वाले किसी बदमाश का.

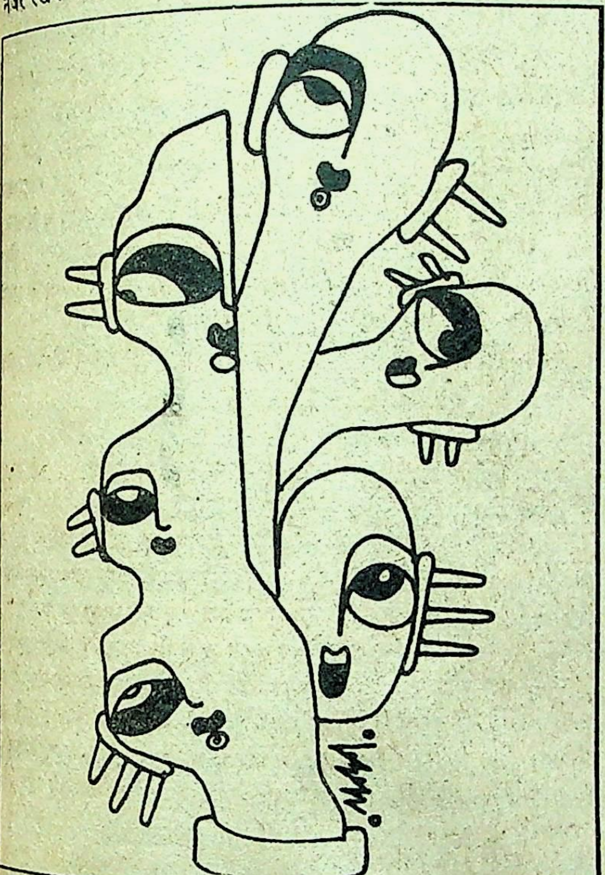

प्रत्यक्ष उसने यार मोहम्मद से बैठक में चलने का आग्रह किया, ''थककर आये हैं. कुछ जलपान कर लें. हम तो सुलतान की रिआया हैं.''

यार मोहम्मद जो कस्बे से छककर आया था, जलपान में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी—''हमें घोड़े चाहिए.''

सबके सब अस्तबल में हैं. जितने चाहें ले जायें. हजारा सिंह ने चतुराई से कहा था. घोड़ों की तलाश में अस्तबल गये सिपाही लौट आये थे. तलाश की रपट देते हुए सब से आगे चल रहे सिपाही ने कहा था, ''सबके सब बेकार. एक भी ले जाने लायक नहीं...''

यार मोहम्मद ने पहली बार जुबान खोली थी, ''सफेद घोड़े कहां हैं?''

इनसे पहले कि हजारा सिंह कोई स्पष्टीकरण देता, यार मोहम्मद ने कुटिलता से कहा, ''लड़कियों को बुलाओ. हमने सुना है, सात घोड़ों के अलावा तुम्हारे यहां सात लड़कियां भी हैं...''

''यह मेरी बेटियां हैं...''

यार मोहम्मद मुख्य द्वार तक पहुंच चुका था— ''हमारी भी...'' तिरछी निगाह फेंकते हुए वह रुका था, ''हमने वाडदनी पर डेरा डाला है. हमारे काफिले के लोग और फौज के लिए रिआया द्वारा पेश किये गये सभी घोड़े वहीं जमा हैं. जंग में सुलतान का साथ देना रिआया का फर्ज है. हम इंतजार करेंगे. घोड़ों के पहुंचते ही तुम्हारी बेटियां वापिस आ जायेंगी...''

हजारा सिंह अवाक् देखता रह गया था. बोल उसके हलक में अटक गये थे. सहसा फौजदार ने यार मोहम्मद को संबोधित किया था,

संक्रमण

□ कमल चोपड़ा

यह छठा मरीज था. एक बाद एक. अभी दो पेशेंट और थे जिन्हें एनेस्थीसिया दिया जा रहा था उन्हें तत्काल आपरेशन की जरूरत थी...छोटी-मोटी चोटों के लिए जूनियर डॉक्टर मुस्तैदी से काम कर रहे थे. इस पेशेंट की जांघों और पेट में बम के फटने से बारूद के टुकड़े घंस गये थे....डाक्टर साहब के अभ्यस्त हाथ अपना काम बखूबी कर रहे थे...

अभी तक जितने पेशेंट आये हैं...सब के सब गरीब मजदूर है जिन्हें रोजी-रोटी से फुरसत नहीं...इन्हें दंगों से क्या लेना-देना...

शहर में भयकर दंगा हुआ था. डाक्टर साहब को इमरजैंसी में पुलिस की हिफाजत में हस्पताल लाया गया था...लेकिन...रास्ते में उनकी कार के ऐन आगे दंगाईयों ने बम फेंक मारा था. डाक्टर बाल-बाल बच गये...वर्ना...आज...अब तक कितने आपरेशन कर चुका हूं...उनमें हिंदू, मुस्लिम,, सिख थे उनके अंदर ऐसा कुछ तो था नहीं कि जो उन्हें हिंदू, मुस्लिम, बनाता हो. सब में वही रक्त-मांस-मेद-अस्थि...वही मैटीरियल, दवाईयों का वही रेस्पोंस...एक जैसे इंटरनल सिस्टम्स...डाईनैस्टिव (पाचन) रेस्परेट्री (श्वास), सरकुलेटी (रक्त संचार), नर्वस (तांत्रिका) रीप्रोडक्टिव, सिस्टमस क्या वाकई ये हिंदू, मुस्लिम...सिख...वगैरह-वगैरह हैं...कहीं उन्हें कोई मुगालता तो नहीं है...ये ईश्वर, अल्ला, गॉड की रचनाएं है या ये ही इनकी कल्पनाएं हैं...? वो धर्म जो इंसानों को अपाहिज बनाये...गरीबों को लुटे...मारे...जलाये,औरतों को विधवा, बेसहारा बनाये, बच्चों को यतीम बनाये...उस धर्म को अपनाये रखना! ही गुनाह है...धर्म क्या अणुबम है जो इंसानों ने अपने दिमाग के लिए बना लिया है....धर्म क्या इनफकेक्शन डीजीज है.

मैं इस रोग से छूट जाना चाहता हूं. मेरा जो भी धर्म है, मैं उसे आज से छोड़ रहा हूं...इंसान....हूं...इंसान की तरह इंसानों के लिए इंसान बन कर रहूंगा... □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

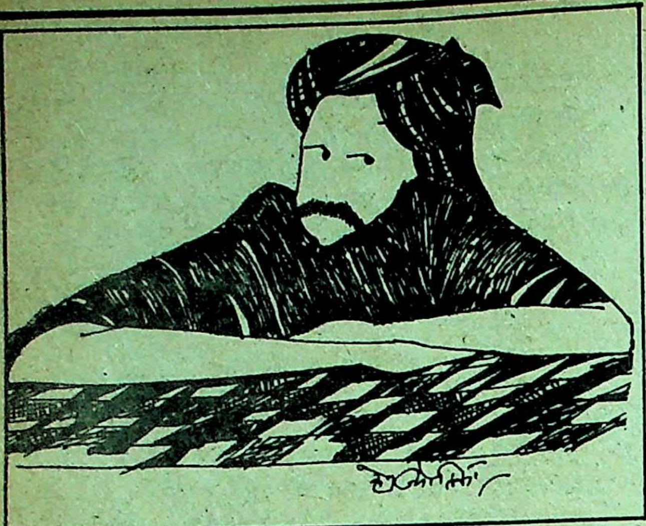

"लड़कियों को कहां संभालते फिरेंगे. दो सिपाही यहां तैनात कर दें. घोड़ों के आते ही कब्जे में ले लेंगे.

यार मोहम्मद की भृकुटि तन गयी थी, "लड़कियों को कब्जे में लो और हुक्म की तामील करो! यहां छोड़ने के लिए हमारे पास फालतू फौज नहीं है." फौजदार जस का तस खड़ा रह गया था. सिपाही लड़कियों को हांकते हुए बाहर ले आये थे.

सांझ होने से पहले ही हजारा सिंह ने स्वयं को वाहदनी के किले के बाहर पाया था. चारों तरफ खेमे ही खेमे दिखाई दे रहे थे. बरछी-भाला थामे सिपाही जगह-जगह तैनात थे. हजारा सिंह सुबह छापा मारनेवाले किसी सिपाही या फौजदार को खोज रहा था. जिस किसी सिपाही को रोक उसने फौजदार का पता पूछा सभी टाल गये. तभी उसकी नजर किले के खानसामा पर पड़ी. हजारा सिंह ने झट जेब से सोने की मोहर निकाल उसकी मुट्ठी में रख प्रार्थना की, "मुझे यार मोहम्मद के डेरे ले चलो."

हजारा सिंह की उम्मीद के विपरीत यार मोहम्मद तुरंत डेरे के बाहर आ गया था, "घोड़े आये?"

हजारा सिंह ने नजर बचाते हुए कहा, "सरकार, रात उतरने को है. मैं गुजारिश करने आया था. लड़कियों को घर जाने की इजाजत हो."

यार मोहम्मद ने अट्टहास किया. "तुम्हारा खयाल था, यहां गांव-गांव में लंगड़े-लूले घोड़ों के लिए खाक छान रहा हूं."

गोली

लड़ाई के दिनों की बात है. अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति रुजवेल्ट को एक सभा में भाषण करना था. अखबारों के प्रतिनिधियों को उस सभा में राष्ट्रपति की सीट के एकदम पास बैठने के लिए सीटें दी गयी थीं. कार्यक्रम अच्छी तरह हो जाने के बाद पत्रकार लोग राष्ट्रपति के सचिव के पास पहुंचे और इतनी अच्छी सीटें देने के लिए धन्यवाद दिया.

इस पर सचिव ने मुस्कराते हुए कह ही तो दिया—"इसमें धन्यवाद की कोई बात नहीं. दरअसल आप लोगों ने बैठने का इंतजाम इस ढंग से किया गया था कि श्रोताओं में से यदि कोई राष्ट्रपति महोदय पर गोली चलाता, तो वह पहले आप लोगों में से किसी को लगती." □

प्रस्तुति : वीणा श्रीवास्तव

हजारा सिंह ने सोने की मोहरों से भरी थैली पेश करते हुए फिर गुजारिश की, "नजराना कबूल फरमायें. मेरी इज्जत बख्श दें." थैली को झटकते हुए यार मोहम्मद बोला, "तुम्हारा नज़राना सुलतान की खिदमत में पहुंच जायेगा." घोड़े ले आओ और लड़कियां ले जाओ."

"घोड़े भी आते ही होंगे." हजारा सिंह बोला.

"हम इंतजार करेंगे." यार मोहम्मद घूमकर अपने खेमे में दाखिल हो गया था.

आधी रात का समय रहा होगा. हजारा सिंह के सईस सातों सफेद घोड़े लेकर आखिरकार वाहदनी के किले आ पहुंचे. हजारा सिंह दौड़ता हुआ यार मोहम्मद के खेमे के बाहर पहुंच जोर-जोर से चिल्लाने लगा, "आ गये...घोड़े आ गये!"

अंदर खेमे में यार मोहम्मद फौजदारी के साथ शतरंज की बाजी जमाये बैठा था. उसकी आंखें लाल सुर्ख हो रही थीं. लाल शराब और गोश्त से बची हड्डियां खेमे में बिखरी पड़ी थीं.

आगे-आगे यार मोहम्मद और पीछे-पीछे फौजदार खेमे से बाहर आये थे.

"तो घोड़े आ गये!" यार मोहम्मद ने लड़खड़ाती आवाज में कहा था.

"जी हजूर." हजारा सिंह बोला था.

"लड़कियों को पेश किया जाये!" यार मोहम्मद ने आदेश दिया था.

अंधेरी रात में लड़कियों के चेहरे पीले पड़ गये थे. हजारा सिंह को लगा एक ही दिन में उसकी दुनिया उजड़ गयी है.

पास खड़े सिपाही को सहसा यार मोहम्मद ने आदेश दिया, "फरमान सुनाया जाये..."

सिपाही ने फरमान को खोला और पढ़ना शुरू किया, "सुलतान के हुक्म से हजारा सिंह साकिन मनी माजरा के सात घोड़े वास्ते इस्तेमाल जंग जब्त किये जाते हैं..."

हजारा सिंह ने सर झुका फरमान को कबूल किया था.

तभी यार मोहम्मद बोल उठा, "यह फरमान का आधा हिस्सा है...बाकी हम जुबानी सुनाते हैं...और तुम्हारी यह लड़की अपने हरम के लिए हम जब्त करते हैं..."

"यह नाइंसाफी है." यह आवाज फौजदार की थी.

यार मोहम्मद का हाथ बगल में लटकी कटार पर गया था "इस बेअदबी की हम तुम्हें सजा देंगे."

कटार के हाथ में जाने से पहले ही फौजदार की बर्छी यार मोहम्मद के सीने में घुस गयी और यार मोहम्मद वहीं ढेर हो गया. फरमान पढ़नेवाले सिपाही और फौजदार यार मोहम्मद को घसीटकर खेमे में लिटा दिया था. पूरे किले में खामोशी छा रही थी.

फरमान पढ़नेवाले सिपाही ने चुस्ती से फौजदार को सलाम किया था, "जालिम का खात्मा करना ही ठीक था."

हजारा सिंह हतप्रभ खड़ा रह गया था. फौजदार ने उसके कंधे पर हाथ रखा था, "घोड़ों से बहुत लगाव है न तुम्हें. सातों घोड़े और लड़कियां लेकर रातों-रात भाग जाओ. यह आठवां घोड़ा मैं दे रहा हूं...तुम्हारे लिए. लाखों में जा छिपना. और हां...मनी माजरा से जगरावां तक कितने युवक तुम्हारी लड़कियों का हाथ थामने को उतावले हैं. परसों हमारा डेरा उठ जायेगा. उसके बाद मनीमाजरा लौट जल्द से जल्द लड़कियों के हाथ पीले कर देना...खुदा हाफिज."

हजारा सिंह की आंखों से बहने वाली अश्रुधारा रुक ही न रही थी. □

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाली

'बंसीधर घबरा गया. उसने सोचा था, मालिक को काम की बात बताकर शाबाशी लेगा, पर आंखिन देखी न होने से मामला उलट रहा था...' कैसा था यह मामला जिसने बंसीधर को पशोपेश में डाल दिया था...?

गौरी शंकर कपूर

पहली कहानी 'अणिमा' में १९५५ में प्रकाशित. कहानियां, कविताएं, रेडियो रूपक, टी.वी. नाटक व उपन्यास लेखन में समान रूप से सक्रिय.
प्रमुख कृतियां : 'नींव से पहले', 'नचिकेता' और 'सचमुच सच' [उपन्यास], 'स्मृति के ओर छोर' [कविता संग्रह]
संप्रति : दूरदर्शन केंद्र के समाचार विभाग से संबद्ध.
संपर्क : १८९ आकाशदर्शन अपार्टमेंट्स, प्लाट न.-१२, पटपड़ गंज, दिल्ली-११००९२.

लाला मेघराज को विश्वास नहीं हो रहा था, "क्या कहा? खन्नों के मकान के चबूतरे पर मंदिर बना हुआ है?"

अधेड़ उम्र के नौकर बंसीधर ने अपने हाथ में झूलती डोलची की तरफ लालाजी का ध्यान खींचते हुए अपनी बात पर बल दिया, "आहोजी, दुध लेने आये सारे आदमी यही कह रहे थे..."

लाला मेघराज का उखड़ा सांस जैसे लौट आया हो, उन्होंने करीब-करीब फटकारते हुए पूछा, "हरामिया, आंखों से वेख के आया है या सुनी-सुनायी है?"

बंसीधर घबरा गया. उसने सोचा था, मालिक को काम की बात बताकर शाबाशी लेगा, पर आंखिन देखी न होने से मामला उलट रहा था. उसने अपना बचाव पेश करते हुए कहा, "लालाजी, वेखी तो नहीं, पर सरदार संतोख सिंह, लाला हरदयाल चंद...सारे ही कह रहे थे..."

"कंजरा, वापसी में पासियां दे कटरे होता आता..." लाला मेघराज ने असंतोष जताया.

बंसीधर के चेहरे पर कुछ क्षण पहले की व्यग्रता का स्थान दीनता ने ले लिया था. वह चुपचाप सिर झुकाए खड़ा रहा.

"जा, भाग और छोटे को नीचे भेज!" लाला ने झल्लाकर कहा.

सामने खुले अखबार के पहले पन्ने पर आम दिनों की तरह पंजाब में आतंकवादी गतिविधियों का लेखा-जोखा था. कुछ देर पहले तक लाला मेघराज आतंकवादियों, सरकार और हिंदुओं के दब्बूपन को कोसते हुए हत्याओं और गिरफ्तारियों का ब्यौरा तथा सरकारी दावों को पढ़ रहे थे. पिछले कुछ बरसों से उनकी सुबह इसी तरह शुरू होती थी. पर आज उनका मन बुरी तरह उखड़ चुका था.

पासिया कटरे में लाला मेघराज ने हाल ही में एक पुरानी जायदाद खरीदी थी. इस पुश्तैनी जायदाद के सभी वारिस अमृतसर छोड़कर दिल्ली, बंबई और कलकत्ता में जा बसे थे. पिछले कुछ बरसों में इस उजाड़ तिमंजिली इमारत के आस-पास कपड़े की थोक मार्केट बननी शुरू हो गयी थी. लाला मेघराज के दोनों बड़े लड़कों के पास अपने-अपने मकान और दुकानें थीं. वही छोटे रमेश चंदर को यह मकान को खरीदवा कर जायदाद के भावी झगड़े अभी से निपटा देना चाहते थे. उन्होंने पुरानी जायदाद के मुख्य वारिस से सौदा तय करके उसे पेशगी बयाना भी दे दिया था. और चार-पांच रोज बाद रजिस्ट्री भी करवा लेनी थी. उन्होंने सोचा, रजिस्ट्री के बाद जायदाद पर कब्जा कर लेंगे, तथा कोई छोटा-मोटा वारिस आया तो उसे औने-पौने छुटकारा पा लेंगे. अमृतसर के वह पुराने बाशिंदे थे, वह हिंदुओं के जाने-माने हितचिंतक जरूर थे पर उनका रसूख सभी जगह था. अब तक सारा काम निर्विघ्न हुआ था और न ही किसी गड़बड़ की उन्हें उम्मीद भी थी.

छोटे रमेश चंदर ने पिता के चिंतित चेहरे को फौरन पढ़ लिया, "क्या बात है, लालाजी?"

लाला मेघराज ने अपनी विचलित स्थिति पर काबू पाने का प्रयास करते हुए कहा, "बेटाजी, पासियां कटरे जाकर पता लगाओ, खन्नों के मकान के चबूतरे पर किसी ने मंदिर बनाया है?"

रमेश चौंक गया, "मंदिर बनाया है! आपको किसने बताया? परसों मैं उधर गया था, ऐसा-वैसा कुछ भी नहीं था..."

"बंसी ने लोगों से सुना है. नौकर है न, कंजर ने यह नहीं सोचा, वापसी में मौके को छूह आता..." लालाजी नौकर के गैर-जिम्मेदार बरताव से अभी तक क्षुब्ध थे.

"आप भी चलोगे!" रमेश को यकायक असुरक्षा का भान हुआ था. उसे लगा जैसे खन्नों के चबूतरे पर मंदिर बनाकर किसी ने चुपके से उनके परिवार पर हमला बोल दिया हो.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाला मेघराज ने कुछ क्षण विचार कर जवाब दिया, "मेरा जाना ठीक नहीं है, बेटाजी. क्या पता, कौन-सा कदम उठाना पड़े!"

रमेश अपने पिता का मतलब समझ गया था. लाला मेघराज के पहुंचते ही स्थिति जरूरत से ज्यादा गंभीरता पकड़ सकती थी. मामला उसके जैसे मुंडे-गुंडे (लौंडे-लपाड़ों) तक सीमित रहे तो किसी भी तरह की गुंजायश बनी रहती थी. उसने हामी भरी और फौरन स्कूटर दौड़ाता हुआ पासियां कटरे पहुंच गया.

उसकी आशंका सच थी : खन्नों के मकान के चबूतरे पर ताजी चिनाई किया एक 'आला' बना हुआ था. 'आले' पर अभी पलस्तर नहीं था और उस पर गेंदे की दो-चार मालाएं लिपटी पड़ी थीं.

आले पर निगाह गड़ाए रमेश कुछ देर तक विचारहीन अवस्था में रहा. गर्मियों की सुबह का वक्त था. महल्ले में दूधियों, अखबारवालों तथा सैर-फरोशों की इक्का-दुक्का आमदरफ्त थी. वह किसी परिचित को ढूंढने की नीयत से कुछ देर तक इधर-उधर मटरगश्ती करता रहा. उसका दिल जोर से धक्-धक् करने लगा था और वह अपने डर और असुरक्षा को छिपाने के लिए भरसक प्रयास कर रहा था. गली के कई चक्कर लगाने के बावजूद उसका किसी परिचित से टकराव नहीं हुआ. चबूतरे पर बना 'आला' देख-देखकर उसमें अजीब-सी नपुंसक चिढ़ पैदा हो रही थी. स्थिति असहनीय हो जाने पर वह कटरे के बाहर खड़े अपने स्कूटर के पास आ गया. वहीं एक रिक्शेवाला भी सुस्ता रहा था.

रमेश बात किये बगैर रह न सका, "क्यों भइया, अंदर के उजाड़ मकान पर आला कब बन गया, पता है?"

भइया ने अपने सिर पर अंगोछा घुमाया और भावहीन स्वर में कहा, "रात को बगलवाला अग्रवाल लाला बनवाए रहा था वो आला..."

रमेश का माथा ठनक गया : तो कुड़ी...बाणिया खन्नों की जायदाद हड़पने के चक्कर में है. उसने रिक्शेवाले से यूं कहा जैसे अग्रवाल को सुना रहा हो, "परायी जायदाद पर नजर रखनी बुरी बात है, भय्या! इसके नतीजे अच्छे नहीं निकलेंगे!"

"अब अच्छे निकलें या बुरे. हमें का." कहकर रिक्शेवाला टांगें पसारकर लेट गया.

रमेश ने भी स्कूटर पर किक मारी और चल दिया. रिक्शेवाला भय्या दो-चार से बात तो जरूर करेगा. हो सकता है, अग्रवाल तक पहुंच जाये....एक दफा तो वह भड़केगा ही...रमेश धड़ाधड़ स्कूटर दौड़ता घर पहुंच गया. तब तक बड़ा भाई नरेंद्र भी वहां पहुंच चुका था.

जब तक रमेश बोलना शुरू करता, लाला मेघराज उसके उतावलेपन से अंदाजा लगा चुके थे. उन्होंने गुरु गंभीर स्वर में पूछा, "हूं!"

रमेश का उत्साह कुछ मंद पड़ा था, "हां जी! पर मंदिर-वंदिर नहीं है...आला है. लोग कह रहे हैं, बंगला वाला अगरवाल है न, उसी ने यह शरारत की है."

नरेंद्र ने तीखी आवाज में टोका, "वो बाणिया...कंजर को गालियां तो निकाल आता!"

रमेश को लगा, यह कहने से कि वह गालियां निकालकर नहीं आया उसकी हेठी हो जायेगी. उसने सचमुच का उत्साह दिखाया, "उसके मकान के नीचे खड़े होकर गालियां निकालीं, पर कोई कुत्ता नहीं आया...."

इस बार लाल मेघराज ने टोका, "बेटाजी, गालियां निकालकर आपने बहुत गलत काम किया है. यह मामला नाजुक है. कोई भी कदम उठाने से पहले खूब सोच-विचार करना पड़ेगा."

नरेंद्र झटके से खड़ा हो गया, "तो फिर आप सोच-विचार कर लो. मैं फैक्ट्री खुलवाकर दोपहर को आऊंगा...हमें तो काम बताओ, लालाजी, काम!"

"ठीक है, परंतु सरदार सोहन सिंह को फोन तो कर देना," लाला मेघराज ने ताकीद की.

नरेंद्र सिर हिलाकर चला गया.

अब लाला मेघराज रमेश की तरफ मुखातिब हुए, "तो वो आला है!"

रमेश अभी आला---रूपी हमले के आतंक से मुक्त नहीं हुआ था.

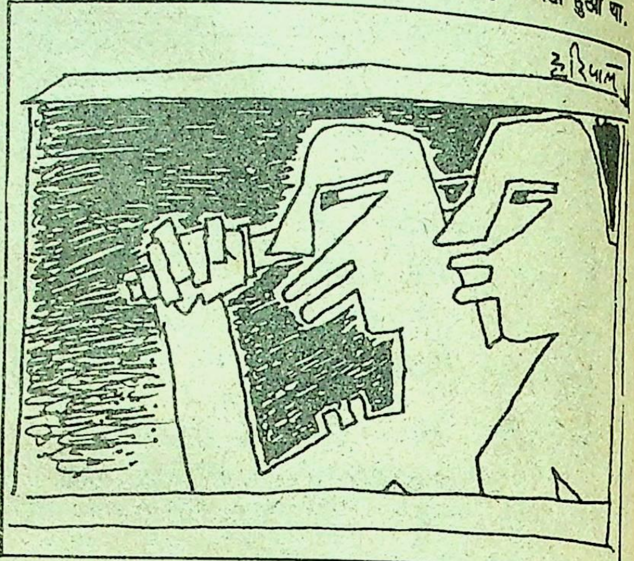

बचाव में उसके व्यवहार की उग्रता सहज ही व्यक्त होने लगी थी. उसने उत्तेजित आवाज में आले की लंबाई-चौड़ाई का ब्यौरा पेश किया.

"उसमें कोई प्रतिमा है...? या कोई दीवा या फूल-मालाएं...", लाला मेघराज ने पूछा.

"...मूर्ति-वूर्ति तो नहीं है...!...मेरा खयाल है, दीवा भी नहीं है पर फूल मालाएं चढ़ी हुई हैं." रमेश ने सोच-समझकर बताया.

"हूं," कहकर लाल मेघराज सोच-विचार में डूब गये. थोड़ी देर बाद उन्होंने रमेश से सलाह ली, "बेटा जी, अगर हम इस जायजाद का सौदा ही न करें तो..."

रमेश को बुरा लगा था. उसने क्षुब्ध स्वर में कहा, "अब हम अपना कदम कैसे पीछे उठा सकते हैं....सब को मालूम है, लाला मेघराज इस जायदाद को खरीदने वाले हैं. अगर हमने पैर पीछे किया तो पूरे शहर में हमारे परिवार की भद्द उड़ जायेगी. और फिर रहना भी इसी शहर में है..."

"तुम ठीक कहते हो, बेटा जी. ठीक है, करते हैं कुछ." लाल ने दृढ़ शब्दों में कहा.

रमेश उत्साहित हो उठा, "जिन्होंने आज वहां आला बनाया है, कल वे लोग यहां इस घर में बना लेंगे!..."

लाला मेघराज बेटे के बुजुर्गाना लहजे से चिढ़ गये. उन्होंने सख्ती से लगाम लगायी, "बेटाजी, तुम फौरन हंसराज खन्ना को टेलिफोन कर दो कि तुम्हारी जायदाद हड़पने की जबरदस्त कोशिश की गयी है... नहीं तो कहेगा, हमें बताया नहीं...फिर इसी बहाने बीस-बाईस हजार और कम करा लेंगे."

बाल किशन अग्रवाल के घर की बैठक में राजकुमार मेहरा उत्तेजित मुखमुद्रा से बोल रहा था, "...फिर लाला मेघराज हिंदुओं का लीडर है...दस मंदिरों की परबंदक कमेटियों में है, हर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इलेक्शन में हिंदुओं के नाम पर वोट डलवाता है...तो फिर कैसे खन्नों के चबूतरे का मंदिर ढहा देगा..."

साहनी ने आदतन हवा में हाथ नचाते हुए कहा, "कोई घर का राज है! हमने भी कोई चूड़ियां पहनी हुई हैं!...चार आदमियों से लाला मेघराज की जान-पहचान है तो दो से अपनी भी है. जरूरत पड़ी तो दो-चार अतंकवादी (आतंकवादी) यूं ही खड़ा कर दूंगा..."

अग्रवाल ने नाक पर चश्मे का संतुलन ठीक किया, "मैंने तो आप

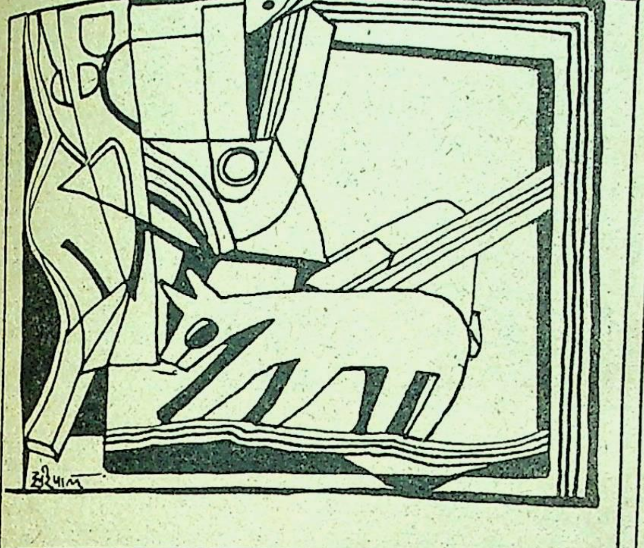

भाइयों के जोर पर यह काम करवाया है. आप लोगों का हाथ पीठ पर बना रहे तो मैं इससे भी बड़ा काम कर सकता हूं. फिर इसमें फायदा भी सभी का है."

"लालया, फिक्र न कर! हमने हुक्म का चक्का चला है, लाला मेघराज के पास इसका तोड़ नहीं है." राज ने आत्मविश्वास का फुल बटा फुल प्रदर्शन किया.

अग्रवाल को दरवाजे के पीछे से इशारा करती पत्नी दिखाई दी. वह फौरन उठ खड़ा हुआ और 'मैं अभी आया' कहकर बाहर की तरफ लपका.

पत्नी कुलदीप का चेहरा गुस्से से तमक रहा था, "...आपको यह सब करने की क्या जरूरत थी! मैं रात को भी समझाती रही, तब कुछ समझ नहीं आया, अब रिरियाकर मदद मांग रहे हो....इन लोगों को साफ-साफ क्यों नहीं कह देते कि मुझे अब और चक्कर में नहीं पड़ना."

उसको धैर्यपूर्वक सुनने के बाद अग्रवाल दांत पीसते हुए बोला, "हरामजादिये, अपना काम कर! मर्दों के कामों में औरतें टांग नहीं अड़ातीं! कुत्ती...!!"

"ज्यादा मर्द-मर्द न बोल, समझया! मर्द होता तो सारी रात टट्टियों में न बैठ रहता..." कुलदीप ने फौरन हिसाब बराबर कर लिया.

"तू जाती है या नहीं..." अग्रवाल ने गुस्से में पत्नी को धक्के देकर पीछे धकेलना शुरू कर दिया," कुत्ती काम-धंधे की बात में जरूर अयेगी..."

कुलदीप ने उसे पीछे धकेल दिया, "ज्यादा मर्दानगी न दिखा, मैं खुद जाती हूं. अब रोता आया तो मेरी भी जूती खायेगा..."

अग्रवाल मुनमुनाता हुआ बैठक में प्रविष्ट हुआ ही था कि मेहरा बोलने लगा, "अग्रवाल परछाईं एहतियात बरतने के लिए कह रही हैं तो गलत नहीं है. उसे बता देना था कि कोतवाली थाने के एस. एच. ओ. वशिष्ठ से बातचीत हो चुकी है."

बुजुर्ग रामरितामल ने कहा, "जनानियों को मर्दों के काम-धंधों से दूर ही रखना चाहिए. इनकी मति उलटी चलती है."

साहनी ने इस संदर्भ को छेड़े बगैर बातचीत का सार पेश किया, "मेरा खयाल है, यह ठीक रहेगा कि हम लोग लाला मेघराज की चाल का इंतजार करें. और इस बीच अग्रवाल आले में दीया जलाया करेगा और फूल-मालाएं चढ़ाया करेगा. अगर दस-बारह रोज यूं ही निकल जायें तो किसी दिन वहां हनुमानजी की मूर्ति स्थापित कर देंगे. फिर देखते हैं, लाला मेघराज हनुमानजी से कैसे लड़ता है!"

पर लाला मेघराज हनुमानजी से कहीं पहले उसके भक्तों से दो-दो हाथ करने की तैयारियों में जुटा हुआ था.

गिल ट्रांसपोर्ट कंपनी का मालिक अवतार सिंह गिल दरबार साहब मत्था टेककर दफ्तर में दाखिल हुआ तो वहां लाला मेघराज पहले से मौजूद थे.

"सत सिरिअकाल, लालाजी," गिल ने चारों तरफ लगी गुरुओं की तस्वीरों की तरफ सीस नवाते हुए, "क्या हाल है?"

"बस, सच्चे पातसाह की मेहरबानी है!" लाला मेघराज ने आदर का प्रदर्शन करते हुए कहा. वह खड़े हो गये थे.

गिल ने गद्देदार कुर्सी पर पसरते हुए कहा, "सुना है, लालाजी, खन्नों की जो जायदाद खरीदने वाले थे, उस पर किसी ने मंदिर बनवा दिया है?"

लाला मेघराज को कमर सीधी रखने के लिए कुछ फालतू ताकत लगानी पड़ी थी. पर उनका चेहरा भावहीन बना रहा, "मंदिर-वंदिर तो नहीं, किसी ने आला जरूर बनवा दिया है. किसी शरारती अनासर की करस्तानी है. उसी बाबत कुछ जरूरी मशविरा आपसे करने आया था."

गिल ने अपनी चमकती आंखें लाला के चेहरे पर टिका दीं, "लाला जी मेरी तरफ से किसी भी तरह की मदद आपको चाहिए तो बेझिझक मुझे बता देना. कप से कम मेरी तरफ से किसी गलत आदमी को शह नहीं मिलेगी."

लाला मेघराज ने राहत की सांस ली और क्षणांश में हलका-फुलका महसूस करने लगे, "सरदार साहब, मुझे आप पर सदा से ही पूरा भरोसा रहा है. कुछ गलत लोगों ने हमें ललकारा है तो इस मामले में अपने बेलियों (हितचिंतकों) से राय तो लेनी ही चाहिए."

"आपने सोचा क्या है...? क्या करेंगे अब आप?" गिल बात को सीधी लाइन पर ले आया. आधे घंटे बाद उसे किसी और से मिलने जाना था.

लाला मेघराज ने भावहीन चेहरे पर से पसीना पोंछा और मद्धम आवाज में कहा, "करना क्या है, आला ढहाना है."

गिल मुस्कराया, "कैसे ढहाओगे, लालाजी? आप तो हिंदुओं के नेता हो!"

"सरदार साहब, आप भी जानते हो, मामला हिंदुओं का नहीं, धर्म की आड़ में गुंडागर्दी और लुच्चेपन का है." लाला मेघराज कुछ आपा खो बैठे.

"मुझे तो सब मालूम है, लालाजी. मैं लोगों की बात कर रहा हूं." गिल लाला मेघराज के धर्मसंकट का मजा ले रहा था.

"वो आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं," लाला ने खुद को फौरन संभाल लिया था, "मैं सोच रहा था, आज या कल रात दस-साढ़े दस बजे इसे ढहा दिया जाये." उसने धीरे से बात सरकायी.

गिल लाला के चेहरे की तरफ देखता हुआ उंगलियों से मेज थपथपाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

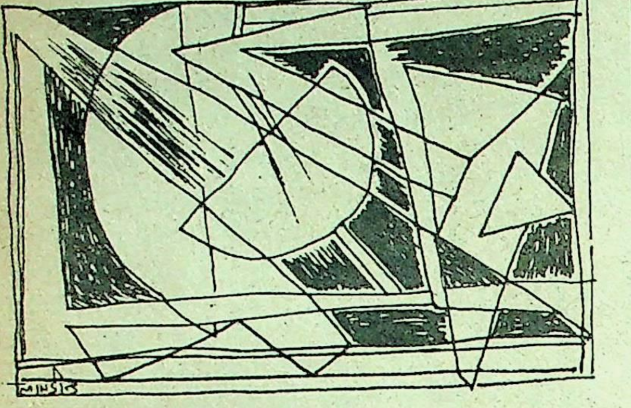

रहा, "कैसे करोगे आप?" उसने ब्यौरा मांगा.

लाला आगे झुक गया और अपनी स्कीम के बारे में बताने लगा, "पंदरह-बीस जवान ढहाने का सामान लेकर रात साढ़े दस बजे वहां पहुंच जायेंगे. आले का मसाला अभी कच्चा ही है, दो-चार मिनट में ढह जायेगा. साथ में दो-एक ठेले भी ले जायेंगे ताकि मलबा भी साथ में उठवाकर कहीं दूर फिंकवा दें. इस तरह वहां न आला बनने का सबूत बचेगा और न ढहने का. मेरा खयाल है, दस नहीं तो पंदरह मिनट में सब निबट जायेगा."

"और पुलिस आ गयी तो?"

"डी.एस.पी. अपना आदमी है. उससे पहले बात कर लेंगे." लाला ने पूरे आत्मविश्वास से कहा.

गिल को मन ही मन लाला की प्लानिंग की दाद देनी पड़ी. "इसमें, बताओ, मैं आपकी मदद किस तरह करूं?" उसने अपना रोल पूछा.

"आपसे मुझे पीले पटके वाले पांच-छह जवान चाहिए."

गिल ने लाला को एकटक देखते हुए पूछा, "बंदूकों वाले या सादे?"

"बंदूकोंवाले संभालने मुश्किल पड़ सकते हैं. सादे ही ठीक रहेंगे."

गिल ने सोचते हुए कहा, "आप तीन-चार दिन तक रुको तो वैरोंवाल का रंजीतसिंह तब तक पाकिस्तान से लौट आयेगा. उसका गैंग तगड़ा भी है और असरदार भी."

"इतने दिन रुकना नामुमकिन है. कमबख्तों ने वहां मूर्ति स्थापित कर दी तो मामला पूरी तरह हाथ से निकल जायेगी." लाला मेघराज ने सिर हिलाते हुए कहा.

"लालाजी, यह तो रहने दो. खालसे अपनी आयी पर आ गये तो..." गिल ने गर्व से कहा.

लाला ने फौरन टोका, "वो मुझे मालूम है, सरदार साहब. पर जिन्होंने शरारत की है, मैं उनकी औकात जानता हूं. बेहथियार जवान ज्यादा मुफीद रहेंगे."

गिल ने असरदार ढंग से बात को अंतिम रूप दिया, "तो ऐसा करो, लाला आपने जब भी आला ढहाने जाना हो, मुझे टेलीफोन कर दो, घंटे भर में मेरे आदमी आपके ठिकाने पहुंच जायेंगे."

लाला ने तसल्ली व्यक्त की, "मुझे मालूम था, मैं बेउम्मीद नहीं लौटूंगा". उन्होंने वहां से चलने की मुद्रा बनायी ही थी कि गिल ने इशारे के साथ उनसे बैठे रहने के लिए कहा.

"हुकम करो." लालाजी ने आशंकित स्वर में कहा.

"लालाजी, आप खन्नों की जायदाद ढहाकर नीचे मार्किट बना रहे हैं?"

ईमान

□ रंदी सत्यनारायण राव

पिछले दिनों की बात है.

मैं टाटानगर' रेलवे स्टेशन से अपनी ससुराल 'नोआमुंडी' के लिए प्रस्थान करनेवाला था, निश्चित समय पर गाड़ी तीन नंबर प्लेटफार्म पर आयी, मैं उसमें सवार हो गया तो देखा कि एक आवारा-सा दिखनेवाला लड़का, लोगों के बैठने के स्थान साफ कर, बदले में दीनता पूर्वक अपना हाथ फैला रहा था. कोई उसे दुत्कार देता, तो कोई कुछ पैसे दे देता, इसी क्रम से वह मेरे पास भी पहुंचा, गाड़ी छूटने को अभी कुछ ही मिनट शेष होंगे कि मुझे एकाएक स्मरण हो आया, कि मैंने 'रेलवे टाईम' लिया ही नहीं है.

सामान छोड़, एक नंबर प्लेटफार्म पर जा भी नहीं सकता था,

लाला मेघराज ने हामी में सिर हिलाया.

"उसमें एक दूकान मुझे चाहिए."

कुछ क्षण वहां सन्नाटा रहा.

फिर लाला ने कमजोर आवाज में कहा, "दो लाख पगड़ी है वहां इस वक्त."

"मैं आपसे मुफ्त नहीं मांग रहा. आपका जो खर्च लगता है, वो मुझसे ले लो...और चाहो तो बारह परसैंट ब्याज भी लगा लो." गिल ने कारोबारी अंदाज में कहा.

इस बार लाला मेघराज अपनी कमजोरी छिपाने की गर्ज से कुछ ऊंची आवाज में बोले, "मैं तो व्यवहार की बात कर रहा था. आप तो मेरे माई-समान हैं. आप जिस दूकान पर उंगली रख देंगे, आपकी हो जायेगी."

सहसा गिल ने आगे झुककर कहा, "देखिए लालाजी, हिंदुओंवाला मामला आप संभाल लें तो खालसों को संभालने की जिम्मेदारी हमारी रही. पिछले ५० बरसों से कौम की सेवा की है, वाहे गुरु की मेहरबानी से, कुछ तो अपनी भी इज्जत है."

लाला मेघराज के चेहरे पर पहली बार हलकी मुस्कराहट उभरी, "सरदार साहेब, आला ढहाने के मौके पर मैं आपसे दस आदमियों की उम्मीद करूं?"

"आप दस का हुकुम करेंगे तो दस पहुंच जायेंगे." गिल ने खड़े होते हुए कहा, "मैं अब बख्शीश—सिंह ढाईवाल से मिलने जा रहा हूं. कोई सियासी मदद चाहिए हो तो बताओ."

"आपके—हमारे इकमुठ रहते जरूरत है?"

"सैंटर का आदमी है. चारों तरफ सुनी जाती है उसकी."

"बात कान से निकालकर देख लीजिए. बर्स, कोई वादा न करें आप."

गिल जोर से हंस पड़ा, "लाला, क्यूं अंबरसर में जिंदगी खराब कर रहा है. तू नेशनल सियासत में जा!"

अग्रवाल अपने बिस्तर पर करवटें बदल रहा था. उसके पास गिल ट्रांसपोर्ट कंपनी के गिल का फोन आया था, जिसमें उसे साफ चेतावनी दी गयी थी कि इस बार के आले को तो हम निबट लेंगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः डूबते को तिनके का सहारा सदृश्य वह बालक दिखाई दिया. मैंने उसे तुरंत बीस रूपये का एक नोट देकर कहा, "भाई, जरा तेजी से जाकर एक रेलवे टाइम टेबल ले आओ...तुम्हें एक रुपया दूंगा..."

इतना सुनना था कि वह बालक नोट ले, तेजी से चला गया. उसके जाते ही मेरे बगल वाले यात्री ने कहा, "उस लफंगे छोकरे पर विश्वास कर आपने रुपये दे दिये...ये साले चोर होते हैं.." मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, यह श्रीमान ठीक कह रहे हैं.

गाड़ी..सीटी बजाकर धीरे-धीरे सरकने लगी तो मेरी चिंता बढ़ गयी, किंतु, यह देख खुशी का ठिकाना न रहा, जब वह बालक तेजी से मेरे पास आ नोट वापस करते हुए बोला, "बाबूजी, किताब नहीं मिला." मैंने फुर्ती से एक रुपये का सिक्का उसकी ओर बढ़ाया तो उसने इनकार करते हुए कहा, "बाबू जी, आपका काम नहीं हुआ, हम अपना काम का पैसा मांगता है फोकट का नहीं." उसकी ईमानदारी पर मुग्ध हो उसे दूर होता देखता रह गया. □

पर आगे से कोई शरारत की तो वाहेगुरु भी, शायद तेरी मदद नहीं कर सकेगा.

फोन सुनते ही अग्रवाल के हाथ-पैर फूल गये थे. आतंकवादियों के साथ गिल के रिश्तों की मशहूकी पूरे अंबरसर शहर में फैली हुई थी. अग्रवाल ने फौरन अपने हिमायतियों से सलाह-मशविरा किया था. सब दुस्साहसियों को जैसे सांप सूंघ गया. सबने बेशर्मी से अपने हाथ खींच लिये और अग्रवाल को सलाह दी कि वह भी खुद को इस झंझट से अलग रखे.

"अब सो भी जाओ." पत्नी कुलदीप ने उसका सिर अपनी तरफ मोड़ा.

"सोने देगी तो सोऊंगा." अग्रवाल की आवाज में झुंझलाहट थी.

"मेरे पर तो गुस्सा न उतार! मौके पर तो किसी की सुनता नहीं है." कुलदीप को अभी तक अपमान का दुःख साल रहा था.

अग्रवाल तमककर उठ बैठा, "हरामजादी, जबान बंद रखती है या नहीं..."

कुलदीप कुछ क्षण तक उसे आहत गर्व के साथ घूरती रही और फिर करवट बदल ली.

अग्रवाल को लगा भी कि वह ज्यादती कर रहा है, पर वह खुद अपने काबू से बाहर था. वह बिस्तर पर लेटकर बुड़बुड़ाता रहा. बुड़बुड़ाहट बंद होते ही उसके कानों में गिल की धमकी गूंजने लगती और वह बेचैन होकर फिर से बुड़बुड़ाने लगता.

तभी ठक...ठाक की तेज आवाज नीचे से आने लगी. उसका मानसिक क्लेश एक झटके से छूमंतर हो गया और वह बेहद चौकन्नी मुद्रा में उठ बैठा. पास में कुलदीप भी आतंकित मुद्रा में एकदम पड़ोस से आ रही तोड़-फाड़ की आवाजों को सुन रही थी.

पति-पत्नी ने एक-दूसरे की तरफ प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा. आतंक और भय से दोनों की आंखें फैली हुई थीं.

अग्रवाल ने मर्दानगी के सिर पर जबरदस्ती गरगराती आवाज निकाली, "शायद लोग खन्नों के चबूतरे का आला तोड़ रहे हैं!"

कुलदीप जैसे कुछ नहीं सुन रही थी, "हमें तो कोई डर नहीं." उसे सिर्फ अपने परिवार की चिंता सता रही थी.

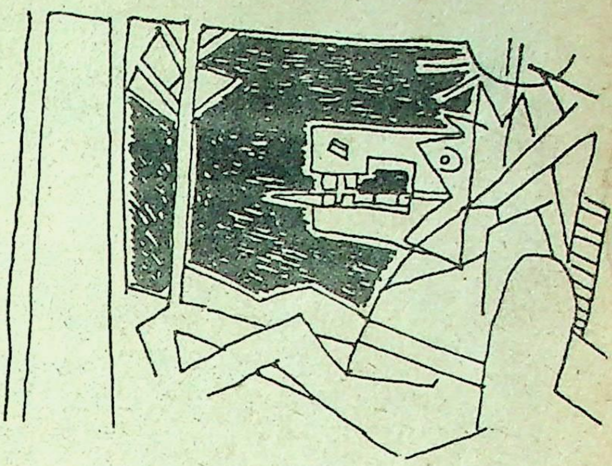

अग्रवाल कुछ क्षणों तक बहुत गौर से आवाजों को सुनता रहा. सब आवाजें एक ही जगह से आ रही थीं. वह समझ गया, खन्नों के मकान के चबूतरे पर बना आला तोड़ा जा रहा है. अपने तथा परिवार की हिफाजत के बारे में उसका तनाव कुछ कम हो गया और वह खड़ा हो गया.

"कहां जा रहे हो?" कुलदीप बौखला उठी थी.

"हमारे डरने की बात नहीं है...देखें तो आला तोड़ने कौन आया है," अग्रवाल ने उसकी हिम्मत बढ़ाते हुए कहा. अग्रवाल के साथ रहने की जिद से कुलदीप भी उसके साथ चल पड़ी थी.

दोनों ने डरते-डरते छज्जे से नीचे झांककर देखा : पंदरह-बीस आदमी मुस्तैदी के साथ टूटे हुए आले के मलबे को रेहड़े में लाद रहे थे.

लाला मेघराज के बेटे नरेंद्र ने मलवा रेहड़े पर लदवाने के बाद इधर-उधर निगाह घुमायी. छतों पर से कुछ लोग चोरी-छिपे नीचे झांक रहे थे. गली का चौकीदार भी कहीं इधर-उधर दुबका हुआ था. आला ढहाने के दौरान इक्का-दुक्का राहगीर इधर आया भी तो फौरन जैसे जान बचाने भाग खड़ा हुआ था. नरेंद्र अपने अभियान की सफलता पर गर्वित हो रहा था. उसने रोबदार आवाज में पूछा, "सारा मलबा लद गया?"

"हां जी." मजूर की आवाज आयी.

नरेंद्र ने रेहड़े वाले से फुसफुसाकर कहा, "जा, तू तो भाग! ध्यान से, यह सारा मलबा हाथी गेट के पास वाले गढ़े में फेंकना है." और कुछ नोट उसके हाथ में सरका दिये.

रेहड़े वाले ने लगाम ढीली की और वह अपने रास्ते लग गया.

नरेंद्र ने बाकी साथियों की तरफ इशारा किया और वे सब नजदीक के मोड़ पर तैयार रिक्शों में सवार हो गये. रिक्शा पर सवार होते समय नरेंद्र ने घड़ी देखी : सारा मामला छह-सात मिनट में निबट गया था.

आधे घंटे बाद लाला मेघराज को गिल का टेलीफोन आया, "लालाजी, और कोई सेवा!"

बेहद विनम्र लहजे में लाला ने कहा, "सरदारजी, भगवान की कृपा से सब ठीक-ठाक संपन्न हो गया है. अब तो मुझे आप की सेवा करनी है."

"लालाजी, भूलना नहीं!"

अगले दिन शहर भर में आतंकवादियों द्वारा मंदिर तोड़े जाने पर तनाव था. उसके अगले रोज अखबारों में घटना का जिक्र करते हुए सरकार की सख्त आलोचना की गयी थी. देखते-देखते कुछ धार्मिक संगठनों ने दिल्ली तथा पंजाब के कुछ शहरों में एक दिन के बंद का आह्वान भी दे दिया था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई दूसरा चाणक्य

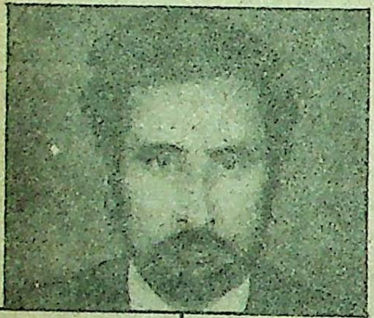

□ केवल सूद

जन्मस्थान : बरनाला, पंजाब.
प्रमुख कृतियां : 'चंद गलियां सूनी सरमाये', 'मुर्गीखाना', 'विभाजन रेखा' [उपन्यास], 'युग के नागरिक' व 'दर्पण' [कहानी संग्रह], 'कला हुआ बाबू' [नाटक].
पंजाबी व हिंदी में समान रूप से लेखन.
संपर्क : बी-१ .ए/६०ए, जनकपुरी, नयी दिल्ली-५८

रोशनी घेरों में घूमती है. कभी थम जाती है तो जो आकार उसकी ओर पीठ कर खड़ा हो जाता है, लंबी परछाई में बदल जाता है—एक ऐसा साया जिसकी ज़द में कोई दीवार या कोई भी व्यवधान आ जाये तो कभी उसकी गर्दन कट जाती है, कभी कंधे और कभी कमर. पर उसे कोई फर्क नहीं पड़ता, परछाइयां कांपती रहती हैं. मुंडेरों पर पड़े गमलों में केक्टस लगे हों या गुलाब के पौधे, उससे शामों की उदासी में कोई फर्क नहीं पड़ता. भले ही थोड़ा-सा सहारा उनसे मिल जाये पर खोये हुए रिश्तों की यादें उससे और गहरी हो जाती हैं.

नाटक की रिहर्सल में कभी 'राक्षस' स्टेज पर आता है तो 'चंद्रगुप्त' उस ओर पीठ किये बाज़ार की रौनक देखने में व्यस्त रहता है, या इस इंतजार में कि उसकी गर्ल फ्रेंड कब राक्षस के पंजे में से निकल उसके पास आती है, और वे छत के एक कोने में चले जाते हैं. फिर से अकेला पड़ जाने के खयाल से वह यानी 'चंद्रगुप्त' कैंपा-कोला का आर्डर दे देता है और आ जाने पर उसे सुड़कने लगता है. उधर मोटी औरत 'स्नेक चार्मर' बनने से खाली हो अपना वैनिटी बैग उठा फिर लौट आने के लिए अंधेरे में गुम हो जाती है. नाटक के दूसरे पात्र तरह-तरह की मुद्राएं बनाए बैठे 'बोर' होते रहते हैं. और निर्देशक बालों में उंगलियां फिराता कुछ रिहर्सल में बना रहता है और कुछ कहीं और. पंद्रह-सोलह या कुछ कम-अधिक आदमी 'राक्षस' के डायलाग में 'मडलड-अप' हुए ग्रुपों या इकाईयों में बंटे बिटर-बिटर ताकते रहते हैं. एक सारहीनता सबके ऊपर से मंडराती हुई कभी इस कोने, कभी उस कोने उड़ती रहती है.

सब रिश्ते माडर्न आर्ट के चित्रों में उतर क्यूबों, घिसे-नुकीले कोनों, बेसिर-पैर की शक्लों, गड्मड हुए घिनौने जिस्मों और ऊल-जलूल आकारों में बदल जाते हैं. नाटक का एक साधारण पात्र 'एस्केप' की बात करता रहता है और 'एस्केप' की कोई राह कहीं दिखाई नहीं देती.

आदमी बेशुमार टांगोंवाला जानवर बन गया है. उसके चेहरे पर हाथी की लंबी सूंड निकल आयी है, जो कुत्ते की दुम की तरह सदा हिलती रहती है. कहीं उसकी नाक आगे से कट गयी है और उसकी बत्तीसी सदा बाहर निकली रहती है. कुछ शक्लें बिलकुल समझ में नहीं आती हैं; पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि वे केवल रंगों के बेसुरे धब्बे मात्र हैं. औरतों के कुछ नंगे जिस्म बेजार हुए लेटे हैं; जो हो सकता है 'लेस्बियन' हों. कुछ चेहरे बुझ गये भी लग सकते हैं. कुछ नेगेटिव फिल्म की तरह या उसमें से भी खाली रह गये. पर यह तो नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने अंधेरे की कोख में से बाहर आने की कोशिश ही नहीं की. नाकाम ही सही.

पर सोचने की बात तो यह है कि नाटक की रिहर्सल में उनका स्थान कहां रखा जाये? पैकेट में से एक या अधिक सिगरेट निकाल उन्हें माचिस दिखाने से तो कुछ नहीं होगा. किस पात्र को कहां खड़े होना, उठना या बैठना होगा, इसके लिए ठीक तरह से सोचने या समझने से भी शायद कुछ न होगा.

आदमी के कंधे उसके सिर से भी ऊंचे उठ गये हैं और वहां से उगी हुई टांगें बांहों की तरह फैल गयी हैं. मेज के नीचे फैली टांगें बांहों की तरह सिकुड़ गयी हैं. आदमी या औरत को नीचे से देखो तो उसका ऊपर का 'कुछ' भी नहीं दिखाई देता. और ऊपर से देखो तो नीचे का 'कुछ'.

ऊपर टैरेस पर रिहर्सल करना तो पिकनिक हो जाता है, साहिब! जगह बदलनी होगी.

पर आप जगह बदलने की ही क्यों सोच रहे हैं, पात्र बदलने की नहीं सोच रहे!

निर्देशक महोदय! आपने यह खबर पढ़ी है—एक रिक्शा चालक सारा दिन खुद को रिक्शा के आगे झोंकता रहता है, रात को थकान उतारने के लिए डेढ़ रुपये की शराब पीता है, और सुबह उठता है तो अंधा हो चुका होता है. और शराब...और शराब अब टैंटों में बिकने लगी है.

दूसरी खबर है—एक आदमी एक बूढ़ी औरत की मुर्दा लाश को (मुर्दा लाश इसलिए क्योंकि कुछ जिंदा लाशें भी होती हैं) ग्यारह महीने बिस्तर में लिटाए उसकी पेंशन खाता रहता है, क्योंकि अकेलापन उसके लिए भारी हो रहा था, उसे काटने को दौड़ता था. और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

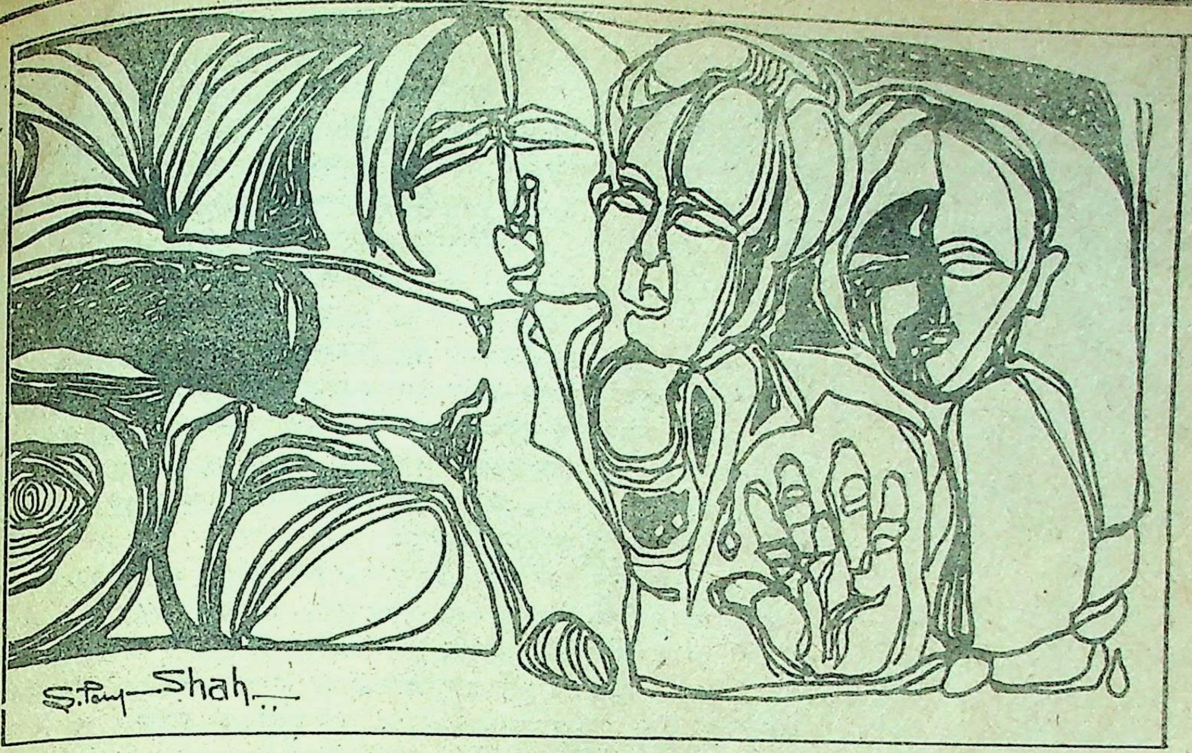

अब...साइकेयट्रिस्ट उस आदमी का एनैलेसिस करेगा...

खबरें तो बहुत हैं, पर एक और सुन लीजिए. हिंदुस्तान में कहीं चूहों का एक मंदिर है, वहां लाखों की तादाद में चूहे हैं. रोज हजारों की गिनती में उनके भोजन पर रुपया खर्च किया जाता है. उधर असैंबली में प्रश्न उठा है. कि महंगाई के कारण मंदिरों के देवताओं को बासी लड्डू खाने पड़ते हैं, और उनका तन ढकना कठिन हो गया है.

अब बताइए, क्या किया जाये. हिंदुस्तान में आदमी तो भूखे मरते ही आये थे, अब देवता भी भूखे मरने लगे हैं...

निर्देशक साहब से पूछा जा सकता है कि वे अपने नाटक में यह सब क्यों नहीं डाल लेते. या सिर्फ इतना ही करें कि कबाड़ी की दूकान का एक सीन डाल लें. सारा हिंदुस्तान नजर आ जायेगा.

पर वे कुछ बदलना चाहें तब ना! नहीं तो हस्पताल की उस बुढ़िया को भी पात्र बनाया जा सकता था, जिसके जिस्म पर गोदनों के बेशुमार निशान हैं. और जो बूढ़े पहलवान की तरह अपना लहंगा नेफे में घुसेड़, अकड़कर चलती है. उसके पास के कल के डाक्टर (लड़के भी, लड़कियां भी) आपस में छेड़-छाड़ करते हुए दिन के उजाले में भी हाथों में टार्चें लिये बरामदों में इठलाते हुए घूमते रहते हैं. पर उनकी टांगें उसकी कयामत जवानी को नहीं ढूंढ़ सकती. वे तो उसकी बूढ़ी आंखों में हंस भी सकती हैं.

यह सब नाटक में डाला जा सकता है, बाबा.

सीढ़ियां

वकील ने एक गवाह से जिरह में पूछा, ''हां, तो यह बताओ कि उस घर की सीढ़ियां कहां जाती हैं?'' गवाह की कुछ समझ में न आया और वह सिर खुजलाने लगा.

वकील ने वही प्रश्न दोहराया गवाह अब कुछ बेचैन हो बोला, ''अगर मैं ऊपर खड़ा होऊं तो सीढ़ियां ऊपर जाती हैं...''

—कमल सोगानी

पर वे मानें तब ना! नहीं तो वह पागल भी क्या बुरा है जो सड़क के किनारे चुपचाप बैठा हर वक्त लकीरें खींचता-मिटाता रहता है.

उनसे कोई पूछे भला, इन लगभग चौबीस सौ साल पुराने पात्रों में अब क्या रखा है! निर्देशक साहब, आप चाणक्य और शांति की बात करते हैं, मज़ा तो तब है अगर चाणक्य को स्टेज पर से उतार पब्लिक में ले आयें. दुनिया में आज जो कत्लो-गारत हो रही है, अब उसे कोई दूसरा चाणक्या ही रोक सकता है.

आपको मालूम ही होगा, 'पियोव्लो मैन' ने एक रोमन कैथोलिक पादरी के सामने सारी बात बता खुद को दोषी मान लिया था.

निर्देशक साहब, क्यों न सब राजनीतिक नेताओं को आत्म-स्वीकृतियां लिखने पर मजबूर कर दिया जाये. जो हिटलर के वंशज होंगे, खुद ही सामने आ जायेंगे.

यह सब संभव नहीं तो आप दिन के उजाले में टार्च हाथ में पकड़े, गलियों-बाजारों में घूमते फिरिए. शायद कुछ अधिक जोरदार चीज मिल जाये. पर अब तो शो की तारीख तय हो चुकी है. अब आप भाग नहीं सकते. आप रिहर्सल करते रहिए. रोशनी घेरों में घूमती रहे या स्थिर हो जाये, इससे क्या फर्क पड़ता है. परछाइयां लंबी भी हो सकती हैं, छोटी भी. ये डोलती हुई परछाइयां अंधे जिस्मों की नुमाइश भर हैं. जब भी कोई रुकावट इनके बीच आयेगी, ये कभी सिर से, कभी कंधों से और कभी कमर से कटती रहेंगी. और खोये हुए रिश्तों की यादें गहराती जायेंगी... □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघम् शरणम् गच्छामि

मास्टर हरचरन ने ऐसा नाटक किया कि जो सुने वही दंग... कौन सोच सकता था कि ऐसा हो जायेगा...?

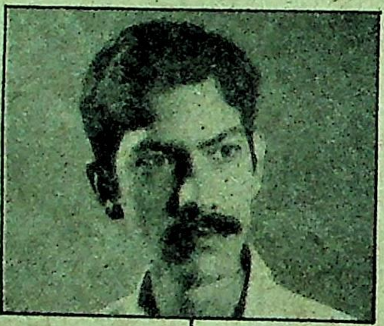

□ दानिश

युवा कवि एवं कहानीकार. नाटकों के अभिनय व निर्देशन में संलग्न. कतिपय टेली फिल्मों में भी अभिनय.
एक गजल संग्रह प्रकाशित.

कालिदास कैसे मरे. कोई नहीं जानता. मगर मास्टर हरचन ने तो ऐसा नाटक किया कि जो भी सुने वही दंग. कौन सोच सकता था कि ऐसा हो जायेगा. मास्टर की यह कला तो किसी ने न देखी थी. लोग अगर जानते कि ऐसा हो जायेगा तो मास्टर को रोकते भी और रोकते भी क्यों नहीं. मास्टर पर लोग-बाग कितनी जान देते थे. खैर, जो हुआ सो हुआ. पीछे तो मास्टर की कथा ही कही जानी है.

रोज का अमल. मास्टर के कमरे पर चार लोग जमा थे. राजा भर्तृहरि की कहानी चलने लगी. बाबा गोरखनाथ राजा का मोहभंग किस प्रकार करते हैं. राजा देख रहे हैं, रानी की सुंदर काया आंखों के आगे है. व्याकुल होकर राजा आगे बढ़ते हैं तो क्या देखते हैं कि रानी का रूप तो गायब हो रहा है. राजा के आगे रानी का हाड़ आ जाता है. राजा चिल्लाते हैं. इसी समय फैक्ट्री का सायरन मास्टर के कानों में जाने क्या बोल गया. मास्टर कहने लगे, "फैक्ट्री से कामगार बाहर आते होंगे जैसे शरीर से आत्मा निकलती है. मरते हुए आदमी का रोना कभी सुना है! देखो बिल्कुल ऐसे."

मास्टर के मुंह से सायरन की तरह का रोना सुनायी पड़ा और देह कांपकर धरती पर आ गिरी. लोगों ने समझा यह नाटक कर रहा है, खुद ही उठ जायेगा. मगर जब देरी हुई तो लोगों को शंका हुई. अब तो छूकर देखा तो कारखाना खाली था. फैक्ट्री से सारे मजदूर निकल चुके थे. सब हक्का बक्का हैं. मास्टर ने किस समय पर्दा गिरा दिया.

'मास्टर गुजर गये', जिसने खबर सुनी सीधा दौड़ा आया. और हड़बड़ काकी ने फिर घुटना तुड़ा लिया. अब जो भी आता है मास्टर का दर्शन कर बाहर जम जाता है.

"अरे, यह कैसे हुआ?"

"पहले सुना तो विश्वास ही नहीं हुआ. उसके पास मरने की फुर्सत ही नहीं थी."

"यह तो अजब धोखा हुआ. अल्ला मियां भी आसमान धुलने भेजते होंगे. उसके पास करने की फुर्सत ही कहां थी. मास्टर का तंबू तो..."

"सदा तना रहा था. अचानक उखड़ गया."

"देख लेना. एक दिन न, इसी तरह कयामत आ जायेगी."

"सबको खबर हो गयी क्या?"

"इत्तला के वास्ते रिक्शा भेजा गया है."

"रिक्शे पर लाउड स्पीकर भी लगवा देते."

"अजब आदमी हो यार! वही भेजा गया है. कहो तो बुरा मान जाओगे. वही किस्सा हुआ कि हुज्जते बंगाल और कुक्कुर झौंझों वाला..."

"मास्टर की मशहूरी सारे शहर में है. सबको खबर हो जानी चाहिये."

"इंतजाम बात में कोई कसर नहीं है."

"मास्टर के वास्ते सभी लोग एक पैर से खड़े हैं."

"अरे भाई वो कहते हैं...न, आदमी का काम आदमी से आ...धिक बड़ा होता है."

"कहां पढ़ा था मा....ई?"

"देखो मजाक मत करो. यह मजाकबाजी का मौका नहीं. न हो तो मास्टर से जाकर पूछ लो."

"नहीं पढ़ने का क्या! आंखों के आगे है. आदमी मर जाता है मगर ताजमहल अभी तक खड़ा है कि नहीं."

"मास्टर बड़ा आदमी था."

"बिलकुल देवता आदमी. बिलकुल गऊ."

"और जब भाषण देता तो गजब कर देता. किसी को छोड़ा उसने?"

"बड़ी खूबियां थीं मरने वाले में. जिला अधिकारी हो तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तहसीलदार सबसे बेखौफ बात कहने में माहिर था, कागज लिखाई में तो उसका सानी नहीं. नगर पालिका वाले बाबू भी हड़कें. मुंशी पेशकार की गिनती किस चीज में. मास्टर ने कितनों को मास्टर बना दिया.''

''नगर पालिका वाली बात पर एक बात आती है मेरे मन में. क्यों न इस सड़क का नाम 'मास्टर हरचन रोड' रखवाया जाये.

''भाई वाह, बात तो लाख टके की कही. भाई सोलहों आने सच मगर एक शंका मन में आती है. नेताजी भड़केंगे.''

''यह तो कोई बात नहीं.''

''लेकिन यही बात है. देखा नहीं हिंदी के कितने बड़े आदमी की प्रतिमा हटा कर नेताजी ने अपने भाई की प्रतिमा लगवायी थी!''

''खैर इसे छोड़िये, मास्टर ने लोगों की कम सेवा नहीं की. अब लोगों के मन से उसे कौन हटा पायेगा?''

''मास्टर के काम का कोई हिसाब नहीं. वैसे भी इस समय इसका लेखा जोखा चित्रगुप्त बाबा के आगे दखलबाजी है.''

''हाय उसके नाटक से मन नहीं अघाता था. किस्सा गुलबकावली हो या दास्ताने हाकिम हो. लोगों से जोड़कर ऐसी चुटकी लेता कि सुनने वाले की तबियत फड़क उठे.''

अजब मुसीबत है. मास्टर की याद में दो मिनट का मौन भी रखना संभव नहीं. सोच रहा था कि सब जन आ जाते तो अर्थी उठायी जाती. नहीं तो घड़ा फोड़ कर भाई के चौरे पर सड़क सभा करना भी उचित नहीं लगता है. लोग बैठे-बैठे आसमान भी क्या देखेंगे. दूर-दूर तक बादल छाये हैं किसी तरफ कोई नखत भी नहीं दीखता. ओस भी नहीं गिरती. थोड़ी देर चुप रहता तो यह मौन कुछ शक्ति तो जुटाता ही. मगर कोई बोल पड़ा. मास्टर के बारे में कौन नहीं जानता. मैं कहूं तो लोग जुबान पकड़ने दौड़ें. नहीं तो मास्टर के बारे में मुझसे ज्यादा कौन बता सकता है.

परसों नरसों की बात,मास्टर ने झाड़ू अभियान चला रखा था. साथ-साथ थोड़ी बातचीत भी जारी थी. कपड़ा हड़ताल टूट रही है. इस पर

लोगों में मास्टर की कितनी कदर बाकी है यह तो उनकी बातचीत से ही पता चलता है. अब कोई बुक्का फाड़ कर रोने से तो रहा. सब कोई हड़बड़ काकी तो है नहीं कि आधी रात बीत गयी. तब से लगातार बैन किये जाती है. हड़बड़ाकर रोने से सारा दुख बरसाती नाले-सा बाहर निकल जाता है. लोग अपना दुख अपने भीतर बचाये हुए हैं.

इतने लोग जमा हैं जो जाहिर है दुखी हैं. लेकिन उस तरह नहीं. जिस तरह से मरनी पर आदमी का चेहरा कुछ लटक-पटक जाता है. शायद इसका कारण यह भी हो सकता है कि लोगों के वास्ते यह यकीनी बात नहीं. वैसे भी लोगों को इसकी आदत नहीं. मास्टर कोई रोज-रोज थोड़े मरते थे. आज मरे हैं बस. यूं तो हरचन मास्टर कभी मंच पर नहीं गया पर उसके नाटक से कोई अपरिचित नहीं. यह भी हो सकता है कि लोग सोच रहे हों कि वह अभी उठकर बाहर आ जायेगा और कोई नया तमाशा शुरू कर देगा. तो भाइयों, मुझे माफ करो. शंका और मौत का कोई इलाज नहीं. धनवंतरी वैद हों या हकीम लुकमान दोनों की पिटारी में इसकी दवा का जिक्र नहीं मिलता है. हां एक बात है कि जहां दवा काम नहीं करती वहां दुआ काम करती है: सब मिल कर दुआ करो शायद बात बन जाये संघ में ही शक्ति है. सब मिलकर गाइये. संघम् शरणम् गच्छामि संघम शरणम् गच्छामि संघम् शरणम् गच्छामि. तब तक मैं दो मिनट का मौन भी रख लेता हूं.

माधव ने कहा, ''भाई मजदूरों का कोई ठिकाना नहीं कब ये साथ छोड़ दें कुछ पता नहीं चल्ता इनके साथ काम करना बिन पानी मरना है.''

''बस्ती में कितना कचरा फैला रहता है. चार आदमी भी अगर अंदर आ जाते हैं तो पूरा कमरा कबाड़खाना नजर आता है. देखो अब कितना साफ सुथरा लग रहा है.'' मास्टर ने झाड़ू कोने में डाल दी और हाथ पैर धोकर चौकी पर आ गये, ''माधवजी तुम पूरे मिट्टी के माधो हो. जानो यह काम तीसरे का बिलकुल नहीं. तीसरा आदमी तो मारा ही जाता है. गेहूं की पिसायी में घुन भी पीसा गया तो किसका कसूर है. तीसरे आदमी का तो यही हाल होता है. नहीं और कुछ नहीं. मैं अपना किस्सा ही आगे रखता हूं. मास्टर हरचन ने दुनिया जहान की बहुत किस्सागोई की. अब उनके किस्से की बारी भी आ गयी. लेकिन जरा ठहर कर. पहले कुछ चना चबैना भी हो जाना चाहिये. असल चीज तो यही है. पेट नहीं चलता तो पैर भी नहीं चलते. आंखों की जोत भी धुआंयी हो जाती है. सो पहले पेट सूजा तो बिलकुल जरूरी है. देखिये, गणपति महाराज को भी भोग की जरूरत है सो भी पहले नंबर पर और थाली में एक भी लड्डू कम नहीं... न हो तो कलेंडर में जाकर देख लो. बात तोला माशा राई-रत्ती सही निकलेगी. रुकिये जरा मैं परसादी ले आता हूं. गुड़ चना चलेगा भाई?'' मास्टरजी उठकर सब जुटाने में जुट गये. पानी का लोटा स्टूल पर बिठा दिया और गुड़ चना लेकर चौकी पर आ जमे, ''हां तो संतों सुनो, मास्टर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरचन की आपबीती की ओर जरा ध्यान दो कि इसमें कुछ बात है. चक्की के पाट की, गेहूं की जात की, घुन की औकात की. तो हम कहां पर बैठे हैं? हम यहां पर बैठे हैं. यानी आप इसे घर भी कह सकते हैं लेकिन यह तो सोचें घर किसको कहते हैं. घर का मतलब है पनाह. मतलब जहां आकर आदमी सुरक्षा महसूस करे. आदमी की जिंदगी बड़ी चीज होती है सो उसको पीसना या पिस जाने देना बहुत बड़ा जुर्म है, जो इसे समझ गया, अपना घर कुछ ऐसी जगह बनाता है कि पिसने-पिसाने से अकसर बच जाता है. हालांकि पाटन चाहे तो दौड़कर पीस दे. मगर यह किस्सा और है. अब यह अखबारों का कहना भी गलत नहीं कितने लोग हैं जो कि नाहक मारे गये. इसको क्या कहियेगा! आ गये पाटन के बीच. बिजली का गिरना और आफत का टूटना किस जगह नहीं होता! भिक्षा तो बहुत है पर कौन-सा ऐसा घर है जहां कोई नहीं मरा? तो भी आदमी अपने घर में ही रहता है. घर छोड़कर कोई कहां भाग सकता है. इसलिए जरूरी है कि घर कहां बनाया जाय, किनके बीच रहा जाय पहले ही सोच लें. यानी अब बात सीधे पटरी पर आ गयी...कि मास्टर हरचन ने अपना घर क्यों बदला! इस कूचा बदल के पीछे क्या भेद था?

मास्टर हरचन का असल नाम है. हरिश्चंद्र. मतदाता सूची और राशन कार्ड की गवाही को छोड़ दें तो कुछ ऐसी जगहें हैं जहां कोई सूचना सही-सही मिलती है. वर्ना राजकाज में कैसी गड़बड़ियां हैं सबको मालूम है कि स्कूलों के मास्टर, कायदे कानूनों के कितने पाबंद होते हैं सो उनका नाम वहां ठीक-ठाक दर्ज हो गया. दसवें दर्जे की सनद इसकी गवाह है. परीक्षार्थी हरिश्चंद्र पुत्र श्री के बाद दीमकों का राज्य...तीसरा श्रेणी फिर अंग्रेजी मास की पंद्रह अगस्त फिर दीमकों की कारीगरी साफ नजर आती है. वैसे हरिश्चंद्र ने बी. ए. भी किया और एम.ए. भी पास किया, और अपने नाम को सार्थक करते हुए—

'अव्वल आया दोयम आया देखो सकल समाज.

तीसरा दर्जा पारन जायें हरिश्चंद्र महराज...' का नारा दिया. और शिक्षा जगत को तिलांजलि दे दी. इस नारे से दुखी होकर दुनिया के तमाम

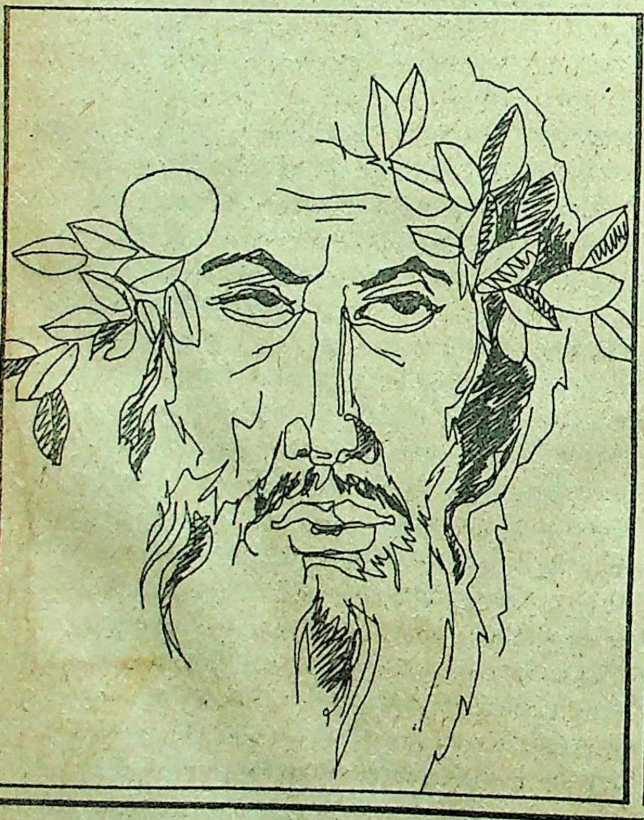

विश्वविद्यालयों ने भी उनके शोधकार्य की आशा भी छोड़ दी और तो और ठीक इसी समय उनकी उम्र के घंटाघर ने तीसवें वर्ष का घंटा बजा दिया तो सरकारी सेवा की भी कोई राह नहीं थी. निजी सेवाओं में सौ सवा सौ से ज्यादा कुछ मिलने वाला नहीं यह सोचकर हरिश्चंद्र ने जिंदगी की गाड़ी को ट्यूशन की पटरी पर दौड़ाना तय किया. हां उनके मन में यह शिकायत हमेशा बनी रही कि सरकार अगर 'बायें से चलिये', 'परिवार नियोजन ही सुख का आधार है' आदि सूचनायें देती है तो स्कूली लड़कों को क्यों नहीं बताती कि अठठाइस बरस से पहले रोजगार प्राप्त करो. नहीं तो तुम्हरी बरसी मना दी जायेगी.

खैर, यह तो हुआ कि वे ट्यूशन पढ़ाने लगे. तृतीय श्रेणी का इतना लाभ कम न था कि उन्हें पता चल गया था फेल कैसे होते हैं और किस तरीके से नंबर कम आते हैं. सो उनके छात्रों ने गांधी डिवीजन से पहलू बचाना भी आसानी से सीख लिया. कइयों ने मेहनत से 'एक डंडा' भी पाया और उनकी शोहरत में डंडा लगाया. आदमी की शोहरत उसे ऊंचा उठाती है तो बड़े तबके से भी मिला देती है. सो हरिश्चंद्रजी भी ऊंचे जाने लगे. धनी-मानी जन कहते— हरिश्चंद्र जी देखिये, मेरी लड़की का गणित कितना कमजोर है! मेरे लड़के की अंग्रेजी वीक है आदि-आदि. अब धंधा क्या चाहे, हरिश्चंद्र जी कहते, ''आपका बच्चा अब मेरा भी बच्चा है. आप चिंता छोड़िये.'' और बाकी बतें तो छोटी-मोटी बातें थीं खुद हो ही जाती थीं. इन छोटी बातों में हरिश्चंद्रजी के पास मोपेड भी आ गयी. बालों के गिरने और सफेदी की गति में भी काफी अंतर आ गया. और तो और उनकी चाय का लेबल भी हरा हो गया. शुरू शुरू में उनको काफी ही अच्छी लगती. मगर बड़े लोगों की देखा देखी वे भी काफी की जगह चाय ही मंगाने लगे. इस तरह जो हरिश्चंद्रजी का कायाकल्प हुआ तो उनकी उम्र जो बत्तीसही जगह बयालिस नजर आती थी ली, हरजाई औरत-सी वापस घर आ गयी. अब उनकी दिलचस्पी अपने हमउम्रों का साथ खोजने लगी. उधर के जवानों में उनकी जमने लगी. फैशन और फिल्मों की चर्चा चलनें लगी.

''हरी भाई आपकी नायिका कौन है?''

''मैं तो भाई पाटिल को ही पसंद करता हूं.''

''मुझे तो शबानाजी ही अच्छी लगती हैं.''

''हां उस पर गहरे और शोख रंग भाते हैं.''

''वह ज्यादा सोबर है.''

हरिश्चंद्रजी को जब वे हरी भाई कहते तो उनका मन अंदर ही अंदर खिल जाता था. चमन लाल से उनकी ज्यादा ही पटती थी. वे उसके साथ बहुत अंतरंग हो गये.

''हरी भाई आज इतना थक गया कि क्या कहूं.नौ बजे सो कर उठा तो नावेल उठा लिया. अच्छा आपके कभी एनानिनस नहीं पढ़ी. ओह आप अच्छा मजाक कर लेते हैं. रियली यू आर ए किड. मतलब आप बौड़म मार्का व्यक्ति हैं.''

इस तरह की बातें हरिश्चंद्रजी को पता नहीं कैसी कैसी लगती थीं. वे तो बस गर्दन ही हिलाकर रह जाते थे. किसी दिन चमनलाल लाड़ में आकर कहते, ''देखिये न आज फिर ड्राइवर छुट्टी पर था, खुद ही गाड़ी चलाकर बाजार जाना पड़ा. ओह माई गॉड कितनी भीड़-भाड़ थी! ये लोग कितना शोर करते हैं. इतनी जोर से हार्न बजाया पर कोई सुने तब न. यहां के लोग कितने गंवार हैं.''चमनलाल कहता तो पता नहीं क्यों उसकी आंखें एक बारगी हरी भाई पर रुकतीं. यहां गौर कीजिये, ऐसा क्यों होता था! यही तो वो बातें हैं जो यह बताती हैं कि आदमी को अपना घर यहां बनाना चाहिए! खैर, तो आगे सुनिये....

जी हां, बहुत ही उजड्ड लोग रहते हैं. चोर और उचक्के तो गली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गली फिरते हैं अभी कल ही तो...इतना कहते-कहते हरी भाई का मन होता कोई गाली बक दें मगर क्या करें शिष्टाचार एक चीज है सो जब्त किये जाते थे. वैसे उनको खुश करने के लिए केवल हुंकारी ही काफी हो जाती थी. अजब बात है भाई, खाना नहीं होता तो भूख बहुत लगती है और जब हाजिर है तो इच्छा नहीं होती. इन लोगों के कुत्ते पूंछ भर हिला दें तो खुशी का ठिकाना नहीं. धीमे से मुस्का दें.

ज्यादा नहीं हंसते कि लड्डू बांटने लगें. यह सब तो अपने ही बूते की बात है. शायद डरते होंगे ज्यादा खुश हो गये तो धड़कन रुक जायेगी फिर इतना सारा सब कौन उठा ले जाये. और वसीयत भी खूब करते हैं. और तो और दुखी होना भी मुश्किल है. इसका तो दावा है सज्जनो, एक बार ऐसे ही जन के घर पर एक मरनी हो गयी तो हरिश्चंद्रजी ने अपनी आंखें सुजा डालीं. तब उनके दोस्त ने झुककर धीरे से कह दिया, "अधिक नहीं रोना चाहिए. जुकाम हो जाता है."

"अच्छा अब मैं चलता हूं. आज हड़ताल है. कर्फ्यू लग जाने का पूरा अंदेशा है. देखिये मजदूर लोग कितने बदमाश हैं!" हरी भाई ने कहा और चुपके से चल दिये. वास्तव में उनके पास काला सूट नहीं था.

एक बार चमनलाल का ड्राइवर घर पर आया तो गाड़ी का भोंपू सुनकर हरी भाई ने अपना दरवाजा खोल दिया. उस दिन उन्हें काफी बुखार था. बारिश हो रही थी. मगर दोस्ती भी कोई ऐसी वैसी चीज नहीं. अपनी ऐसी-तैसी करके गाड़ी में बैठ गये. दोस्त बीमार था.

इस दोस्त की शादी पर नून तेल लकड़ी से दुल्हन के कपड़ों तक कौन-सा प्रबंध बाकी रह गया था जो हरी भाई ने नहीं किया. इसी बीच हरी भाई को पता चला. शादी के बाद कुछ खास मित्रों का सम्मान किया जाना है. जिसका प्रबंध भी हरी भाई के हाथों होना है. मगर शादी के बाद जब दोस्तों को पूछा गया तो दोस्तों की सूची में उनका नाम नहीं था. हरी भाई को धन्यवाद भर देने की सुध किसी को नहीं थी. इसका दुख तो हरि भाई को काफी हुआ मगर उन्होंने शादी पर केवल मेहनत की थी. देते क्या कीमत के लिहाज से शर्म उठानी होगी इतना सब सोचकर वे भारी हो गये थे. लेकिन यह दोस्ती से बड़ी चीज नहीं थी. भूल भी तो सकते हैं. आंखों के आगे की ओट बड़ी होती है. सभी भूल जाते हैं. एक बात और भी, कि शादी के मौके पर दोस्त की बहन जो किसी महानगर में ब्याही थी, मायके आ गयी थी. हरी भाई उसके साथ मेवा लाने लगे. उस दिन उसने नाभिदर्शन साड़ी और गहरे गले का ब्लाउज पहन रखा था और मोटर गाड़ी में हरी भाई से कितना लगी-लगी बैठी थी. मेवा बाजार में मोलतोल करते हुए वह मेवा उठा कर खाती भी जाती और हरी भाई को खिलाती भी जाती थी. तभी एक घटना हुई. उधर बाजार में एक पागल बैठा था. पागलों का क्या! कब क्या गाने लगें! अचानक गाने लगा, "चल चमेली बाग में मेवा खिलाऊंगा," इस पर दूकानदार और उसका नौकर कुछ इस तरह हंसने लगे कि हरी भाई सिगरेट पीने के बहाने वहां से हट गये. उनको बुरा लगा आखिर वह लड़की दोस्त की बहन ही थी. शादी के बाद जब उन्हें यह पता चला कि लड़की उन्हें पिछड़ा और गंवार आदमी कहती है तो उन्हें अपनी शराफत पर खेद हुआ. मगर बाद में अपने दिल को समझा लिया. हां, तो बात यह थी कि दोस्त बीमार था. दोस्त की बीमारी ने हरी भाई को काफी चिंतित कर दिया था. डाक्टर ने फौरन अपरेशन की राय दी, मामला गंभीर था. दोस्त का खून भी अजब ढंग वाला था. कितने ही लोगों से मिलाकर देखा गया. मगर उसका मिजाज किसी से भी मिलता नजर नहीं आता था. सो हरी भाई ने भी बाहें कर दीं. और अजब बात थी कि वह खून, बिलकुल वही खून दोस्त की रगों में जाकर बैठा था जो उनकी रगों में बसेरा किये हुए था. उन्हें फिल्म देखने के लिए जाना था इसलिए चले गये. हरी भाई ने पूरे ढाई बोतल खून दे

गो भोजनम् कथा

बलराम अग्रवाल

"याद आया." गऊशाला से भी निराश निकलते इंदर ने पत्नी को बताया, "अपना बशीर था न...वही...जो हाल के दंगों में मारा गया. शायद उसकी गाय गर्भिणी है."

"छि: !"

"कमाल करती हो!" इंदर तमतमा गया, "बशीर के खूंटे पर बंधकर गाय...गाय नहीं रही...बकरा हो गयी? याद है...दंगाइयों के हाथों उस गाय को हलाक होने से बचाने के चक्कर में ही जान गयी उस बेचारे की."

"..." चुप्पी.

"दो-चार, दस-पांच दिन का समय बीच में दिया होता तो कहीं और भी तलाश कर सकते थे हम." उसकी उपेक्षापूर्ण चुप्पी से क्षुब्ध होकर वह पुन: बोला, "शुभ मुहूर्त है...आज ही से शुरू करना होगा. पड़ गयी साले ज्योतिषी के चक्कर में."

चुप रही माधुरी. क्या कहती. संतान प्राप्ति जैसे भावुक मामले में बेजान पत्थर और अव्वल अहमक तक को पीर-औलिया मानकर पूजने लगते हैं लोग. यह तो गाय थी-सजीव और साक्षात्. बशीर की ही सही. घर पहुंचकर उसने हाथ-मुंह धोये. लबालब तीन अंजुरी भर गेहूं का आटा एक बरतन में उल्टा, तोड़कर गुड़ का एक टुकड़ा उसमें डाला और साड़ी के पल्लू से उसे ढंपकर चल पड़ी बशीर के घर की ओर.

गाय बाहर ही बंधी थी लेकिन गर्भिणी होना तय करने से पहले उसको कुछ देना माधुरी को ज्योतिषी की सलाह के अनुरूप नहीं लगा. सो सांकल खटखटा दी. सूनी आंखों और रूखे चेहरेवाली बशीर की विधवा ने दरवाजा खोला. देखती रह गयी माधुरी—यह थी ही ऐसी दुबली या...इंदर तो एक बार यह भी बताते थे कि बशीर का बच्चा इसके पेट में है.

"क्या हुक्म है?"

"मैं...माधुरी हूं...इंदर की पत्नी." कभी गाय को तो कभी बशीर की बीबी के पेट को परखती माधुरी जैसे तंद्रा से जाग उठी, "आटा लायी हूं...ज्यादा तो नहीं, फिर भी—अपनी हैसियत भर...तुम्हारे लिए जो भी बन पड़ेगा—हम करेंगे बहन." बरतन के ऊपर से पल्लू हटाकर उसकी ओर बढ़ाते हुए उसने कहा, "संकोच न करो... रख लो...बच्चे की खातिर."

बशीर की विधवा ने चूनर को अपने पेट पर सरका लिया और फफककर चौखट के सहारे सरकती हुई धीरे-धीरे वहीं बैठ गयी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया. खून दे कर उन्होंने ऐसा महसूस किया जैसे वे उस कुल के दीपक के रक्षक हों या ऐसा ही विचार उनके सीने में था जो उनके चेहरे पर लप्प-लप्प करता था. हो सकता है यह कोई शहीदाना रंग रहा हो. भाई मन की बात का तो एक्सरे नहीं मिलता. स्वस्थ होने पर दोस्त ने उनसे कहा, "तुमने बेकार ही अपना खून दिया. दो ढाई बोतल तो ऐसे ही मिल जाता है. नब्बे रुपये बोतल था." दोस्त उनकी सेहत को लेकर काफी चिंतित था, "तुम भी कितने बुखार में चले आये. तुम को कोई गंभीर बीमारी तो नहीं...अब तो दोस्ती के बीच के जान से प्यारे थे. और कैसे प्यारे थे, इसे समझना होगा. दोस्त प्यार से कहते, "हरी भाई आप बंबई जरूर जाइये. देखिये, जब आप खून दे रहे थे तो बिलकुल हीरो नजर आते थे. शायद आप की किस्मत उस तरह चमक जाये." यह एक हल्का फुल्का मजाक था. जिसे हरी भाई भी इसी तरह लेते थे. एक बात जरूर थी कि अपनी तरफ से हरी भाई कभी मजाक नहीं करते थे.

एक दिन जब बाहर से नयी फिल्म आयी तो फ्रायड डे हरी भाई को भी बुलाया गया. हरी भाई फ्राएड का फलसफा पढ़ने लगे. किसी ने कहा, "मुझे ऐसा लगता है कि मेरे भीतर भी कोई हीन भाव है." छूटते ही हरी भाई ने कहा, "हर आदमी के भीतर कुछ ऐसी बात होती है अब यहीं देखिये कि मुझे पूरा यकीन है, आप मेरे मजाक का बुरा नहीं मानेंगे. लेकिन क्या बात है कि अपनी तरफ से मैं मजाक नहीं कर पाता. जिस पर वे सब अजीब ढंग से हंसने लगे और हरी भाई का फिल्मी किस्सा चल पड़ा..."हरी भाई आप बंबई नहीं जाते तो यहां पर ही कोई गरमागरम फिल्म हो जाये. आपकी तरफ तो हीरोइनें भी कितनी आसानी से मिल जाती है." तब तक वे लोग घर से बाहर चले गये. जिनके कारण फिल्म शो पर रोक थी. और हाय हुई शुरू हो गयी.

यानी इस तरह से हरिश्चंद्रजी के दिन कटने लगे. अपने मोहल्ले में अब वे कम रहते थे. लोगों से बोलचाल और आना-जाना भी कम हो गया. दूर से ही लोग उन्हें नमस्कार कर लेते. शादी-वादी की नहीं सो औरतों के बीच भी उनके घर-बार की कोई बात नहीं थी. हां, यह जरूर था कि रसोई और सफाई के वास्ते मास्टर हरिश्चंद्र ने एक महरी रख ली थी. तीस रुपये मासिक और खाने-कपड़े पर वह घर पर ही रहती. जैसे बोनस का मौका आ गया तो वे उसे बोनस भी देते थे. जैसे किसी दिन फ्रायड डे मनाकर आये तो सिर फटने लगता था.

उनका मिलना-जुलना अब अगर किसी से था तो वह लाल जनरल मर्चेंट वाले थे. अपना सामान वे वहीं से लेते थे.

कारण

□ कमल सौगानी

"मम्मी! मैं पांच दिन तक दफ्तर के काम से बाहर था वापिस लौटने से पहले तार द्वारा आने की सूचना दी, लेकिन जब घर पहुंचा तो उसे एक अनजान व्यक्ति की बाहों में पाया. तुम भी स्त्री हो मम्मी, तुम बता सकती हो कि ऐसा क्यों हुआ?"

उसकी मां ने थोड़ी देर तक बेटे की बात पर गौर किया फिर गंभीरता से बोली, "संभव है, उसे तुम्हारा तार न मिला हो..." □

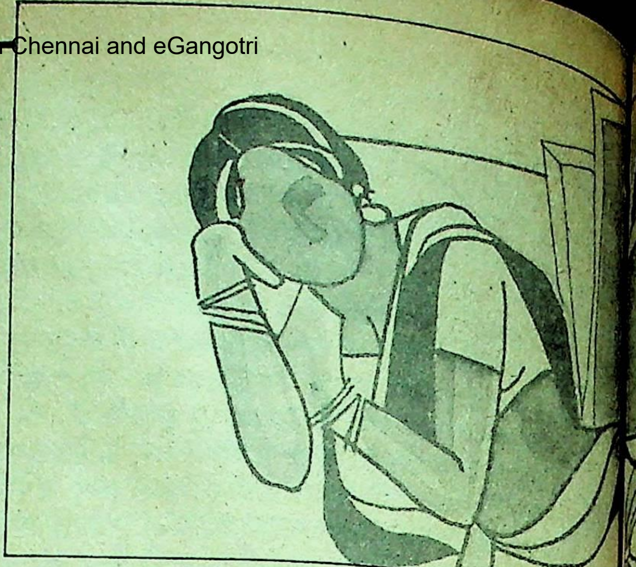

एक दिन जब उनकी हरा लेबल चाय खत्म हो गयी तो उठ कि लालजी से भी मिल आयें. दरवाजे पर पहुंचे तो सामने से गुजरता हुआ मजदूरों का जुलूस दिखायी दिया. हरिश्चंद्रजी का तो खून ही खौल गया. "गंदे; मजदूर, देखो कैसा हंसते हैं. इनके शरीर से कैसी बास आती है. गुस्से में वे उनके नारे पढ़ने लगे. पोस्टर पढ़ने लगे, 'मई दिवस अमर रहे, दुनिया के मजदूरों एक हो, महंगाई रोको...अच्छा तो केवल इन्हीं की महंगाई है. और जो टूथपेस्ट महंगा हो गया, सेंट महंगी हो गयी, पेट्रोल महंगा हो गया तो हमें कोई परेशानी नहीं है. हम तो हड़ताल नहीं करते. हम शरीफ लोग हैं इसलिए कायदे से रहते हैं. दफा एक सौ चव्वालिस लगी हुई है और ये कानून तोड़ रहे हैं. अब तो बाहर निकलना भी मुश्किल है.

जुलूस चला गया तो बाजार की तरफ निकले. लाला ने उन्हें सीढ़ियां चढ़ते देखा तो कहा, "नमस्ते हरिश्चंद्रजी." मगर हरिश्चंद्रजी तो मजदूरों पर लाठी चार्ज करवा रहे थे. उनके मुंह से निकला, "मारो.." फिर जैसे सोते से जगे और लाला से बोले, "क्षमा कीजिये लालाजी, देखिये इन लोगों ने अंधेर मचा रखा है. देश क़ी तरक्की तो इसीलिए रुकी है. ये बदमाश आगे बढ़ने को राजी नहीं. अब जरा देखिये, देश क्या हम लोगों के आगे बढ़ने भर से आगे बढ़ जायेगा. कितने गंदे रहते हैं. पेस्ट तक नहीं करते. आखिर ये लोग चाहते क्या हैं. बाहर के लोग आते हैं तो इनकी तस्वीरें ले जाते हैं. कितनी बेइज्जती होती है. इन सब को तो देश से निकाल ही देना चाहिए." मास्टर हरिश्चंद्र झोंक में बकते गये. और यह भूल गये उनको लेना क्या था.

उधर जुलूस थाने पर अड़ा था. थानेदार ने सोचा दफा एक सौ चव्वालिस के बाद भी ये 'मई दिवस' मनायेंगे. जुलूस निकल गया तो पुलिस की जो नाक कटेगी सो कटेगी, विभाग में उनकी भी इज्जत भी क्या होगी! थानेदार ने जुलूस को थाने पर रोक दिया. मजदूरों में इस पर काफी हड़कंप मची. नारेबाजी से मामला पत्थरबाजी तक पहुंच गया. लाला ने दुकान अंदर से बंद कर ली तो मास्टर हरिश्चंद्र बाहर खड़े रह गये. उनका झोला झक्कड़ तो अंदर ही रह गया. रुकें या चले जायें इसी उधेड़बुन में थे कि पुलिस ने उनका कालर भी धर लिया. खींच-खांच कर उनको थाने लाया गया. थाने में कितने ही लोग गिरफ्तार थे. जो बात-बेबात नारे लगाने लगते. वर्दी और नारों के बीच हरिश्चंद्रजी के प्राण सूखने लगे. उनहें लगा अब वे जीवित नहीं बचेंगे. नारों से थानेदार और ज्यादा चिढ़ा तो पिटायी का एक दौर थाने में चल पड़ा. बड़ी मारा मारी हुई, हरिश्चंद्रजी को भी आठ दस डंडे पड़े. जिस पर वे बुक्का फाड़ कर रोने लगे और उनकी नलकी भी जोरों से खुल गयी. मजदूरों के लिए यह मुक्त का तमाशा था या युद्ध विराम का प्रतीक. हंगामा रुक गया. लोग-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

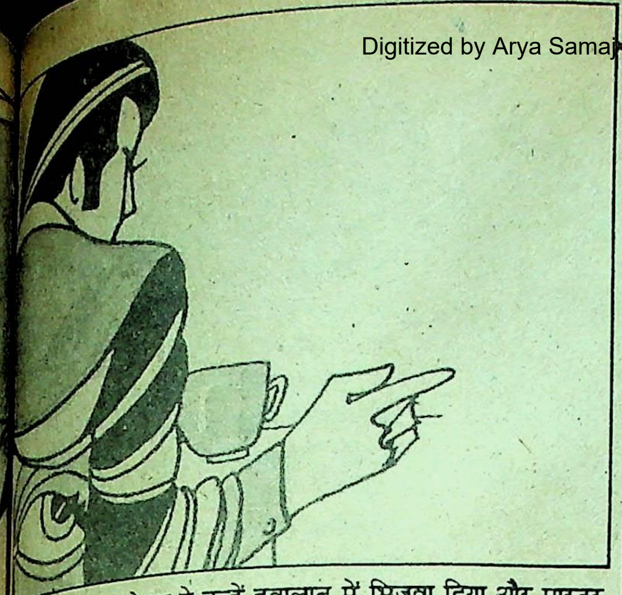

[illegible] हंसने लगे. थानेदार ने उन्हें हवालात में भिजवा दिया और मास्टर हरिश्चंद्र पर बुरी तरह गुर्राया, ''बदमाश, सब गंदा कर दिया...देखिये, यह मजदूर लोग बदमाश है.''

''मैं मजदूर नहीं हूं. मैंने हड़ताल नहीं की है जी देखिये. ''हरिश्चंद्रजी बुरी तरह बौखला गये.'' हम तो चाय की पत्ती लेने आये थे.''

''अच्छा तो तू चाय पियेगा रे हराम खोर.'' दरोगा ने सिपाही को कोई संकेत किया, ''चाय पिला साले को.''

''नहीं, मैं रेड लेबल चाय नहीं पीता. मैं तो हरी लेबल जी...हरी लेबल चाय पीता हूं.आप देखिये मत मंगवाइये जी...'' मास्टर ने थोड़ा संयत होने की कोशिश की. जिस पर दीवान और थानेदार हंस पड़े. इनको हंसता देख हरिश्चंद्रजी की जान में जान आयी. और वे धीमे से बोले, ''देखिये मुझे फ़ोन करने दीजिये, मैं चमनलाल जी का दोस्त हूं.''

दरोगा ने बात को दिलचस्पी से सुना और पता नहीं क्या सोचकर फ़ोन सरका दिया. 'किलाफतह' मास्टर ने सोचा और कुछ शान से नंबर मिलाने लगे. दूसरी तरफ चमनलाल खुद मौजूद था, ''कौन?''

''मैं हरी...आज जो हड़ताल हुई उसमें मैं भी पकड़ लिया गया हूं.'' हरिश्चंद्रजी को लगा वे कुछ गलत बोल गये हैं.

''तो तुम भी हड़ताली हो! अच्छा जी बहुत खूब. इधर आने की कोई ज़रूरत नहीं. गंदे कम्युनिस्ट.'' चमनलाल ने उधर से अभयदान दिया और चोंगा पटक दिया. अब तो हरिश्चंद्रजी की हालत पतली हो गयी. उन्हें लगा धरती घूम रही है. सिर पकड़कर हरिश्चंद्र धरती पर बैठ गये. थानेदार ने उनको ठोकर मारी और दीवान ने हवालात में ठूंसा.

अब क्या हो सकता था! मास्टर को जेल की हवा खानी पड़ गयी. मास्टर जब से जेल में आया था किसी ने उसे बोलते हुए नहीं सुना. मजदूरों ने उसका पैजामा धो दिया. और पहनने के लिए धोती भी जुटा दी तो पता नहीं मास्टर ने इस पर क्या सोचा कि ठठाकर हंसने लगा. तब से वह लगातार इस तरह मुस्कुराता रहा. लोगों का कहना है कि दुश्मन अगर देखे तो सात पुश्त खौफ खायें, दोस्त अगर देखे तो आठ पुश्त मुस्कायें. लोगों को लगा अब यह पागल हो जायेगा.

मजदूर छूटे तो मास्टर भी छूट गये. नहीं, वह जो छूटा था, हरिश्चंद्र नहीं था. वह तो मास्टर हरचन था. जेल के फाटक पर लोग उन्हें लेने आये थे. बाहर निकलते ही मास्टर हरचन जोर से चिल्ला पड़े.

''इन्कलाब.''

जाहिर है इसका क्या उत्तर आना था! सो आया.

मास्टर ने कहा, ''मजदूर एकता.''

मास्टर ने कहा, ''दुनिया के मजदूरो.''

मास्टर ने कहा, ''मई दिवस.''

मास्टर ने कहा, राजा भर्तृहरि का मोहभंग हो गया. राजा अब सारी जिंदगी मजूरी ही करेंगे. मजूरी ही खायेंगे. मजूरी ही पहनेंगे. मजूरी ही ओढ़ेंगे. मजूरी ही बिछायेंगे. अब हरचन मास्टर ने ऐसा भाषण दिया, ''भाइयो, यह अमीर लोग किसी के नहीं होते. आपने सुना होगा बरफी का सब रस ले गयी रे पिंजरे वाली मुनिया. तो हमारी जिंदगी का सब रस चुराकर खून, बिलकुल असली खून चुराकर बदले में कुछ नहीं देने वाले लोग अमीर लोग हैं. धन्यवाद भी नहीं देते भइया. सच्ची बात तो यही है कि इनकी नजरों में हम आदमी ही नहीं हैं. हो ही नहीं सकते. कुत्ता दुम हिलाये तो ये खुश हो जाते हैं, और अगर गरीब आदमी मुस्कुराता है तो ये जल जाते हैं.यह तो साला गरीब है. यह हंसा क्यों! वगैरह-वगैरह.मास्टर हरचन खूब बोले. लोगों को तो मजा आया ही. मास्टर हरचन को भी बड़ा मजा आया. यानी तब से छूटने का दिन और आज का दिन मास्टर पहले मजदूर हुए और कार्यकर्त्ता बाद में. और बाकी हालचाल तो सबको मालूम है. सभी जानते हैं कि अब भी ठीक-ठाक है. मास्टर ने अपने कूचा बदल की कथा यूं समाप्त की. आगे के हाल का बयान इस प्रकार है—

आसमान साफ है. बादल रातोंरात इस शहर से कहीं दूर चले गये हैं. पंछी आते हैं और अपने प्यारे मास्टर हरचन का अंतिम दर्शन करके बायें मुड़ जाते हैं ताकि पीछे आने वाली चिड़ियों को कोई दिक्कत न हो. जहां तक मैं देख रहा हूं सूरज का रंग कुछ सुनहला हो चला है. लगता है सभी लोग आ चुके हैं जिनकी प्रतीक्षा में शवयात्रा रुकी हुई थी. नउवा ने घड़ा दोनों हाथों से अपने सिर तक उठा रखा है जैसे सलामी दे रहा है. अर्थी तैयार है. सायरन बज रहा है. लोग अर्थी उठाने को आगे झुक रहे हैं. आश्चर्य, घोर आश्चर्य, अर्थी तो खुद उठ रही है. कफनी खोलकर मास्टर निकलते हैं और एक आदमी का गमछा लपेट कर छाती पीट रहे हैं. नउवा के हाथ से घड़ा फूट गया है. और मास्टर हरचन अपनी छाती पीट रहे हैं—हाय, गगरिया फोड़ डारी, हाय, अब जीकर क्या करेंगे, हम जीकर क्या करेंगे. और दौड़ कर अपनी टिकटी पर लेट रहे हैं. लोग बड़े प्रेम से अर्थी उठा रहे हैं. 'रामनाम सत्य है'—मास्टर चिल्ला उठे.

'संघम् शरणम् गच्छामि' लोगों ने जवाब दिया है.

रामनाम सत्य है! संघम् शरणम् गच्छामि ! !

रामनाम सत्य है! संघम शरणम् गच्छामि! ! □

दीठ

□ राकेश कुमार

निखिल का ध्यान सामने के झुंड की बातचीत की ओर था. नये-नये कपड़े पहने वे संभ्रांत परिवार के लड़के लग रहे थे. बातचीत का मुद्दा धीरे-धीरे जन्मदिन के उपहार पर आकर सिमट गया था. तभी एक लंबे से लड़के ने कहा कि पिताजी ने उसे जन्मदिन पर एक घड़ी दी. यह कहते हुए उसने अपनी कलाई को जरा ऊपर उठा दिया. सूर्य का प्रकाश घड़ी के चमकीले डायल से टकराकर निखिल के चेहरे पर कौंध गया. निखिल ने मन ही मन कहा, 'हुंह...घड़ी से क्या लाभ. समय तो किसी से पूछा भी जा सकता है...' उसके जी में आया कि वह जाकर कह दे कि अपने जन्मदिन पर उसने भरपेट भात खाया. पर वह ठहर गया. उसे डर हुआ कि कहीं किसी की दीठ न लग जाए... □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बम्बई है

प्रबोध जोशी

आखिर कैसा है यह शहर जहां इतनी ज्यादा फिल्में लगती हैं कि आम बोलचाल में भी लोगों की फिल्में उतर जाती हैं... कैसा है यह शहर जहां आने के हजार रास्ते हैं तो जाने के दो हजार...?

समूचे विश्व में बंबई जैसा अनोखा और बेजोड़ कोई नगर नहीं.

यों बंबई चारों तरफ से पानी से घिरी है लेकिन इस शहर जैसी पानी की तकलीफ दूसरे नगर में नहीं. इस शहर में पैसे का पानी हो जाता है तो पानी के भी पैसे बनाये जाते हैं.

यहां जितने मंदिर हैं उतनी ही मस्जिदें हैं और उतने ही चर्च. लेकिन यहां उतने ही अधर्म और अनीति के अड्डे और अखाड़े भी हैं. यहां अनेक साधु-संत हैं जो निजी जिंदगी में मवाली और गुंडे हैं. यहां ऐसे भी मवाली और गुंडे देखने को मिलते हैं जो असली जीवन में दिल के साफ और दयालु होते हैं.

यहां अमीर हैं जो दिल के गरीब हैं तो गरीब भिखारी भी हैं जो दिल के अमीर हैं.

यहां भाषा का झगड़ा है लेकिन यहां की अपनी भाषा ही अलग है. यह भाषा बंबईया कहलाती है. ऐसी कोई भाषा नहीं जो यहां बोली न जाती हो या सिखायी न जाती हो. फिर भी यह एक भाषी भाषी राज्य की राजधानी है.

यह शहर एक बड़ा बंदर है यानी बंदरगाह है. शायद इसी कारण यहां के निवासी बंदर जैसा व्यवहार करते हैं. इस समय बंदर शब्द का अर्थ बदल डालने की जरूरत है.

यहां डाक्टर हैं, कंसलटेंट हैं. बड़े-बड़े आयुर्वेद के वैद्य हैं, होमियोपैथी के खां हैं तो यूनानी तिब के जानकार भी हैं और चमत्कारों से इलाज करनेवालों की संख्या भी यहां हजारों में है. यहां नास्तिक भरपूर मात्रा में हैं तो धर्म के कट्टर अनुयाइयों की तादाद उनसे चार गुना ज्यादा है. चमत्कार की बात सुनकर दरगाह पर जाने वाले हिंदुओं से तकलीफ में फायदा पाने के लिए हिंदुओं के मंदिरों में जाने वाले मुसलमान कुछ कम नहीं. यहां भजनों के कार्यक्रम हॉल में आयोजित किये जाते हैं तो कव्वाली भी हॉल में गायी जाती है.

यहां मकान के अभाव के कारण लोग फुटपाथ पर सोते हैं तो कितने ही रात की आखिरी ट्रेन में कल्याण वगैरा जाते हैं और सवेरे की गाड़ी पकड़कर फिर वापस बंबई आ जाते हैं. कुछ के पास एक कमरे में ही दस लोगों के सोने की सुविधा हैं तो अनेक ऐसे भी हैं जिन्हें अपने अकेले जीव के लिए भी दस-दस कमरों का फ्लैट कम पड़ता है.

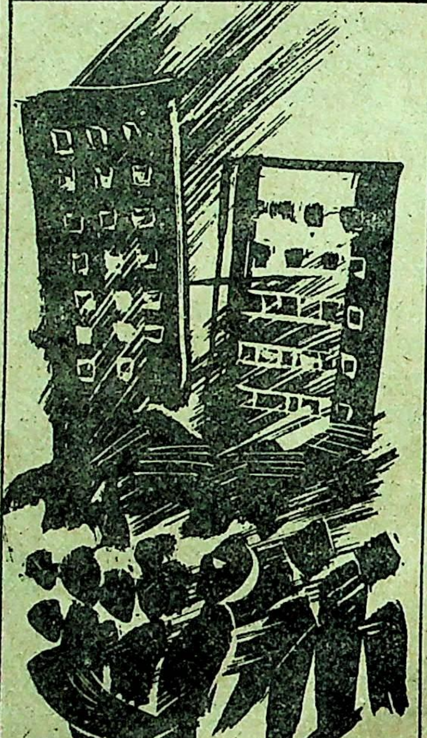

शेखर गुरेरा

यहां कोई होटल खाली नहीं रहता. ऊसल-पाव बेचने वाले, छोटी राइस प्लेट बनाने वाले रेस्तोरां भी यहां हैं तो रोज के पंद्रह सौ वसूलने वाले फाइव स्टार होटल में भी जगह नहीं मिलती.

यहां बहुत से विवाहितों को कुंवारों की जिंदगी बितानी पड़ती है तो अनेक कुंवारे इनसे उल्टा जीवन गुजारते देखे जाते हैं.

यहां एक ही व्यक्ति किसी के सम्मान-समारोह या स्वागत समारोह से आकर तुरंत किसी की शव यात्रा में शामिल होने के लिए चल पड़ता है और फिर हस्पताल में किसी को हालचाल पूछकर वापस दोस्तों के साथ किसी बार में जाम पर जाम चढ़ाता पाया जाता है.

यहां बहुत से लोग जिस मकान में रहते हैं, वह असल में उनके काका का रूम होता है और काका से पहले उसका बहनोई उसमें रहा करता था. बहनोई को वह रूम उसके एक दोस्त ने दिया था और उस दोस्त के पास यह रूम कैसे आया, इसका अता-पता कहीं से मिल नहीं सकता.

लोटा-डोर लेकर आने वाले लोग आज यहां करोड़पति हैं तो यहीं लोटा-डोर लेकर आने लोग ऐसे भी हैं जो अपना लोटा बेचकर किसी तरह एक दिन गुजारकर दूसरे दिन उसी डोर से फांसी लगाकर अन्यों के लिए मिसाल कायम कर जाते हैं.

यहां मां-बाप की सहमति से होने वाले विवाह के स्वागत समारोह के सालभर पहले वाड़ी या हॉल बुक कराना पड़ता है तो इन विवाहों से अधिक संख्या में भागकर गुपचुप विवाह किये जाते हैं.

यहां कल नौकरी करने वाले आज सेठ बने बैठे देखे जाते हैं तो सेठ के रूप में धंधा करने वाले आजकल दो-चार जगह पार्ट-टाइम नौकरी करते भी पाये जाते हैं. यहां का अमीर अपने दादा की गरीबी की कथा सुनाता दिखाई पड़ता है तो आज का मामूली आदमी अपने दादा की माल-मिल्कियत का बखान करता पाया जाता है.

इस नगर में कालेज में ऐडमीशन मिलना किसी फिल्म के प्रीमियर शो के टिकट मिलने जैसा मुश्किल है और स्कूल में एडमीशन लेना उतना ही कठिन है जितना विधान सभा में से राज्य सभा के लिए चुना जाना. यहां के होटलों में कमरा मिलना ऐसा ही है जैसे सीधे स्टेशन पहुंचकर टी.टी.को पैसे दिये बगैर स्लीपर में जगह मिलना और यहां शाम के समय टैक्सी मिलना फुटपाथ पर रहकर पांचवीं मंजिलवाली लड़की से मुहब्बत करने जैसा कठिन है.

इस नगर जितनी सजग पुलिस कहीं अन्यत्र नहीं मिलेगी तो यहां की पुलिस जितना हफ्ता खानेवाली पुलिस भी कहीं दूसरी जगह नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगी. यहां की नगरपालिका कर्मचारी ५० प्रतिशत घूस खाने वाले हैं तो उसके सदस्य ७५ प्रतिशत लाभ लिये बगैर न लौटने वाले बनिये जैसे हैं. यहां जितना कर कहीं अन्यत्र नहीं लगता लेकिन यहां के कर विभागवालों जैसी आमदनी भी दूसरों को नहीं होती; वेतन ऊपर से मिलता है. यहां पैसे से सभी कुछ खरीदा जा सकता है, जड़ वस्तुओं की तरह यहां मनुष्य और मनुष्यता भी बिकती पायी जाती है.

यहां मेटर्निटी हॉस्पीटल या साधारण हॉस्पीटल में खाली बेड नहीं मिलते, मतलब यह कि यहां जितनी बीमारी और यहां जितने जन्म अन्यत्र नहीं होते.

इस शहर में रोज जितनी दारू पी जाती है और रोज की जितनी सिगरेट पी जाती हैं, इसका अंदाजा आप दारू की दूकानें और पान-तमाखू की दूकानें देखकर लगा सकते हैं. यहां जितने सिद्धांतवादी हैं उतने कहीं नहीं मिलेंगे और यहां जितने झूठे भी कहीं और नजर नहीं आयेंगे.

खेलकूद के यहां असंख्य मैदान हैं. क्रिकेट का यह मक्का है. हॉकी की यह काशी है. टेनिस, बेडमिंटन, टेबल टेनिस, कराटे-जूडो, केरम, वॉली वॉल, फुटबॉल, ब्रिज, रमी-फ्लैश-वगैरा सभी खेलों के यहां चैंपियन रहते हैं. यहां खेलों में जितनी राजनीति चलती है उतनी कहीं और नहीं तथा राजनीति में जितना खेल खेला जाता है, उतना दूसरी जगह कहां खेला जाता है.

यहां कंजूसों जितने ही दानवीर हैं, ईमानदारों जितने ही बेईमान हैं. यहां एक महालक्ष्मी के पास लोग पैसा माने के लिए प्रार्थना करते हैं तो दूसरी महालक्ष्मी के मैदान में लखपति होने की आशा में लोग घोड़ों के पीछे गांठ का रहा-सहा भी गंवा बैठते हैं.

बंबई से मराठी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के अखबार भी निकलते हैं जिनकी संख्या बहुत अधिक है. इसका कारण यह है कि इस शहर जितने शिक्षित लोग अन्य शहरों में नहीं जबकि इस शहर जितने अशिक्षित भी कहीं नहीं मिलेंगे.

इस शहर जैसी मोटर टैक्सियां अन्यत्र नहीं तो यहां जितनी बस, रिक्शा या लोकल ट्रेन भी कहीं नहीं, फिर भी यहां जितने पैदल चलनेवाले हैं, उतने कहीं अन्यत्र नहीं.

यहां जितनी व्यवस्था है, उतनी दूसरी जगह नहीं मिलेगी. लेकिन इस शहर जैसी अव्यवस्था भी कहीं और देखने को नहीं मिलेगी. यहां हाउस-फुल थियेटर के बाहर पुलिस की हाजिरी

में ब्लैक में मिल सकते हैं तो रेलवे स्टेशन पर रिजर्वेशन न होने पर भी थोड़ी रकम लेकर पुलिस की आंखों के सामने रिजर्व स्लीपर बेचे जाते हैं.

यहां सबसे अधिक कॉलेज, सबसे अधिक स्कूल ओर सबसे अधिक कोचिंग क्लासें हैं और इसके बाद भी पैसा लेकर आपको मनचाहे अंक दिलवाने वाली दूकानें भी यहीं है.

यहां के हरेक रास्ते और हर गली के दो नाम हैं और नये नाम की खबर टैक्सीवालों को तो छोड़ो, पोस्टमैन या बस के कंडक्टरों को भी नहीं होती.

इस शहर में कुछ ऐसा जादू है कि लोग इसके दुर्गुणों को जानते हुए और यहां की तकलीफों को सहते हुए भी इसे छोड़ नहीं सकते. मनुष्य दारू छोड़ सकता है, सिगरेट छोड़ सकता है, नौकरी छोड़ सकता है, संबंध तोड़ सकता है, पर बंबई नगरी नहीं छोड़ सकता. पहले लोग दादर से बंबई नौकरी करने आते थे, फिर अंधेरी से आने लगे, इसके बाद बोरीवली से, फिर विरार से, फिर पालघर से, आज दहाणु रोड से आते हैं. इसके बाद लोग सूरत से रोज सबेरे बंबई आकर सांझ को वापस लौटेंगे. इस तरफ पूना से आनेवालों की तरह भविष्य में लोग घोड़े तक से आया-जाया करेंगे.

चालीस वर्ष पहले जितने में कोई दूर उपनगरों में बंगला बनवा सकता था, आज उतनी तनखा पाते हुए भी वह शहर में एक कमरा तक नहीं पा सकता.

इस शहर के रहनेवालों का बेगमरा जीवन जितना खराब है, इसका एक नमूना है कि सवेरे काम पर जानेवाला और बोरिवली से डेढ़ मील दूर रहनेवाला व्यक्ति सवेरे साढ़े चारे बजे के लगभग उठता है तो उसकी ऊंघती हुई पत्नी कहती है—"उठ गये, नहा लिये, जा रहे हो." और जब वह व्यक्ति रात को ग्यारह बजे घर पहुंचता है तो ऊंघती हुई पत्नी पूछती है—"आ गये, खा लिया. सो गये." बच्चों को बाप तो देख लेता है पर बाप को बच्चे नहीं देख पाते. रविवार को जो मिलना होता है तो बच्चे मां से पूछते हैं—"यह कौन है?" जवाब मिलता है—"पप्पा." इस पर बच्चे आजू-बाजू वालों से पूछते हैं—"पप्पा...मतलब...क्या हमारा सगा बाप?"

इस बंबई में इतनी अधिक फिल्में लगती हैं और इतनी अधिक फिल्में उतरती हैं कि यहां की आम बोलचाल में लोग कहते-सुनते पाये जाते हैं. कि—"यार, अपनी तो फिल्म उतर गयी."

इस शहर में आने के हजार रास्ते हैं तो जाने को दो हजार.

यह बंबई है. यह बंबई एक चूहा है जो यहां वाले को कुतर-कुतरकर खा जाता है. लेकिन 'मेरा नाम जोकर' का एक गीत: 'जीना यहां, मरना यहां, इसके सिवा जाना कहां...' यह मूल रूप से बंबई के लिए ही लिखा गया लगता है. □

● गुजराती से अनुवाद : लक्ष्मीचंद्र गुप्त

हथकंडा

□ अतुल मोहन प्रसाद

चुनाव सिर पर आने लगा था. अपने क्षेत्र से मिली गोपनीय रपट मंत्रीजी के पैरों की जमीन को खिसका रही थी. 'इस बार चुनाव वैतरणी पार करना मुश्किल है? मंत्रीजी ने गोपनीय रपट को ध्यान से पढ़ा और बुदबुदाते हुए रपट अलमारी में रख दी.

"हर बार तो यही होता है. प्रत्येक बार कोई न कोई नया हथकंडा चुनाव जीतने के लिए अजमाना पड़ता है. इस बार... इस बार..." अचानक एक विचार कौंधा. और दूसरे ही दिन गरीबों की बस्ती आग में धू-धू कर जल गयी. मंत्री महोदय ने जली हुई बस्ती का दौरा किया और बैंकों पर दबाव डालकर अग्निकांड से प्रभावित प्रत्येक परिवार को एक सप्ताह के अंदर ऋण मुहैया कराया एवं सरकार से भी राहत दिलवायी. ऋण कार्य एवं उनके द्वारा राहत दिलाने की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी जिसके कारण चुनाव आते-आते उनके पक्ष में जबर्दस्त हवा बन गयी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छलो

□ प्रदीप पंत

जन्म : १९४१
प्रमुख कृतियां : 'किसके लिए', 'महामहिम', 'एक असंभव मृत्यु' [उपन्यास], 'कुत्ते की मौत', 'आम आदमी का शव', [कहानी संग्रह], 'प्राइवेट सेक्टर का व्यंग्य-कार', [व्यंग्य]
विविध : हिंदी अकादमी, (दिल्ली), उत्तर प्रदेश शासन, जर्नलिस्ट वेलफेयर फाउंडेशन से सम्मानित व पुरस्कृत. यूरोप के कई देशों की यात्राएं और एक दर्जन कठपुतली नाटकों का सृजन.
संप्रति : 'समाज कल्याण' मासिक के संपादक.
संपर्क : बी-२/३१, ईस्ट ऑफ कैलाश, नयी दिल्ली ११००६५

स्कूल से लौटते हुए जब मेरा बेटा रोमिल फ्लैट की सीढ़ियां चढ़ता ऊपर आया तो उसकी पीठ में बस्ता था, मुड़े-तुड़े सफेद पैंट-कमीज़ पर पीली हरी स्ट्रिप्स वाली टाई थकी-हारी हुई सी लटक रही थी और उसके एक हाथ में लिफाफा था—हल्का आसमानी, जिसके चारों ओर लाल-नीले तिरछे स्क्वायर बने हुए थे. मैं अपने बचपन से देखता आ रहा हूं कि आम लिफाफों से भिन्न ऐसे लिफाफे ज्यादातर विदेशों से आते हैं. मेरा कोई मित्र, परिचित या रिश्तेदार विदेश में नहीं है, इसलिए मुझे पता था कि ये लिफाफा मेरा या मेरी पत्नी का नहीं हो सकता.

मुझे आभास था कि ये लिफाफा किसका हो सकता है?

दरअसल रोमिल जिस समय स्कूल से लौटता है, उससे थोड़ी ही देर पहले डाकिया हमारे फ्लैट वालों के लैटर बाक्सों में चिट्ठियां डाल कर जाता है. यह हमारे बगल के फ्लैट वाली 'आंटीजी' को भी पता था. पचपन-छप्पन वर्ष की बूढ़ी आंटीजी दुबली-पतली होने के बावजूद गिलहरी की तरह फुदकती रहती थीं, लेकिन सबसे नीचे की मंजिल में लगे अपने लैटरबॉक्स में चिट्ठी देखने वह नहीं जाती थीं. कहना चाहिए कि नहीं जा पाती थीं. या शायद इसलिए कि उन्हें पता था, अगर उनकी चिट्ठी होगी तो रोमिल लेता आयेगा.

और इसलिए रोमिल के स्कूल से लौटते समय मेरी पत्नी के साथ वह भी रोजाना सीढ़ियों के पास आ खड़ी होतीं—पत्नी रोमिल की प्रतीक्षा में और आंटीजी चिट्ठी के इंतजार में.

उस दिन भी आंटीजी खड़ी थीं जिन्हें देख दूसरी मंजिल पर बने इस फ्लैट की आखिरी सीढ़ी पर कदम रखते ही रोमिल ने कहा, ''आंटीजी, आपकी चिट्ठी!''

तेजी से लपक कर आंटीजी ने आसमानी रंग का वह लिफाफा रोमिल से ले लिया और लिफाफे को छाती से लगाते हुए सदा की तरह इस बार भी उन्होंने दुहराया, ''ओह, मेरे गुड्डू की चिट्ठी.''

गुड्डू—यानी उनका पुत्र.

फिर रोमिल के बालों पर हाथ फेरते हुए बोलीं, ''जुग-जुग जियो, बेटा!'' रोमिल मुस्कराया.

मेरी पत्नी की ओर देखते हुए आंटीजी ने कहा, ''देखो जी, कैसा संजोग है, गुड्डू की चिट्ठी नीचे से ज्यदातर आपका ये रोमिल ही लेकर आता है. भगवान करे, मेरे गुड्डू की तरह होशियार बने. उसी की तरह एक दिन मरिक्खा जाये!''

आंटीजी अमेरिका को हमेशा 'मरिक्खा' कहकर मन ही मन हंसती, पर रोमिल अक्सर सामने ही टोक देता, ''आंटीजी, मरिक्खा नहीं अमेरिका होता है. ज्यादा से ज्यादा आप अमरीका कह सकती है.''

''हां-हां, वही मरिक्खा! जहां मेरा गुड्डू रहता है!'' आंटीजी फिर कहतीं और गिलहरी की तरह उछलते हुए बतातीं, ''बड़ा सुंदर देस है. हर बार चिट्ठी में लिखता है, खूब खाने-पीने को मिलता है वहां, जल्दी ही हमें भी बुलाने वाला है.''

''अच्छा!'' मानो आश्चर्य प्रकट करते हुए होंठों पर सहज मुस्कराहट ला रोमिल कहता, ''आप हमें भी ले चलेंगी न, आंटीजी?''

''अरे, जे बी कोई कहने की बात है, बेटे!'' आंटीजी कहतीं और फिर चिट्ठी को छाती पर लगा अपने फ्लैट के अंदर दाखिल हो जातीं—अंकलजी को दिखाने और उन्हीं से पढ़वाने के लिए.

हमारे बगल वाले तीन कमरों के फ्लैट में करीब चार साल पहले किरायेदार के रूप में आये थे अंकलजी और आंटीजी. अंकलजी का नाम रामलाल था और आंटीजी का श्रद्धादेवी. पर दोनों को कोई नाम लेकर न पुकारता. कोई न उन्हें मिस्टर रामलाल कहता और न उन्हें मिसेज श्रद्धादेवी. बच्चों से लेकर बड़ों तक सभी उन्हें 'अंकलजी' और 'आंटीजी' कहते, यहां तक कि उनसे अधिक उम्र वाले बड़े-बूढ़े भी.

अंकलजी सरकारी नौकरी से रिटायर होकर आये थे इस फ्लैट में. उनके एक ही लड़का था जो कई बरस पहले अमेरिका चला गया था. मतलब कि अंकलजी और आंटीजी वर्षों से उसके बिना अकेली जिंदगी बिता रहे थे. तीन कमरों के इस फ्लैट में भी बस वे दो प्राणी ही आये थे. अंकलजी शांत प्रकृति के, ज्यादातर चुप रहने वाले व्यक्ति थे, पर आंटीजी उनके ठीक विपरीत बेहद बातूनी और जैसा कि मैंने कहा, कृशकाया के बावजूद गिलहरी की तरह फुदकनेवाली महिला थीं. हो सकता है, अंकलजी भी कुछ बरस पहले तक मिलनसार और आंटीजी की तरह बातूनी रहे हों. पर यह सब महज अंदाज़ लगाने वाली बात है.

रोमिल चूंकि स्कूल से लौटते समय हमारी चिट्ठियों के साथ ही आंटीजी की चिट्ठियां भी लैटरबॉक्स से निकाल लाता था, इसलिए उनकी हमारे परिवार से कुछ ज्यादा ही निकटता हो गयी थी. यों भी हम एक-दूसरे के अगल बगल में रहते थे, हालांकि आज के व्यस्त जीवन में अगल-बगल के फ्लैट में रहने से निकटता हो जाना जरूरी नहीं. बहरहाल चूंकि हमारे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके बीच निकटता हो गयी थी, इसलिए वह अक्सर हमारे फ्लैट में आ जातीं. हाथ में प्रायः एक एलबम भी लिए होतीं जिसमें उनके गुड्डू के बचपन से लेकर विवाह तक के ढेर सारे चित्र थे. कुछ चित्र उन दिनों के भी थे जब वह शुरू-शुरू में अमेरिका गया था. उनका एलबम देखते-देखते केवल मेरी पत्नी और रोमिल ही बोर नहीं हो चुके थे, बल्कि मैं भी खासा बोर हो चुका था, क्योंकि उन्हें ही नहीं, मुझे भी वे कई बार ये एलबम दिखा चुकी थीं. एक-एक चित्र पर उंगली रखकर बतातीं कि वह कब लिया गया, तब गुड्डू की कितनी उम्र थी, और वह कैसी-कैसी शैतानियां करता था. गुड्डू के विवाह-प्रसंग की वह अक्सर विस्तार से चर्चा करतीं. कितने दिन पहले से लोग आ गये थे, कितनी दूर-दूर के रिश्तेदार आ गये थे, आदि-आदि. कुल मिलाकर उनके वर्णन से ऐसा लगता मानो एक राजकुमार की तरह भव्य विवाह हुआ था आंटी जी के पुत्र गुड्डू का.

एक दिन जब वह गुड्डू के विवाह के फोटो दिखा रही थीं, तो रोमिल भी वहीं पर खड़ा था. उन्होंने दिल्ली के एक पांच-सितारा होटल का जिक्र करते हुए कहा, "वहां की थी हमने अपने गुड्डू की शादी. वहीं महीने भर को गुड्डू के लिए एक कमरा भी बुक करा दिया था."

इसके बाद वह शादी के समय खींचे गये फोटोग्राफों के बारे में सविस्तार बताने लगीं. तभी रोमिल ने एक चित्र की ओर इशारा करते हुए बाल-सुलभ जिज्ञासा से कहा, "आंटीजी, आप तो कहती हैं कि आपने बहुत बड़े होटल में गुड्डू की शादी की, लेकिन इसमें तो टैंट तना हुआ दिखाई पड़ रहा है."

"हां-हां, बेटे, तूने बिलकुल ठीक कहा." आंटीजी जरा भी विचलित हुए बिना बोलीं, "वो क्या है कि हमने वहां मैदान में टैंट भी लगवा लिया था. लगवा क्या लिया था, समझ ले कि लगवाना पड़ा. बहुत लोगों को बुलाया था न. हमें पता था, होटल के हॉल में उतने लोग समायेंगे नहीं, इसलिए पहले से ही टैंट का इंतजाम कर लिया था."

हमें शक तो पहले से ही था कि आंटीजी गप्पी हैं, लेकिन प्रमाण पहली बार मिला. पांच सितारा होटल में टैंट लगने की बात सुनकर ही मुझे हंसी छूट गयी. बहरहाल इसके बाद आंटीजी ने कई बार अपने गप्पी होने का प्रमाण दिया. एक बार पड़ोस के किसी बच्चे की जन्मदिन पार्टी थी. पार्टी में उछल-उछलकर खाने की तरह-तरह की चीजें अपनी प्लेट में रखते हुए आंटीजी मेरी पत्नी के पास आकर धीरे से बोलीं, "ये पार्टी तो ठीक-ठीक ही है, पर हमारे गुड्डू की जन्मदिन पार्टी तुम देखतीं तो बस. बिजलियां तो ऐसी लगवाते थे कि पूछोई मत. एक बार तो बिजलीवाला बोला—अब हमारे पास बिजली की झालरें खतम. इन्होंने कहा—कोई बात नहीं, दूसरे बिजली वाले से ले आओ. और फिर वो भागा-भागा गया और दूसरे बिजली वाले से झालरें लाया. लोग आये तो कहने लगे—आपने तो ऐसी सजावट करवा दी है जैसे जन्मदिन की नहीं, शादी की पार्टी हो रही हो."

एक दिन आंटीजी ने नयी चमकती हुई साड़ी पहन रखी थी. पड़ोस की किसी औरत ने पूछा, "बड़ी सुंदर साड़ी है! कहां से खरीदी, आंटी जी?"

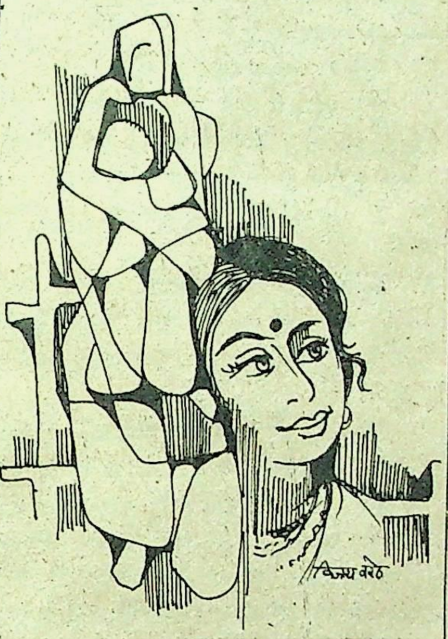

आंटीजी तुरंत बोलीं, "इंपोर्टेड है. मरिक्खा से हमारे गुड्डू ने भेजी है."

एक दिन हमारे घर आये हुए एक मेहमान-कुछ दिन रहकर वापस जा रहे थे तो पास ही खड़ी हमारी महरी को उन्होंने पांच रुपये दिये. अपने फ्लैट के दरवाजे पर खड़ी आंटीजी यह सब चुपचाप देख रही थीं. जब मेहमान-दंपति सीढ़ियां उतरते हुए नीचे चले गये तो आंटीजी मेरी पत्नी के पास आकर इधर-उधर की बातें करने के बाद मुख्य विषय पर आते हुए बोलीं, "मेरा गुड्डू जब मरिक्खा से आकर वापस जाने लगता है न, तो महरी-धोबी जो सामने पड़ता है, उसी को सौ-सौ के नोट लुटा देता है."

"अच्छा!" मेरी पत्नी ने आश्चर्य से कहा.

आंटी जी उत्साहित होकर बोलीं, "टैक्सी से उतरता है तो मीटर पर आते हैं चालीस रुपये, लेकिन गुड्डू है कि सौ का नोट पकड़ाकर आगे बढ़ लेता है. कितनी बार कहती हूं, 'बेटा, ये हिंदुस्तान है, यहां ऐसा मत किया कर. मरिक्खा की बात और है, यहां लोगों की आदत बिगड़ जाती है,' लेकिन गुड्डू है कि मानता ही नहीं."

"ऐसा!" पत्नी ने फिर आश्चर्य प्रकट किया.

आंटीजी होंठों पर मुस्कान लाते हुए बोलीं, "हां, और क्या! कहता है—वहां मरिक्खा में इतना कमाता हूं, यहां दो-चार सौ लुटा भी दिये तो क्या फर्क पड़ता है!"

"क्यों नहीं! क्यों नहीं!" मेरी पत्नी ने होंठों पर आती मुस्कान को किसी तरह रोकते हुए कहा. "आखिर आपका बेटा जो है न! आप भी तो आखिर दिल खोलकर खर्च करती हैं!"

आंटीजी गदगद हो उठीं, हालांकि अपनी कंजूसी के लिए वह ऊपर से नीचे तक एक-एक फ्लैट में चर्चा की पात्र रहा करती थीं.

कुछ क्षण बाद उन्होंने कहा, "अब देखना तुम, थोड़े दिनों में मरिक्खा से मेरा गुड्डू आने वाला है. इतनी चीजें लायेगा कि संभालकर रखना मुश्किल हो जायेगा. रखे कौन जी, मैं तो महरियों-जमादारिनों में बांट दूंगी सब कुछ. आज तक बांटती रही हूं तो अब बुढ़ापे में क्या कंजूसी करना."

लेकिन जब तक आंटीजी हमारे बगलवाले फ्लैट में रहीं, तब तक गुड्डू नहीं आया. हां, हर डेढ़-दो हफ्ते में आंटीजी के नाम उसका हल्का आसमानी लिफाफा जरूर आ जाता. और आंटीजी उस लिफाफे में रखे खत को पढ़-सुन कर भावविभोर हो उठतीं. चिट्ठी को दो-तीन दिन तक आठ-दस बार पढ़ने-पढ़ाने के बाद वे अंकलजी से अपनी एक संदूकची में रखवा देतीं, जो खास तौर पर गुड्डू की चिट्ठियों के लिए ही थी.

और फिर एक दिन सवेरे-सवेरे अंकलजी ने बताया, "अगले हफ्ते हम यह फ्लैट छोड़ रहे हैं."

"क्यों?" मैंने पूछा, "अमेरिका जा रहे हैं क्या?"

"नहीं." वह बोले, "हमने रिटायर्ड लोगों की कैटेगरी वाले फ्लैट की बुकिंग करायी थी. पश्चिमी दिल्ली में आ गया है वह फ्लैट. किराया देते देते थक गये थे. आखिर कोई रिटायर्ड आदमी कितना किराया दे सकता है! अब वहां—फ्लैट की किस्त देंगे तो कम से कम यह तो सुकून होगा कि अपने फ्लैट में रह रहे हैं."

"हां, सो तो है ही!" मैंने कहा.

तभी आंटीजी भी आ गयीं. वह बोलीं, "अगले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महीने मरिक्खा से गुड्डू आने वाला है न! अब देखो जी, थोड़े दिन के लिए तो वो आयेगा. मरिक्खा में बड़ी कोठी में रहने की आदत है उसे, यहां तीन कमरों के इस छोटे से फ्लैट में कैसे रह सकता है वो!''

''हां, ये बात तो है ही!'' मैंने कहा.

''वो हमारा जो फ्लैट आया है, इतना बड़ा है. इतना बड़ा है, इतना बड़ा है कि आप देखने आओगे तो दंग रह जाओगे.'' आंटीजी ने बताया.

'आप बुलायेंगे, तभी तो!'' मैंने हंसते हुए कहा.

''क्यों नहीं, क्यों नहीं!'' मुस्कराते हुए आंटीजी बोलीं.

और अगले हफ्ते उन्होंने हमारे बगल का फ्लैट छोड़ दिया. अंकलजी के साथ आंटीजी गिलहरी की तरह फुदकती हुई अपने फ्लैट में चली गयीं. उनके साथ उनकी गप्पें भी चली गयीं. जाते समय अपने फ्लैट का पता देते हुए वह बोलीं, ''किसी दिन आना जरूर!''

''हां, जरूर आयेंगे!'' मैंने और मेरी पत्नी ने एक स्वर में कहा.

''गुड्डू जिस दिन आयेगा, बहुत बड़ी पार्टी करेंगे हम लोग. उसमें भी आना होगा तुम्हें.'' वह बोली.

''हां, तब तो जरूर आयेंगे हम लोग.'' मैंने कहा.

''आप बुलाना भूल जायेंगी, तब भी आयेंगे.'' पत्नी बोली. और इस प्रकार हमने उन्हें विदाई दी.

हर छुट्टी को पत्नी कहती, ''चलो, आंटी जी से मिल आयें. बहुत दिन हो गये उनकी गप्पें सुने.''

लेकिन मुझे छुट्टी के दिन भी फुरसत न मिलती. निरर्थक व्यस्तता में डूबा रहता. पत्नी से कहा, ''इस हफ्ते नहीं, कई काम निबटाने हैं, अगले हफ्ते जरूर चलूंगा.''

पत्नी खीझते हुए कहती, ''लगता है, तुम्हारा वो अगला हफ्ता कभी नहीं आयेगा.''

''ऐसी बात नहीं. अगले इतवार कोई काम नहीं करूंगा, सिवा तुम्हारे साथ आंटीजी के घर जाने के.'' मैं किसी तरह एक हफ्ते की मुहलत पाने के इरादे से कहता.

और सचमुच पत्नी का कहना ठीक था—निरर्थक व्यस्तताओं के कारण पूरी बरसात और सारी सर्दियों में आंटीजी के घर जाना टलता रहा.

इसके बाद गर्मियों में हम लोग पहाड़ घूमने चले गये—सब कुछ भूलकर कश्मीर की खूबसूरत वादियों में.

और जब हम पहाड़ से लौट कर आये तो फ्लैट के दरवाजे खोलते ही जो पहली चिट्ठी फर्श पर पड़ी मिली, वह कोना कटा हुआ एक पोस्टकार्ड था. एक वाक्य के पत्र में सूचित किया गया था कि लगातार एक सप्ताह के ज्वर के बाद श्रद्धादेवी की मृत्यु हो गयी. श्रद्धादेवी—यानी,आंटीजी. नीचे अंकलजी के हस्ताक्षर थे.

पत्र पढ़कर मैं पत्नी की ओर देखने लगा और पत्नी मेरी ओर. रोमिल ने हम दोनों की ओर देखते हुए पूछा, ''क्या हो गया?''

मैंने पोस्टकार्ड उसे नहीं दिया. बस इतना कहा, ''कोई खास बात नहीं.''

मुझे बच्चों को किसी की मृत्यु की खबर सुनाना कभी अच्छा नहीं लगता. मुझे लगता है, उनके कोमल बाल-मन पर ऐसी खबरों का भयपूर्ण प्रभाव पड़ता है.

चिट्ठी दो सप्ताह पहले लिखी गयी थी.

कुछ सामान्य होने पर पत्नी ने मेरी ओर देखते हुए कहा, ''तुमसे कितनी बार कहा था, चलो आंटीजी के घर हो आयें, लेकिन तुम...''

मैं अपराधी की भांति चुपचाप उसे सुनता रहा.

दूसरे दिन हम संवेदना प्रकट करने अंकलजी के पास गये और बताया कि पहाड़ गये हुए थे, इसलिए पहले नहीं आ सके, कल ही लौटे हैं.

अंकलजी की आंखें नम हो आयीं. मैं सोच रहा था, आंटीजी की मृत्यु के बाद से इन दिनों में वे जाने कितनी बार रोये होंगे. अब वे बिलकुल अकेले पड़ गये थे. मैं उनसे लगातार बातचीत करता रहा. उन्होंने बातचीत के दौरान एक बार भी गुड्डू की चर्चा नहीं की. बड़ा अजीब-सा लगा. फिर यह सोच कर मन को दिलासा दे दिया कि क्या पता गुड्डू अमेरिका में अपने परिवार के साथ गर्मियों में कहीं घूमने निकला हो, इसलिए उस तक आंटीजी की मृत्यु की खबर ही न पहुंच पायी हो.

इधर-उधर की तमाम बातचीत के बाद आखिर मैंने उन्हें सुझाव दिया, ''अब तक तो आंटी थीं, आप दोनों का साथ-साथ वक्त गुजर जाता था, पर वह नहीं रहीं तो अब आपके लिए यहां रह ही क्या गया है! आप गुड्डू के पास क्यों नहीं चले जाते!''

उनकी नम आंखों से एकाएक आंसू छलक पड़े, ''कैसा गुड्डू किसका गुड्डू! जायें उसके पास जिसका हमसे कोई वास्ता हो.''

''क्या मतलब?'' मैंने आश्चर्य से कहा.

मुझे उनकी बात का अर्थ समझ में नहीं आ रहा था.

''अमेरिका जाने के कुछ साल बाद ही गुड्डू ने हमें भुला दिया था. जाने कितनी बार मैंने चिट्ठियां लिखीं, लेकिन कोई जवाब नहीं आया—न उसका, न उसकी पत्नी या बच्चों का.'' अंकलजी बड़े संतुलित स्वर में बोले.

''तो फिर ये चिट्ठियां जो आंटीजी के नाम हर डेढ़-दो हफ्ते में आती थीं?'' मैंने आश्चर्य से पूछा.

इस बार मानो लंबी बीमारी से उठते हुए थकी-बुझी आवाज में बोले अंकलजी, ''उसे कोई दुख न हो, और वह उस हादसे की वजह से प्राण न गंवा बैठे, यह सोचकर मैं हर डेढ़-दो हफ्ते में डाल दिया करता था चिट्ठियां.''

''क्या मतलब?'' पत्नी ने पूछा.

अंकलजी उठे, एक मेज की ड्रावर से ढेर सारे आसमानी लंबे लिफाफे निकाल लाये और बोले, ''मैं ही अपनी लिखावट थोड़ा बदलकर गुड्डू के नाम से ये चिट्ठियां लिखता था, उसकी पुरानी चिट्ठियों पर लगे टिकटों को निकालकर इन लिफाफों पर लगा देता था और फिर चुपचाप लिफाफों को चिट्ठियों वाले बक्से में डाल आता था...''

मैं हतप्रभ उनकी ओर देख रहा था. पत्नी चकित भाव से उनके चेहरे पर खिंच आयी झुर्रियों को निहार रही थी, और वो छोटे-छोटे कमरों के उस सूने फ्लैट में कहीं दूर खोए हुए अंकलजी कह रहे थे, ''जिसे पालपोसकर बड़ा किया उसने हमसे ही छल किया, जिसे ब्याह कर लाया और जिसके सामने मैंने कभी झूठ नहीं बोला, उससे जीवन के अंतिम वर्षों में मैं ही छल करता रहा, लेकिन...लेकिन अब तो छल करने के लिए भी कोई नहीं रहा—सिवा खुद के.''

और मैं मन ही मन सोच रहा था—कोई खुद से भला कब तक छल कर सकता है! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधे पहुंचकर

□ गोविंद मिश्र

कहानी, कहानियां.....पिछले पच्चीस वर्षों से लिखता चला आ रहा हूं, दूसरी विधाओं—उपन्यास, निबंध, यात्रा, डायरी आदि के साथ-साथ. अब थोड़ा ज्यादा मेहनत करना पड़ती है. दूसरी विधाओं में भी ऐसा हुआ है कि उत्तरोत्तर मेहनत की मांग ज्यादा होती चली गयी, लेकिन यात्रा और निबंध अब भी आसानी से लिख जाते हैं, उपन्यास मुश्किल होता है....और कहानी बेहद मुश्किल. 'अनायास लेखन' तो खैर कहने की चीज है, बिना प्रयास लेखन जो पहले होता था, वह अब नहीं होता. सायासता है, निश्चित है.

लेकिन ऐसा लगता है कि यह सायासता कहानी को गढ़ने, अलंकृत करने के क्षेत्र में नहीं है. ऐसा होता तो कहानियों में बनावटीपन झलकता, उनका श्रृंगार पक्ष अधिक उजागर होता चला गया होता. मेरे कुछ समकालीनों के साथ यह हुआ कि उनके एक-एक जुमले, उनमें प्रयुक्त शब्द ऐसे बोझिल होने लगे कि हर जुमले पर अर्थ समझने के लिए ही रुकना पड़ता है. भाग्य से मेरे साथ ऐसा नहीं हुआ. मेरी कहानियों का ग्राफ कुछ अजीब-सा बनता है. एक ही समय में छोटी कहानियां हैं, लंबी कहानियां हैं; उलझी कहानियों के साथ कहीं-कहीं इतनी सरल कहानियां हैं कि उन्हें चाहें तो कोई सपाट कह डाले और श्रेष्ठता देखें तो ग्राफ ऊपर चढ़ता चला गया हो—ऐसा नहीं है. अच्छी कहानियों के बीच ही कहीं कोई कहानी, करीब-करीब अनगढ़-सी. कौन-सा सूत्र छूट गया, चेतना के उस धरातल तक क्यों नहीं उठा जा सका....सोचते रहिये ! मेरी धुन रही—लिखते चलो....चलते चलो, क्योंकि कितना दुख-दर्द अभी पड़ा है जिसके रूबरू होना है, अपने में लेना है. तो एक तरफ तो चलते रहने की यह जिद जिससे एक हद तक कहानी-लेखन में निरायासता रही आयी, दूसरी तरफ सायासता बढ़ती चली गयी—सायासता, जो कहानी के साज-अलंकरण के बजाय दूसरी उलझनों को लेकर ज्यादा थी.

पिछले पच्चीस वर्षों में कहानियां जो लिखीं, उनकी संख्या सौ के करीब तो पहुंच रही होगी. सालाना तीन-चार का औसत रहा, जो आज भी है. सभी वर्गों की कहानियां हैं लेकिन मध्यवर्ग ज्यादा है. मैं उस वर्ग का हूं, मिलना-जुलना इसी वर्ग से होता है और पाठक भी इसी वर्ग का

> लेखन ने मुझे तो कुछ करके रख ही दिया—मैं अब किसी से दुश्मनी महसूस नहीं कर सकता, लगता है जीवन बहुत छोटा है ...

है....शायद इसीलिए.धनाढ्य वर्ग की भी दो-चार कहानियां हैं, इसी तरह निम्नवर्ग की हैं. एक छोर पर है 'प्रतिमोह'—झोपड़पट्टी में भी जलती आदमीयत की मशाल, दूसरे पर 'इंद्रलोक'—वैभव की बदहवासी की कहानी. इत्तफाक नहीं कि ये दोनों कहानियां बंबई में लिखी गयीं क्योंकि हमारी आर्थिक विषमता जैसी बंबई में दिखाई देती हैं, वैसी कहीं और नहीं. मैं चाहता हूं कि आर्थिक रूप से निम्नवर्ग की कहानियां और लिखी जायें—यह फैशनपरस्ती नहीं है, इसलिए कि निम्नवर्ग पर लिखना लेखकीय चुनौती है. मध्यवर्ग तो अपने महसूसने और सोचने में इतना पारदर्शी होता है कि एक तरह से प्लेट में रखकर कहानी लेखक को पकड़ा देता है. निम्नवर्ग में पहमते हुए मामला उतना आसान नहीं होता—अनुभूति के किस विशिष्ट कोण की कचोट वहां दरअसल हो रही है और कहां लेखक अपनी तरफ से किसी विलक्षण कोण को आरोपित किये दे रहा है—यह सीमा-रेखा बेहद महीन है. इसलिए अप्रामाणिकता में सरक जाने की शत-प्रतिशत गुंजाइश है. पर यही चैलेंज है....'प्रतिमोह' कहानी लिखने के दौरान उस पात्र से मैं और ज्यादा सटता चला गया, यहां तक कि उसे अपने घर ले आया, रखा. 'सुनंदो की खोली' लिखने के दौरान उन लोगों से बढ़ी आत्मीयता ज्यादा ही बढ़ने लगी, तब कोशिश करके मैं लौट आया....क्योंकि यह आशंका हुई कि उस लड़की में मैं आकांक्षाएं जगा रहा था, उस परिवार में मैं दूसरी तरह की उलझनें पैदा कर बैठता.

इसी तरह अनुभव के शेड्स जो कहानियों में आये हैं, वे खासे विविध हैं. कोई जीवन-पक्ष जो मेरे लिए अब तक अनदेखा, अछूता रहा हो....वह मुझे आकर्षित करता है. कह सकता हूं कि कहानी लिखने की प्रेरक शक्ति यहीं से उपजती है. 'रगड़ खाती आत्महत्याएं', जिसमें मेरी एकदम शुरू की कहानियां हैं, भावुकता से लिजलिजाती —उन्हें छोड़ दें तो शेड्स की दृष्टि से ऊपर को जाता ग्राफ बनता है. घिनौनापन-पात्रों का, जीवन का, जो कहानियों में सीधे-सीधे उतरा, क्रमशः छनने लगा और उन्हीं के बीच जीवन का सुंदर, सकारात्मक पक्ष आने लगा. यहां पहुंचकर मुझे लगा कि यथार्थ को लेकर तो मैं बराबर चला हूं, उसे कभी छोड़ता नहीं.....उस पर कैसी रोशनी-सी फैल गयी है. कहानी-संग्रहों को लेकर चलूं तो 'नये-पुराने मां-बाप', 'अंतःपुर' और 'धांसू' तक अनुभवों के घिनौने शेड्स हैं.('चुगलखोर', 'अजीबीकरण', 'गिरफ्त', 'दोस्त' जैसी कहानियां), 'खुद के खिलाफ' संग्रह से आर्द्रता, करुणा उभरने लगती है ('गिद्ध' जैसी कहानियां) जो 'खाक इतिहास', 'मायकल लोबो', 'पगला बाबा' में पहुंचकर अपने पूरे रंगों में खिली है. 'पगला बाबा', मायकल लोबो', 'अर्थ ओझल'...जैसी कहानियों में वह रोशनी, उदात्तता है जो कहानी को आंच-सी देती है. यह आदर्शवादिता लग सकती है (हो भी तो उससे परहेज क्यों) लेकिन इससे पाठकों को कितना संबल मिलता है....इसके सबूत मेरे पास पत्रों के रूप में मौजूद हैं.

लेकिन इधर इससे भी अलग छिटक रहा हूं—ऐसा लगता है. हाल की कहानियां—'यों ही खत्म' में तो है यह, पर उसके बाद की 'इंद्रलोक' और उसके पहले की 'निष्कासित' में नहीं है. जैसे मैं दोहराव से फिर बचने की कोशिश कर रहा हूं.....या किसी और तलाश में हूं. 'निष्कासित' और 'इंद्रलोक' जैसी कहानियों में करुणा है, पकी हुई करुणा...तो क्या यथार्थ और आदर्श से अधिक करुणा ही साहित्य का मुख्य अवयव है, जिस ओर मैं अनायास अग्रसर हूं? यह भी हो सकता है कि जैसे उस समय, जब मैं घिनौनेपन को उतारने में लगा हुआ था, तब भी अपवाद स्वरूप कुछ बेहद मानवीय, कोमल-कोमल कहानियां आयी थीं; जैसे 'कचकौंध', 'खंडित'...., वैसे ही ये, जिन्हें मैं पकी हुई करुणा की कहानियां कहता हूं. हो सकता है ये कहानियां अपवाद-स्वरूप हों और दरअसल मैं उदारता वाली पटरी पर ही चला जा रहा हूं. यह भी हो सकता है कि मैं किसी नये दौर में प्रवेश कर रहा हूं और इसे सही-सही विश्लेषित करने का समय अभी नहीं आया है..

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वित्त मंत्रालय, राजस्व विभाग

केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड

'प्रत्यक्ष कर साहित्य पुरस्कार योजना'

प्रत्यक्ष कर संबंधी विषयों पर हिंदी में मूल लेखन के लिए पुरस्कार वर्ष 1990-91 के लिए पुरस्कार

राजस्व विभाग, केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड ने प्रत्यक्ष कर की चारों शाखाओं अर्थात् आय कर, धन कर, दान कर और कंपनी लाभ अति कर से संबंधित विषयों पर हिंदी में प्रामाणिक साहित्य के लेखन और प्रकाशन को बढ़ावा देने के लिए 'प्रत्यक्ष कर साहित्य पुरस्कार योजना' नामक एक पुरस्कार योजना आरंभ की है।

पात्रता:

इस योजना के अंतर्गत पुरस्कार के लिए कोई भी भारतीय नागरिक, चाहे वह सरकारी सेवा में हो या गैर-सरकारी सेवा में हो या किसी भी अन्य व्यवसाय में लगा हो, अपनी मूल पुस्तक भेज सकता है।

पुरस्कार

इस योजना के अंतर्गत निम्नलिखित पुरस्कार प्रदान किये जायेंगे:

प्रथम पुरस्कार–2	10,000/- रु. प्रत्येक
द्वितीय पुरस्कार–2	7,500/- रु. प्रत्येक
तृतीय पुरस्कार–2	5,000/- रु. प्रत्येक

मूल पुस्तक की परिभाषा:

इस योजना के अंतर्गत मूल पुस्तक से अभिप्राय उस पुस्तक से है जो (क) प्रतियोगी अथवा लेखक द्वारा स्वयं मूलतः हिंदी में लिखी गयी हो (ख) स्वयं प्रतियोगी अथवा लेखक द्वारा किसी अन्य भाषा में लिखी गयी पुस्तक का स्वयं उसके द्वारा किया गया हिंदी अनुवाद हो।

अवधि:

इस योजना के अंतर्गत नकद पुरस्कार गत वित्तीय वर्ष अर्थात् 1 अप्रैल, 1989 से 31 मार्च, 1990 तक लिखी गयी पांडुलिपियों तथा प्रकाशित पुस्तकों के लिए वर्ष 1990-91 में दिये जायेंगे।

विशिष्ट आकर्षण:

पुरस्कार के लिए जो पुस्तकें चुनी जायेंगी, प्रकाशित होने पर उनकी दो हजार प्रतियां विभाग स्वयं खरीदेगा।

प्रविष्टियाँ:

पुरस्कार के लिए विचारार्थ पुस्तकें मुद्रित या टंकित किसी भी रूप में स्वीकृत की जायेंगी।

अंतिम तारीख:

इस योजना के अंतर्गत आवेदन पत्र के साथ प्रविष्टियाँ प्राप्त होने की अंतिम तारीख 31 जुलाई, 1990 है।

इस प्रयोजन के लिए निर्धारित आवेदन पत्र तथा योजना के संबंध में विस्तृत जानकारी डाक द्वारा या स्वयं आकर श्री राम शंकर सिंह, सहायक निदेशक (राजभाषा) (प्रशासन), राजभाषा प्रभाग, केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड, आयकर निदेशालय (गवेषणा, सांख्यिकी, प्रकाशन व जन संपर्क), छठी मंजिल, मयूर भवन, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली-110001 (टेलीफोन नं. 3313823) से प्राप्त की जा सकती है।

davp 90/70

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन इस पर तो विचार कर ही सकता हूं कहानी-लेखन में अनुभूति के कौन से क्षेत्र जो छूट गये और जिनसे भविष्य में सटने की ललक मेरी है. एक ऐसा क्षेत्र है आर्थिक विपन्नता का. बिलबिलाती भूख, उसके आसपास की अनुभूतियां मुझसे छूटी हुई हैं. मैं कबूल मानता हूं कि जहां यह दु:ख है, वहां शायद सबसे बड़ा यही दु:ख है. यह ठीक है कि सभी अनुभव किसी लेखक के रास्ते नहीं आते, जैसे कि प्रेमचंद प्रेम के अनुभव से वंचित रहे और एक भी जिसे विशुद्ध प्रेम-कहानी कहते हैं, वह नहीं लिख पाये. आर्थिक विपन्नता में मैं अपने बचपन में जरूर रहा, लेकिन भुखमरी से कभी गुजरना नहीं हुआ. तो वह मेरी कहानियों से छूट गया है. 'स्वर लहरी'—एक कहानी भूख पर है, लेकिन उसे प्रतीक बनाकर कुछ और कहने की कोशिश में, विशुद्ध भूख की पीड़ा कहानी में नहीं उतर सकी. इसी तरह गरीबी के आसपास तो मंडराया हूं, लेकिन सीधा उसकी गिरफ्त में जाना नहीं हुआ. मैं सोचता हूं....वह जो लेखक के अनुभव क्षेत्र में सीधे-सीधे न रहा हो, उसे भी आना चाहिए रचना-क्षेत्र में. मेरे साथ ऐसा हो सके तो मुझे संतोष होगा कि जीवन को एक छोर से दूसरे छोर तक थोड़ा-थोड़ा देख तो सका; सभी पक्षों को उठाने की सामर्थ्य अगर मिलती होगी तो विरलों को ही.

इसके बावजूद कहानी-लेखन की अपनी यात्रा का एक संतोष तो मुझे मिला है. जीवन के विविध रंग मिल जायेंगे यहां. बच्चों, नौजवानों, बूढ़ों की कहानियां. तरह-तरह के संबंधों की कहानियां, कैसे-कैसे दु:ख-दर्द की कहानियां. कहा जाता है कि मेरे यहां नारी की कहानियां ज्यादा हैं, तो नारी तो पृथ्वी है. सब उम्र की नारियां मिलेंगी. इसी तरह घृणा, आक्रोश, ईर्ष्या-द्वेष से लगाकर प्रेम (उफनता हुआ प्रेम), निष्काम प्रेम, उदात्तता से होते हुए आत्मिकता तक. गांव, कस्बे, महानगर और विदेश ('पैंतालीस अंश का कोण', 'खाक इतिहास', 'शापग्रस्त' जैसी), यहां तक कि परलोक से संबंधित कहानियां हैं. यह भी संतोष मेरा है कि कहानियां पठनीय हैं....उनमें रस है जो पढ़ा ले जाता है उन्हें. इनके पाठक बौद्धिकों से लगाकर अपढ़ से थोड़ा ऊपर वाले लोग हैं, एक ही कहानी को वे उसी चाव से पढ़ लेते हैं. जो भयंकर असंतोष है वह यह कि कहानियों का स्तर-श्रेष्ठता, साहित्यिक श्रेष्ठता, जिसमें पाठकों को हिलाकर रख देने की शक्ति भी शामिल है—यह बराबर नहीं बनाये रख सका. दरअसल जिन कहानियों में उत्कृष्ट स्तर आया है, वह मेरे बावजूद आया पता नहीं कहां से—जैसे 'मायकल लोबो' 'खाक इतिहास' या 'पगला बाबा'. क्यों ऐसा नहीं हुआ कि कम-से-कम इनके बाद की लिखी कहानियां—उसी स्तर की हुई होतीं? शायद कहानियों का स्तर काफी कुछ उनका विषय तय करता है....और वैसे विषय हर बार हाथ नहीं आते. यह भी हो सकता है कि स्तर को लेकर मेरा यह भ्रम हो, दरअसल यह मुग्धता है—किसी विशेष अनुभूति या विशेष श्रेणी की अनुभूति के व्यक्त होने पर महसूस की गयी मुग्धता जो फिर हमें छोड़ती ही नहीं. 'मायकल लोबो', पगला बाबा' जैसी अनुभूति ....उनकी आत्मिकता के लिए मुग्धता. लेकिन इन कहानियों में भी आत्मिकता से अधिक उसके नीचे दबी मानवीयता मेरे आकर्षण का केंद्र रही है. 'पगला बाबा' में मानवीयता धर्म से भी ऊपर उठ जाती है. 'पगला बाबा' को बाबा विश्वनाथ के दर्शन कर सकने के लिए समय न मिल पाने की पीड़ा सालती तो रहती है, पर कर्म उनके लिए मुख्य है. पता नहीं कब कौन कहां उनकी प्रतीक्षा में पड़ा है, देहांत के बाद. 'मायकल लोबो' के लिए वह स्त्री जिसकी पीठ पर घाव थे, ईशूमसीह का प्रतीक बन जाती है.

मुझे यह मानने में बिल्कुल हिचक नहीं कि मैं अब तक यह नहीं जान सका कि कहानी क्यों होती है, और अच्छी कहानी किसे कहेंगे. कभी-कभी कल्पना किया करता हूं कि कहानी को एक चीख की भांति होना चाहिए, अंधेरे में उठती कोई चीख और यह चीख रोशनी की लकीर-सी उठती चली जाये. अनुभूति इतनी अंतरंगता से महसूस की जाये कि चीख जैसी लगे और वह चीख हमें मानसिक रूप से अध:तल की ओर न ले जाये बल्कि उठाये....उदात्तीकरण को.कभी यह भी महसूस किया है कि किसी कहानी को लिखना झाड़-झंखाड़ के बीच किसी पगडंडी की खोज में भटकना जैसा होना चाहिए. कुछ भी पूर्व निर्धारित नहीं, यों ही मानवीय गुत्थियों, उलझनों में प्रवेश किया जाये....उसके बाद जैसा भी भटकना हो, जो भी हाथ आये, जीवन की उर्मियों के बीच जो भी झलक जाये, उसे पकड़कर रेखांकित किया जाये. कहानी में सबसे मुख्य चीज भावना को मानता हूं, भावुकता से दूर रहते हुए भी कहानी भावनात्मक रूप से सघन हो. मुश्किल यही है कि इस मुख्य तत्व को अक्सर लेखक के अनजाने ही, उसका ही कोई मोह—कथा-रस, भाषा का रचाव, आंचलिकता, नित-नयी शैली, आधुनिकता....किसी के लिए भी मोह सोख डालता है. तब कहानी सिर्फ मस्तिक से रची हुई लगती है, उसमें हिलाने की शक्ति नहीं रहती, अक्सर तो वह सहज पठनीय भी नहीं रह जाती. एक भावना का तार ही है जो जब लेखक के हृदय में बजता है तो पाठक के मन में भी स्पंदन पैदा करता है. कहानी का ताना-बाना क्या और कैसे होना है, उसे कहां कसना और कहां ढीला छोड़ना है—यह सब सिर्फ वही मुख्य लक्ष्य सामने रखकर तय करता हूं, कैसे जीवन का वह टुकड़े में जिसे मैंने उठाया है, वह भावना से स्पंदित हो सके. अपने अनुभूति खंडों पर लिखते समय तो ऐसा सहज हो सकता है, दूर-दराज के जीवन को उठाते हुए यह मुश्किल होता है. केवल भोगे हुए यथार्थ पर लिखना—यह तो मात्र एक नारा है जो लेखक क्या, लेखन-कर्म को ही संकुचित करके रख देता है. जीवन तो बहुत छोटा है. हमारी अनुभव-परिधि में तो इत्ता-सा यथार्थ ही आयेगा.....तो क्या उत्ते-भर को ही लिखेंगे आप? दूर-दराज का यथार्थ भी मन में उतारकर भोगा हुआ यथार्थ क्यों नहीं बनाया जा सकता? अक्सर हम नये-नये यथार्थ को जीने के भ्रम में मात्र उसके ब्यौरे इकट्ठे करते हैं और उन्हें कहानी में डालकर तृप्ति अनुभव करते हैं.

तीन-चौथाई यात्रा पूरी करने जैसा नहीं लगता अभी, पर आधा तो आ ही गया हूं. कैसा लगता है यहां पहुंचकर? लेखन ने मुझे तो कुछ का कुछ करके रख ही दिया—मैं अब किसी से दुश्मनी नहीं महसूस कर सकता, लगता है जीवन बहुत छोटा है कि नफरत जैसी चीज पालकर उसे जाया किया जाये. इन कहानियों के रास्ते कितने तरह के संबंध बने.....उन पात्रों से जिन पर लिखा और वे पाठक जिनसे अभी मिलना भी नहीं हुआ पर संबंध बन गये. (एक तो हाल ही में मेरी बेटी बन गयी है—रांची की कलावंती). लिखने ने जो यह खूबसूरती बिखेरी है मेरे जीवन में, उसके लिए प्रकृति का कृतज्ञ हूं.

तभी कमियां बेतहाशा दीखती हैं....अपने में और लेखन में भी. लेखन-कर्म जितना बड़ा है, उस अनुपात से मेरा कद नहीं. घबराहट होती है—अब तक जो नहीं आया, वह आगे क्या आयेगा. यह वह समय भी है जब आगे आप मनुष्य और लेखक दोनों ही रूपों में अकेले होते चले जायेंगे.

एक बात बराबर महसूस करता हूं—दिये जलाते चलो, यह तुम्हारे हाथ में नहीं कि किसका प्रकाश कितना होगा, कहां तक जायेगा या कि कब तक रहेगा! पर हां, मात्र लिखना, वह दीप जलाना ही हो, पूरी आस्था और समर्पण के साथ.

बुझते जाते हैं चिराग दहरो-हरम,
दिल को जलाओ कि रोशनी
है कम!

—फिराक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल पसीना

अभिमन्यु अनत

पिछले अंक में आपने पढ़ा

पिछले अंकों में आप रामवरन, परकास, सहदेव ठाकुर और उनकी साझी समस्याओं से मिल चुके हैं. अब पढ़िये मूसा को अपने साथ लिये जा रहे हरि की दास्तान...

अगले शनिवार की सुबह मूसा को अपने साथ लिए हरि शहर के लिए निकल पड़ा था. उसने सुन रखा था कि शनिवार के दिन डाक्टर मौरिस क्यूरे बारह ही बजे तक अपने दफ्तर में लोगों से मिलता है इसलिए छह बजे की गाड़ी दोनों ने पकड़ी थी. पुद्रदोर तक दोनों पैदल आये थे. शहर में होनेवाली घुड़दौड़ के कारण स्टेशन पर काफी चहल-पहल थी. फिर भी दोनों को जगह मिलने में दिक्कत नहीं हुई. पास-पड़ोस की कोठियों के मजदूरों को घुड़दौड़ देखने जाने की इजाजत तो थी नहीं. पर आज वाली घुड़दौड़ उन बाकी घुड़दौड़ की तरह नहीं थी जो केवल बड़े और सम्य समझे जानेवालों के लिए हुआ करती थी. यह तो साल की आखिरी घुड़दौड़ थी जिसके लिए टापू भर के शक्कर उद्योग के मजदूरों को खास छुट्टी दी जाती थी. स्टेशन पर बहुत भारी भीड़ थी जिसमें औरतें और बच्चे भी भारी संख्या में थे.

घुड़दौड़ के इस मैदान के बारे में हरि बहुत कुछ सुन चुका था पर वहां जाने का उसे कभी अवसर नहीं मिला था. वर्ष के अंतिम सप्ताह में होने वाली इस दौड़ में कोठी के मजदूरों के लिए अलग से मरियल घोड़ों की दौड़ का आयोजन होता था. देश के संपन्न और पढ़े-लिखे लोग उस घुड़दौड़ को 'लेकूर्स मालबार' कहकर भारतीय मूल के मजदूरों की खिल्ली उड़ाते थे. उस घुड़दौड़ के बारे में हरि ने इतना कुछ सुन रखा था कि एक बार अपनी आंखों से उस जिल्लत को देख लेना चाहता था. इसीलिए शाम में जब मूसा के साथ बात हो रही थी तो दोनों ने यही तय किया था कि डाक्टर क्यूरे से मिल चुकने के बाद एक बार वे लोग उस नजारे को भी देख लेंगे.

रामवरण चाचा ने एक-दो अवसरों पर वह घुड़दौड़ देखी थी. उसके बारे में हरि और उसके साथियों को बताते हुए कहा था, ''जानवर! कुत्ता! सुअर के हालत होवेला गांव के लोगन के! हमार के लोगन गभिया त मारे लन स ही. लोगन के ठग-ठग के सभी कुछ हड़प लेवल जाला. रामदरसवा के अपन औरत के बिना गांव लौटे के परल बा. आज तलक ओके ओकर औरत ना मिलत घोड़सार पर हारे लोगन के त पड़ल बा पटरी पर सूते के और पीते ओला लोग शराब पी के एतना चूर हो गईल कि कुत्ता मुंह के चल गईल और जीभी लपलपाते रहल.''

गाड़ी में बैठे हुए धक्कमधक्का और रेलपेल के बीच दोनों यह तय करते रहे कि डाक्टर मौरिस से कौन-कौन-सी बात होनी जरूरी थी. कम से कम एक बात के लिए तो हरि निश्चिंत था. उसे फरीद मियां का घर ढूंढने में किसी तरह की परेशानी का सामना करना नहीं था. वह तो जीवन में पहली बार शहर जा रहा था. पर मूसा कई बार जा चुका था. यही नहीं, फरीद मियां उसका अपना खालू था, चरहे रिश्ते से ही सही, उसका घर उसके लिए अनजाना तो था ही नहीं. दो बार वहां जा चुका था. एक बार ईद के अवसर पर और दूसरी बार मोहर्रम का ताजिया देखने. उसने हरि से कहा था कि अगर वह स्टेशन से जुम्मा मस्जिद तक पहुंच गया तो फिर वहां से अपने खालू का घर ढूंढ़ निकालने में उसे दिक्कत नहीं होगी. वहां से सीधे उत्तर को जानेवाली आम सड़क से कुछ आगे जाना था, फिर वहां से दांयी ओर को मुड़ना था. उसके बाद वहां से वह सीधे पहुंच सकता था, उस हरे रंग के घर तक.

रेलगाड़ी के जिस डिब्बे में दोनों को जगह मिली थी, उसमें कुछ ऐसे भी मजदूर थे जो उचित कपड़ों के अभाव में अपने काम के मैले-कुचैले, पुराने फटे कपड़ों में ही अपने पूरे परिवार के साथ घुड़दौड़ देखने निकल पड़े थे. उस आपाधापी और शारीरिक गंधों के बीच कुछ लोग बीड़ियों और गांजे के दम लेकर उस माहौल को और भी बोझिल और अकुलाहट दे रहे थे. वे केवल बच्चे थे जो माहौल की उस अकुलाहट और भारीपन की परवाह किये बिना अपने आप में चहक रहे थे. कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र सहमे हुए भी थे. हरि और मूसा सभी कुछ खामोशी के साथ देख रहे थे. हरि की नजर एक ऐसी लड़की पर पड़ी जिसकी मासूमियत उसे अनायास ही अपनी ओर आकर्षित करती रही.

डिब्बे के भारी कोलाहल के बावजूद दोनों अपनी बातें करते रहे. रेलगाड़ी से छोटी-मोटी यात्राएं हरि ने कोई सात-आठ की थीं लेकिन पुरुवोर से शहर की लंबी यात्रा वह पहली बार कर रहा था. इसलिए बातें करते हुए भी वह खिड़की से बाहर के दृश्यों को देख लिया करता था. गाड़ी जिस स्टेशन पर भी रुकती लोग बाढ़ की तरह भीतर आते जाते. हर भीतर आने वाले के भीतर घुड़दौड़ का ज्वार था. लोगों को खड़े होने तक की जगह मिलनी मुश्किल होती गयी. हरि ने अपने सामने के उस हुजूम के बीच से भी उस लड़की को एक आखिरी बार के लिए देखा. वह उसी तरह चुपचाप सिमटी बैठी थी. एक-दो बार उसने भी अपने आगे की भीड़ के बीच से हरि की ओर झिझकती नजरों से देखा. हरि बस यही सोचता रहा कि काश वह लड़की भी शहर के स्टेशन पर उतरे पर शहर पहुंचने पर उसे अपने बाप की बगल में उसी तरह निश्चिंत बैठे पाकर वह जान गया कि उसकी यात्रा समाप्त नहीं हुई थी. हरि को अपनी यात्रा के समाप्त हो जाने का भारी दुख हुआ.

गाड़ी शहर के स्टेशन पर रुकी. अपनी दिलो-दिमाग में भारी बोझ लिये हरि उस नर्क की हस घुटन से अपने को बड़ी कठिनाई से बाहर कर सका. मूसा के साथ-साथ वह पहले जुम्मा मस्जिद की तलाश में निकला. पूछने पर कभी कोई जवाब दे जाता और कभी कोई दो गंवारों की सुनी अनसुनी करके चुपचाप आगे निकल जाता. मूसा को थोड़-थोड़ा याद था कि अपने बाप के साथ जब वह रेलगाड़ी से उतरा था तो वहां से उत्तर की ओर ही चला था. उसे यकीन था कि मस्जिद की मीनार उसे दूर ही से दिख जायेगी. उसने हरि से भी कह दिया था कि वह सफेद मीनार को ही ताक में रहे. दोनों उत्तर की ओर चलते हुए भीड़ से अलग आ गये थे. बाजार के पास से गुजरते ही उनका हौसला बढ़ा. गलियां जानी-पहचानी लगने लगी थीं. किसी चाय की दूकान से के.सी.डे के गाने की आवाज सुनाई पड़ी—

"...मन की आंखें खोल रे बाबा मन की आंखें खोल..."

दूसरे ही कदम पर उसे जुम्मा मस्जिद की मीनार दिखाई पड़ गयी. मस्जिदवाली गली में पहुंचकर वहां से दोनों उत्तर की ओर सीधे चल पड़े. मूसा ने तेल के कारखाने को देखते ही कहा कि अब वे लोग पहुंचने ही वाले हैं. थोड़ा आगे जाकर वे दांयी ओर मुड़े. नान बेचने वाला जोरों से आवाज़ देता हुआ निकल गया. एक घर में ग्रामोफोन पर जोहरा का गाना चल रहा था. चौराहे पर आकर मूसा खड़ा हो गया. आगे की गलियों की ओर देखा. बगल की एक गली में बच्चे कांच की गोलियां खेल रहे थे. उसकी बगल में जो तंग गली थी, उसी में दोनों घुसे. कुछ ही कदम चलने के बाद मूसा बोला, "आ गये. वह रहा खालू का घर."

आम सड़क पर से ही मूसा ने उस घर की ओर संकेत किया था. मूसा के साथ हरि ने भी एक लंबी सांस ली. जल्दी-जल्दी अपने कपड़ों को ठीक किया. माथे के पसीने को पोंछा. अपनी दसों उंगलियों,से बालों को ठीक किया और मूसा के पीछे-पीछे चल पड़ा. पहली बार वह किसी शहरी के घर जा रहा था.

दोनों एक हरे रंग के घर के आगे पहुंचे. सफेद पत्थरों की दीवार के बीच लकड़ी का छोटा-सा दरवाज़ा था जिसके साथ एक घंटी लगी हुई थी. मूसा ने घंटी बजायी. पहले तो कुत्ते ने भूंकना शुरू किया फिर भीतर से आवाज आयी, "कौन है भाई?"

दरवाजा खोलनेवाले को देखकर मूसा हैरत में पड़ गया. सोचा कहीं गलती से किसी दूसरे के घर तो नहीं पहुंच गया था. जो आदमी उसके सामने खड़ा था, वह तो धोती पहने हुए था और उसके माथे पर चंदन का टीका था. थोड़ी-सी घबराहट लिए हुए मूसा ने कहा, "हम लोग फरीद मियां जी का घर तलाश रहे हैं."

"यही है. वह तो दूध बेचने गया हुआ है."

सपूरा बाहर आ गयी. मूसा को पहचानकर सहदेव ठाकुर से बोली, "हमारा भतीजा है भाई जान."

वह दोनों को भीतर ले गयी. सहदेव ठाकुर फिर से अपने 'मक्का मदीना' को चमकाने में लग गया. सपूरा खाला से यह सुनकर कि उसका खालू लौटने में देर नहीं करेगा, मूसा ने राहत की सांस ली. और सचमुच दोनों अभी चाय पी ही रहे थे कि फरीद मियां अपनी साईकिल के साथ आ गया. मूसा को देखकर सुखद आश्चर्य के साथ उसने पूछा, "तुम्हें घर ढूंढने में परेशानी तो नहीं हुई?"

"नहीं तो."

"हनीफ कैसा है?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ठीक है."

"और तुम्हारी मां."

"वह भी अच्छी है. आप लोगों की बातें आये दिन होती रहती हैं."

"हम लोग भी तुम लोगों के बारे में बातें करते रहते हैं. अभी तो पिछले ही हफ्ते तुम्हारी बातें तुम लोगों की ओर जाने की बात कर रही थी. मेरे अपने काम ही कुछ इस तरह उलझे हुए थे कि उन्हें सुलझाये बिना मेरा इधर-उधर निकलना संभव नहीं था. यह खुदा की कुदरत है कि उसने तुम्हें भेज दिया." मूसा ने फरीद मियां को हरि का परिचय दिया और आने का मकसद बताया. अपने कोट की जेब से चांदी की चैन से बंधी घड़ी को निकालकर फरीद ने वक्त देखा फिर पूछा, "आज ही तुम्हें डाक्टर साहब से मिलना है?"

"हां खालू, हमें उनसे आज ही मिला देंगे तो बहुत बड़ी बात होगी."

"ठीक है, हम तुम्हें डाक्टर साहब से मिला देंगे. अभी तो दस बज रहा है. तुम लोग खा-पी लो, फिर चलेंगे."

इस पर हरि बोल उठा, "नहीं चाचा जी, आप हमारे खाने की चिंता न करें."

"क्यों न करें भाई! इतनी दूर से आये हो. आज घुड़दौड़ है, सवारी की मुसीबत होती है. पता नहीं तुम लोग कब शहर छोड़ पाओगे!"

"हम लोग रास्ते में कुछ खा लेंगे."

"आज की इस भीड़-भाड़ में और रास्ते पटरियों का खाना नहीं नहीं, ऐसा नहीं हो सकता."

उसने अपनी बीवी को आवाज देकर बुलाया. वह जब आ गयी तो उसने कहा, "फातमा से पूछो खाना कब तक तैयार हो जायेगा? अगर देर होती है तो हम पहले इन्हें डाक्टर क्यूरे से मिला आते हैं."

अपने बाप की आवाज सुनकर दूसरे कमरे से फातमा ने धीमी आवाज में कहा, "खाना लगभग तैयार ही है, बस पंद्रह मिनट और."

हरि ने एक बार फिर आपत्ति करने की कोशिश करनी चाही कि बीच में ही मूसा बोल गया, "खालू मेरा दोस्त..." पर उसे भी फरीद ने अपना वाक्य पूरा करने नहीं दिया, "तुम्हारा दोस्त मांस-मछली नहीं खाता, यही बताओगे न." जब मूसा ने सिर हिलाकर हामी भरी तो फरीद मियां ने मुस्कराकर कहा, "अरे बेटे हमारे घर भी दो-दो जने हैं जो बस घास-फूस खाकर जीते हैं. फातमा तुम्हारा चाचा जाने क्या कर रहा है उधर? उससे कहो आने को."

फरीद मियां ने सहदेव ठाकुर के बारे में दोनों को बताया.

जब सहदेव ठाकुर भीतर आ गया तो फरीद मियां ने अपने अब तक के दिये परिचय को आगे बढ़ाते हुए कहा, "जब हमारे घर के एक कमरे में कुरान की आयतें पढ़ी जाती हैं तो ये दूसरे में रामायण की चौपाइयां गाते हैं."

डाक्टर मोरिस क्यूरे का दफ्तर देफोर्ज गली में था. एक कमरा दवाइयों की बोतलों और शीशियों से भरा हुआ था और दूसरा कागजातों से. कागजातोंवाले कमरे में डाक्टर ने हरि और मूसा को बिठाया था. कमरे में तीन ही कुर्सियां थीं इसलिए फरीद मियां कोने में पड़े हुए साबुन के खाली डिब्बे पर बैठ गया था. दोनों नौजवानों की बातों को डाक्टर क्यूरे ने बड़े ही ध्यान से सुना. हरि ने मदन की चिट्ठी उसे दी. आयतें उसने उसे पढ़ने के बाद कहा था. "मुझे बहुत खुशी हो रही है तुम लोगों से मिलकर. उत्तर प्रांत में यूनियन की नींव डालकर तुम दोनों ने सचमुच ही बहुत बड़ा काम किया है. अभी दो ही दिन पहले जब दक्षिण और पूर्वी इलाकों में मैं मीटिंग कर रहा था तो एकाएक यह खयाल आया था कि उत्तर प्रांत उतना शिथिल कैसे! अब तो लगता है कि मेरा ऐसा सोचना एकदम गलत था. इस पत्र में मदन ने जो विश्वास तुम दोनों पर दिखाया है, उससे मुझे भी पूरा यकीन है कि तुम दोनों उस प्रांत के मजदूरों को संगठित करने और संघ के कार्यों को अधिक गतिशील बनाने में कुछ भी बाकी नहीं छोड़ोगे. मेरा दफ्तर तुम लोगों के लिए सदा खुला रहेगा और मेरा सहयोग बराबर बना रहेगा."

तब तक उस दूसरे कमरे में दो-तीन रोगी आ गये थे. घुंघराले बाल वाली परिचारिका से इस बात की सूचना पाकर डाक्टर क्यूरे ने कहा, "मैं इन रोगियों को देख आता हूं." कोई आधे घंटे बाद जब तीनों व्यक्ति डाक्टर को छोड़ने को हुए तो उसने उससे कहा, "इन रोगियों को दवा-दारू से अच्छा करने में उतनी कठिनाई पेश नहीं आती जितनी कुछ अच्छे-खासे लोगों को यह समझाने में आती है कि वे बीमार नहीं हैं. वे जिस जगह पर पड़े हुए होते हैं, वहां से उनको यह विश्वास देकर

लघुकथा

आंदोलन

☐ दास वीरेंद्र चैतन्य

दूर तक फैला वन, सुरक्षित क्षेत्र होते हुए भी सांझ ढलते ही पास के गांवों के निवासी शिकारियों की बंदूकों से निकलने वाली तेज आवाजों से तड़फ-तड़फ कर कराहते हुए से लगते. बंदूकें, भाले, लाठियां जिसके पास जो भी हथियार होता, लेकर वन में निकल जाता. धीरे-धीरे वन के सभी हिरन, चीतल, बारहसिंघे और खरगोश जैसे जानवर मारे जा चुके थे.

अपने आहार के अभाव में वन के शेर, चीते संयम खोकर वन में घास और लकड़ी के लिये आती महिलाओं और गांव के पशु बाड़ों पर आक्रमण करने लगे.

इन हिंसक जानवरों से सुरक्षा पाने के लिए गांव-गांव में प्रदर्शन और आंदोलन होने लगे थे, वहशी कह-कहकर इनको मारा जाने लगा था, मिटती नस्ल को बचाने के लिए संबंधित विभाग ने आहार की कमी को ही मुख्य समस्या मानकर शेर-चीतों के आहार के लिये अन्य वनों से काफी संख्या में हिरन, चीतल एवं अन्य सभी प्रकार के पशु लाकर इस वन में छुड़वा दिये. वन की रातें फिर से चमकने लगी थीं, वही शिकारियों का नंगा नाच, सीमित संख्या के पशु चंद दिनों में ही गांव वालों के चूल्हों पर पक चुके थे.

साथ ही हिंसक और वहशी जानवरों से सुरक्षा पाने के लिए स्थगित आंदोलन पुन: जोर पकड़ने लगा था. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...इकट्ठा करना और चलने के लिए तैयार करना बहुत कठिन काम होता है. मजदूरों को आयोजित-संगठित करते समय यह जान लेना आवश्यक है कि जो लोग इन बातों को नहीं जानते, इसकी कठिनाइयों के लिए पहले ही से तैयार नहीं होते, वे ऐसी स्थितियों के आ जाने पर हताश हो जाते हैं. ...की बात है, पंडित सहदेव बता रहा था कि दक्षिण प्रांत की कुछ आयोजनकर्ता मजदूरों के झिझक और असयोग के कारण वह बड़ा निराश है. तुम दोनों को अपने इलाके के मजदूरों के भीतर बैठे हुए ...को सबसे पहले मिटाना होगा.''

हरि ने कहा, ''हम वैसा ही करेंगे डाक्टर साहब जैसा कि आप चाहेंगे.''

जब हरि अपने साथ आये दोनों व्यक्तियों के साथ डाक्टर क्यूरे से विदाई लेने के लिए खड़ा हुआ तो डाक्टर ने कहा, ''ठहरो एक मिनट.'' दफ्तर की अलमारी को खोलकर उसने ट्रेडयूनियन संबंधी कुछ पत्र-पत्रिकाएं निकालीं और हरि को थमाते हुए कहा, ''इन पत्र-पत्रिकाओं से तुम्हें ट्रेडयूनियन जगत की बहुत-सी बातें जानने को मिलेंगी.''

उन्हें लेते हुए हरि ने कहा, ''मेरसी दोक्तेर!''

फरीद मियां को किसी काम से निकलना था. हरि ने उसके सामने घुड़दौड़ में उन दृश्यों को देखने की इच्छा व्यक्त की थी, जिनकी दर्दनाक चर्चाएं वह सुनता रहा था. इसलिए घर पहुंचकर फरीद ने सहदेव ठाकुर से कहा कि वह हरि और मूसा के साथ हो ले. सहदेव ठाकुर आज बच्चों को खेल दिखाने इसलिए नहीं निकल सका था क्योंकि उसकी मशीन की चाबी के अटक जाने के कारण तस्वीरें चल नहीं पा रही थीं. खाने के समय उसने हरि के साथ जो थोड़ी-बहुत बातें की थीं उनसे वह उसके प्रति आकर्षित हुए बिना नहीं रह पाया था. उन दोनों से कुछ अधिक बात कर सकने के उस लोभ से वह अपने को नहीं रोक सका. वह जब दोनों को अपने साथ लिए शां-दे-मार्स पहुंचा तो पहली दौड़ होने ही वाली थी. पर हरि घुड़दौड़ देखने तो आया नहीं था. वह तो गांव से आये हुए मजदूरों की उस जिल्लत को देखना चाहता था जिसकी चर्चा करते समय परकाश की आंखों में बरबस ही एक दर्द का-सा भाव झलक आया था. उस दिन परकाश ने दर्द भरे स्वर में कहा था कि यह सही है कि मजदूरों को उस तरह अपमानित करने की यह मालिकों की साजिश थी लेकिन अगर मजदूरों को अपने मान-अपमान का भान होता और अपने स्वाभिमान की पहचान होती तो वे खुद अपनी बेइज्जती के लिए उस तरह दौड़ नहीं पड़ते.

शां दे मार्स के उस विस्तृत मैदान को उस तरह आदमियों से खचाखच भरे देख हरि को आश्चर्य हुआ. उसने अपने आप से सवाल किया कि क्या ये वे ही लोग हैं जिनमें से कितनों के घर दो वक्त चूल्हे नहीं जल पाते, जिनके पास अपने बच्चों को स्कूल भेजने की हैसियत नहीं? औरतों और मर्दों के उस हुजूम में बच्चे भी उस धूप में झुलस रहे थे. जिनके पास हैसियत थी उनके बच्चे अपने बाप के कंधे पर सवार मिठाइयां या बतासे खा रहे थे. पर ऐसे बहुत कम थे. प्राय: सभी बच्चे अपने मां-बाप से कुछ न कुछ खरीदने की मांग करते हुए ठुनकते-रोते दिखाई पड़ रहे थे. उन बच्चों के बदन पर न ढंग के कपड़े थे न चेहरे पर कोई रौनक थी. मां-बाप उसके तकाजों के कारण उन ठोरों पर भी नहीं ले जा रहे थे जहां चर्खियां चल रही थीं और दूसरे हैसियतवाले बच्चे काठ के घोड़ों पर सवार मस्ती से झूम रहे थे.

शां दे मार्स के उस मैदान के बीच खड़े होकर हरि ने एक बार चारों ओर देखा. मैदान खचाखच भरा हुआ था. बगल की पहाड़ी पर भी लोगों की भीड़ थी. उस दूसरी ओर की ऊंचाई पर जो पुराना किला था, उसके इर्द-गिर्द जो लोग खड़े मैदान की भीड़ का लुफ्त उठा रहे थे, उसी इलाके के शहरी लोग रहे होंगे. हरि ने ऐसा ही सोचा. गोरे और काले धनपतियों की सुविधा के लिए बनी वह सफेद इमारत भी भरी हुई थी. उस पर अंग्रेजी और फ्रांसीसी झंडे फहर रहे थे.

सहदेव ठाकुर के साथ उस भीड़ के बीच घूमते हुए हरि ने एक जगह पर कुछ शहरी मनचलों को एक गंवार परिवार को छेड़ते हुए देखा. वे एक लड़की के दुपट्टे को खींच-खींचकर उसके साथ छेड़खानी कर रहे थे. हरि ने जब वहां रुकना चाहा तो सहदेव ठाकुर ने यह कहकर उसे आगे खींच ले गया, ''ये लोग जेब में चाकू-खंजर लिये होते हैं. कहां वे दस कहां हम तीन.''

एक दूसरी जगह पर हरि ने तीन-चार गुंडों को एक औरत के गले से चांदी के हार को नोचकर भागते देखा. उनके पीछे दौड़ने की उसकी इच्छा तो हुई पर वे देखते ही देखते भीड़ में खो गये. एक शराबी उन मजदूरों के बीच इस तरह गालियां बके जा रहा था गोया कोई गाना गा रहा हो.

पहली दौड़ शुरू होते ही लोगों का चीखना-चिल्लाना शुरू हुआ और जैसे-जैसे घोड़े आगमन रेखा के करीब होते गये, वैसे-वैसे लोगों का वह चीखना-चिल्लाना बढ़ता गया. घोड़े पर दांव लगानेवालों में से जीतनेवाले तो पागलों की तरह चिल्लाते रहे पर जिनके घोड़े पीछे रह गये थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका चिल्लाना एकाएक बंद हो गया था.

परकाश ने हरि से कहा था कि इन मरियल घोड़ों की दौड़ के समय बड़े लोग ठाठ से भवन के भीतर बैठकर घोड़ों की दौड़ से कहीं अधिक गांव से पहुंचे उन हजारों मजदूरों के पागलपन को देखकर आनंद उठाते हैं. उसने यह भी बताया था कि घोड़े दौड़ानेवाले गोरे कई डिब्बे कागजों से भरे ले आते हैं. जिन पर घोड़ों के नंबर लिखे होते हैं. दांव लगानेवालों से उन लॉटरियों को बेचकर जब आखिरी दौड़ के बाद घर लौटते हैं तो कागजों की जगह डिब्बों में नोट ही नोट भरे होते हैं.

आखिरी दौड़ तक सहदेव ठाकुर और मूसा के साथ इधर से उधर टहलता हुआ हरि धनपतियों के मनोरंजन के साधन बने गांव से पहुंचे उन मजदूरों को देखता रहा. वहां पहुंचे वे तमाम मजदूर खुद दूसरों के लिए तमाशा बने हुए थे. हरि को अपने ही गांव के तांबी, महादेव और दादिबल मिल गये. तांबी ने हरि को देखकर धीरे से कहा, ''एक चवन्नी दे सकते हो?''

''क्यों घर से बिन पैसे के आये थे क्या?''

''पैसा तो था पर...''

''घोड़े पर हार गये?''

''साले तीनों घोड़े बेकार निकले. रेल के टिकट का पैसा भी चला गया.''

हरि ने उसके हाथ में चवन्नी रख दी. तांबी, दादिबल और महादेव के बीच चला गया.

सहदेव ठाकुर ने मुस्कराकर कहा, ''ऐसे सैकड़ों लोग अभी टिकट के किराये के लिए छटपटा रहे होंगे.''

मूसा अपने इर्दगिर्द के लोगों के चेहरों की मुर्झाहटों को देखता हुआ ठाकुर और हरि के साथ आगे बढ़ता रहा.

सहदेव ठाकुर से फिर मिलने का वायदा करके हरि मूसा के साथ स्टेशन की ओर बढ़ने को हुआ.

दोनों से रुखसत लेने से पहले सहदेव ठाकुर ने कहा, ''कल रविवार है न! कल मैं फरीद भाई जान के साथ तुम दोनों के गांव पहुंचूंगा...बच्चों को खेल दिखाने.''

''हमें बड़ी खुशी होगी चाचा, जरूर आना.''

इसके बाद हरि ने मूसा से कहा, ''चलो, नहीं तो गाड़ी छूट जायेगी.''

उसने जो देख लिया था वही बहुत था. उससे तो यह भी कहा गया था कि सैकड़ों लोग जिन्हें आखिरी गाड़ी में जगह नहीं मिल पाती है, वे शहर की गलियों और पटरियों में अपने बीवी-बच्चों के साथ रात बिताने को मजबूर होते हैं. उस रात चोरी-चपाटी के साथ मजदूरों की बीवी बेटियों के साथ बलात्कार भी होते रहते हैं. मैदान से निकलकर आम सड़क तक पहुंचते हुए हरि जो कुछ देखता रहा, उससे यह अनुमान लगा सका कि इस उजाले के मिटते ही अंधेरे में वे मनचले शहरी गुंडे किस हद तक पहुंच सकते थे. गांव से आयी औरतों के बदनों पर आगे-पीछे हाथ फेरकर बड़े ही स्वाभाविक ढंग से उन मनचलों को आगे निकल जाते देख हरि का अपना खून खौलकर रह जाता.

रास्ते भर के उन शर्मनाक नजारों के गवाह बने दोनों दोस्त आगे बढ़ते रहे. स्टेशन की ओर लपकते हुए हरि ने मूसा से केवल इतना ही कहा, ''इसे बंद करना होगा.''

क्रमशः

अगले अंक में

सहदेव ठाकुर का हरि के गांव आगमन...सहदेव ठाकुर का इतिहास...अपने लोगों की तलाश में अपने भले ही मिले या नहीं मिले, अपनापन जरूर मिल गया...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...मेरी बाल्जाक से मुलाकात हो गयी

☐ से.रा. यात्री

अभी-अभी एक निमंत्रण पत्र मिला है जिसमें नगर के एक दिग्गज पत्रकार-साहित्यकार के अभिनंदन समारोह की सूचना है. जिन वक्ताओं को उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर भाषण देने हैं, उनमें सबसे ऊपर मेरा ही नाम है.

ये सज्जन बहुश्रुत बहुमुख हैं. अभी दो महीने पहले सूचना विभाग से अवकाश ग्रहण किया है.रिटायर होते समय उपनिदेशक के पद पर थे. कहा जाता है कि घोर पढ़ाकू किस्म के जीव हैं. कई नगरों के इतिहास लिख चुके हैं. कई शोध ग्रंथ भी तैयार किये हैं. देश-विदेश काभी दौरा करते रहे हैं. अभिनंदन इधर-उधर कई बार हो चुके हैं और कई प्रांतों से पुरस्कार पाने में भी पीछे नहीं रहे हैं.

स्थानीय साहित्यिकों में उनका कुछ इस कदर दबदबा है कि शायद ही कोई ऐसा साहित्यिक समारोह या गोष्ठी होती हो जहां उन्हें अतिथि या अध्यक्ष अथवा संचालनकर्ता न बनाया जाता हो. शाम-ए-सनीचर नाम की एक गोष्ठी तो बरसों से महज उनके विद्वतापूर्ण लतीफे सुनने के लिए ही होती चली आ रही है.

मैं लगभग ढाई दशक से मुख्य शहर से दूर रह रहा हूं इसलिए मेरी भेंट उनसे गाहे-बगाहे ही होती है. हां, कभी-कभी दिल्ली से लौटते हुए या हाट-बाजार में उनसे मुलाकात हो जाती है. उन पर दरबारी संस्कृति का बड़ा जबरदस्त प्रभाव है. मिलते ही चेहरे पर जो हास्य उभरता है, वह दीनता की सीमा तक जा पहुंचता है. खूब झुककर फर्जी सलाम करते हैं, इसके बाद मेरी उपलब्धियों और साहित्यिक क्रिया-कलापों का इस शैली में बखान करते हैं, जैसे उनके पास मेरी रचनाएं पढ़ने और मनन करने के अलावा और कोई काम ही नहीं बचा है.

एक बार तो उन्होंने वह कमाल कर दिखाया कि लगभग बीस वर्षों के बाद भी जब मुझे उसकी याद आ जाती है तो मैं उनके ज्ञान और अध्ययनशीलता को लेकर उलझन में पड़ जाता हूं. हुआ यह था कि एक शाम मैं हाट-बाजार करके घर की ओर लौटने के लिए रिक्शे की तलाश में था कि वह अचानक सामने से आ गये और छूटते ही बोले, ''बधाई हो भाई साहब. मैंने आपकी रचना 'गर्दिश के दिन' पढ़ी. भई क्या खूब लिखी है. कोई पढ़कर देखे तो पता चले कि हमारी राष्ट्रभाषा में कैसे-कैसे हीरा

> **मैं रह-रहकर गहरे आश्चर्य में डुबकी लगाता रहा कि क्या उनकी शोध और अध्ययन की यही दशा और दिशा है...!**

लेखक पड़े हैं. वह कितनी विडंबनाओं और विषमताओं में रहकर अपने रहने जिगर से महान रचनाओं का सृजन करते हैं.'' इसके एक क्षण बाद ही विदेशी लेखकों पर जा पहुंचे, ''अब आप देखिये, विदेशी लेखक कितना ऐश्वर्य भोगते हैं. मैं पिछले टूर में यूरोप गया तो इत्तिफाक से मेरी बाल्जाक से मुलाकात हो गयी.''

मेरी देह झनझना उठी. मैं यह भूल गया कि मैं कहां खड़ा हूं. मैंने उनको टोका, ''बाल्जाक आपको कहां मिल गये?''

''डी ला कैफे में बैठे थे और हैमिंग्वे का इंतजार कर रहे थे. मुझे किसी ने बताया कि सार्त्र भी वहीं बैठकर 'डिवाइन कामेडी' लिखा करते थे.''

अब उनसे आगे बातें करने की कोई तुक नजर नहीं आयी. मैं चलने को था कि तभी मुझे अपने गर्दिश के दिन याद आ गये. मैंने पूछा, ''हां, आपने मेरी 'गर्दिश...' कहां पढ़ी?'' उन्होंने जिस पत्रिका का नाम बताया उसमें तो वह भेजी ही नहीं गयी थी. इसके अलावा संपादक के हाथ में अपनी 'गर्दिश...' मैं स्वयं सौंपकर आया था. मेरे पास संपादक की चिट्ठी भी आ चुकी थी कि अगले एक-दो महीनों में उसका नंबर आयेगा. उनकी बात का कोई सिर-पैर मेरी समझ में नहीं आया पर साथ ही यह अचरज भी बना रहा कि बिना छपे भला उन्हें पता भी कैसे चल गया कि मैंने 'गर्दिश के दिन' नाम की कोई रचना लिखी है.

उनसे विदा लेने से पहले मैंने फिर पत्रिका का नाम पूछा जो उन्होंने फिर गलत बताया. मैंने तैश में सोचा कि घर जाते ही पहला काम संपादक को कड़ा पत्र लिखने का करूंगा. आखिर उन्होंने यह क्या किया कि रचना अपनी पत्रिका के लिए ली और ठेल दी एक ऐसी पत्रिका में जिसमें उसके छपने का कोई महत्व ही नहीं था.

मैंने नमस्कार करके उनसे विदा ली और रिक्शा पकड़कर घर की दिशा में चल पड़ा. घर पहुंचने के बाद भी वह गर्दिशवाली बात मेरे दिमाग में, दांत में फंसे तिनके की तरह अटकी ही रही.

यह तो मुझे बराबर लगा कि कहीं घपला जरूर है क्योंकि जो आदमी पिछले दिनों ही बाल्जाक से मिलकर आया है और सार्त्र से 'डिवाइन कामिडी' लिखवा चुका है, उसने मेरी 'गर्दिश...' भी कहीं की कहीं पढ़ मारी हो. इसमें आश्चर्य ही क्या है, पर फिर भी बिना छपे उसे पता भी कैसे चला?

घर पहुंचने के बाद भी मैं वह भूला नहीं. खाना खाकर आराम से एक दैनिक लेकर दीवान पर पसर गया. अभी मैंने तीसरा पृष्ठ उल्टा ही था कि मेरी नजर उस पत्रिका में अगले मास छपनेवाली रचनाओं के विज्ञापन पर पड़ गयी जिसमें मेरी 'गर्दिश...' छपनी थी. पलक झपकते सारा रहस्य खुल गया कि उन सूचना विभागी दिग्गज ने मेरी रचना कहां पढ़ मारी थी.

मैं रह-रहकर गहरे आश्चर्य में डुबकी लगाता रहा कि क्या उनकी शोध और अध्ययन की यही दशा और दिशा है! यह तो मैं अनेक बार सुन चुका था कि पुस्तक पढ़े बिना मात्र उसकी फ्लैप सामग्री देखकर लोग अच्छा भाषण दे डालते हैं, पर यह भी आज देखने में आ गया था कि ऐसे महापंडितों की भी कमी नहीं है जो किसी पत्रिका में किसी रचना का मात्र विज्ञापन देखकर ही उसकी प्रशंसाओं के पुल खड़े कर सकते हैं.

उन सज्जन का अभिनंदन समारोहवाला कार्ड हाथ में पकड़े हुए मैं सोच रहा हूं कि कहीं उन्होंने उसी नजरिये से तो मुझे इनवाइट नहीं किया है जो उनका अपना है कि रचना पढ़े बिना ही स्वस्ति वाचन का सिलसिला शुरू कर दिया जाये. मैंने तो अब तक उनकी न कोई रचना देखी है न पुस्तक. यहां तक कि किसी प्रकाशन सूची में भी उनकी किसी कृति का नाम नहीं पढ़ा है. अब उन्होंने जब मुझे निमंत्रण पत्र भेजा ही है और बोलनेवालों में शीर्ष पर मेरा स्थान है तो क्यों न मैं भी कहूं कि अभी पिछले दिनों जब मैं शेक्सपीयर से मिला तो उन्होंने आपके 'धूर्तराज' महाकाव्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की. और मुझे किंचित भी आश्चर्य नहीं है कि वह इसे बड़े मजे में पचा जायेंगे. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी कहानी का 'टीपू सुल्तान'

□ सुधीश पचौरी

'आलोचना की पुनर्यात्रा' में अब तक आप पढ़ चुके हैं देवीशंकर अवस्थी, सुरेंद्र चौधरी और डा. नामवर सिंह की कथा समीक्षा पर स्तंभकार की टिप्पणियां. इस बार प्रस्तुत है—कथाकार कमलेश्वर की कथा-समीक्षा पर एक टिप्पणी.

कमलेश्वर नयी कहानी के उन नायकों (खलनायक ?) में से हैं जो लगातार चर्चा और विवाद के केंद्र में रहे हैं. आज भी उनका धारावाह 'आधारशिलाएं' दिलचस्प हलकों में सनसनी उत्तेजना और गुस्सा पैदा करता है. अरसे तक नयी कहानी की 'अस्मिता' के लिए संघर्ष चलाने के बाद से कमलेश्वर का लिखा हुआ लगातार विवादग्रस्त रहा है. अपनी पीढ़ी के लेखकों में वे अति 'चंट', 'चलता पुर्जा', 'अवसरवादी' कहे जाते हैं तो नये लेखकों के बीच वे एक 'खुर्रांट उस्ताद' की तरह लिए जाते हैं. नयी कहानी के संपादन काल में उन्होंने हिंदी के वृद्धजनों को नाराज किया तो 'सारिका' के संपादन काल में उन्होंने 'लघु पत्रिका' आंदोलन पर अनिल घई से हमले करवाए, फिर समांतर आंदोलन चलाया और उसे बिखरते हुए देखा. एक विवादित मिथ की तरह कमलेश्वर कहानी चिंतन में लगातार मौजूद रहे हैं. फिल्मों-टी.वी. में कूदने के बाद भी वे हिंदी वालों को राहत की सांस नहीं लेने देते. ऐसे शख्स के 'कथा चिंतन' पर आज बात करना, कईयों के लिए उनकी चापलूसी करना या बेजा महत्व देना होगा किंतु यदि हम अपनी मातृभाषा को लेकर जरा से भी जिम्मेदार हैं तो हमें 'दाना दुश्मन' को जरूर वकत देनी चाहिए. कमलेश्वर यदि हिंदी कहानी का दुश्मन भी है तो वह एक दाना दुश्मन है, यह नहीं भूलना चाहिए. उसकी असफलताओं से हम सभी सीख सकते हैं.

कमलेश्वर के कथा चिंतन का दौर लंबा है. यद्यपि उसका एक नक्शा शुरू में ही बन गया था. 'नयी कहानी' की अस्मिता को स्थापित करने और बचाने की जद्दोजहद में, राकेश, यादव के साथ जिस व्यक्ति ने लगातार खडगहस्त होकर लड़ाई लड़ी वह कमलेश्वर ही हो सकता था. जो लोग नयी कहानी की इलाहाबादी त्रयी के पीछे चले जाने की बात कहते हैं वे यह तथ्य भूल जाते हैं कि 'नयी कहानी' को विचारधारात्मक एवं आलोचनात्मक अस्त्र मुहैया करने वालों में कमलेश्वर, यादव, राकेश, की त्रयी आगे थी. कमलेश्वर, शायद इस त्रयी में अगले सफों में लगने वाले रहे. नयी कहानी के जरिए भारतीय समाज में कथा को रख के देखने की शुरुआत करने वालों में कमलेश्वर शायद प्रगतिशील समीक्षकों से आगे रहे हैं.

आधुनिक हिंदी कहानी का यह वह दौर था जब नये कथाकार को 'पीर बवर्ची भिश्ती खर' सभी कुछ बनाना पड़ा है. नये लिखने के साथ अपने वक्त के पिछड़ गये किंतु महत्वपूर्ण लोगों को आंखों में उंगली डालकर बतना भी पड़ता था कि 'नया' क्या है? इसीलिए इनके कथा-संकलनों में भूमिकाएं कथाओं जितनी ही महत्वपूर्ण होती थीं.

'राजा निरबंसिया' (५७) की भूमिका, 'बयान' की भूमिका, 'नयी कहानी' की भूमिका (जो अब स्वतंत्र पुस्तक के रूप में अनुपलब्ध है), हिंदी कथा चिंतन के महत्वपूर्ण कालांकित बहसों की ओर संकेत करती है.

नयी कहानी में 'नया' क्या है? नयी कहानी जीवन के साथ कैसे संबंधों को तनाती है? यथार्थ की कलात्मक प्रतिनितिधकता की समझ के बिना इन्हें नहीं समझा जा सकता. 'प्रामाणिक यथार्थ', 'प्रामाणिक अनुभव', 'ईमानदारी', ये तमाम पद कमलेश्वर के वे औजार हैं जिनसे वे एक ओर पुरानी कहानी को नयी से अलगाते हैं, दूसरी ओर नए का दावा पेश करते हैं. तब तक हिंदी आलोचना मूलत: काव्यालोचना का दूसरा नाम था. 'राजा-निरबंसिया' की भूमिका में कमलेश्वर कहते हैं **''हिंदी आलोचकों ने आज के कहानी साहित्य का समुचित अध्ययन नहीं किया अत: नयी कहानी के वैशिष्ट्य और नए पन को पकड़ पाने में वे असफल रहे. इसीलिए कहानियों की आलोचना करते हुए आज भी बहुत से आलोचकों के मुंह से सुन पड़ता है कि कहानी अभी प्रेमचंद्र और जैनेंद्र से आगे नहीं गयी.''**

एक विध्वंसक की तरह कमलेश्वर आज तक पुराने को हटाने में लगे रहे हैं. 'शाश्वत मूल्यों का आग्रह और नयी कहानी', 'कहानी में नया क्या है', 'पुरानी कहानी की जड़ता के कारण', 'प्रेत बोलते हैं' आदि उनके चर्चित लेख पुराने की ध्वंस के बेजोड़ गवाह हैं. कथा चिंतन में ऐसी आवेगमयी और आक्रोशमय अभिव्यक्ति अन्यत्र दुर्लभ है. पुराने की सड़ाँध और व्यतीत पर कोई रहम नहीं. नये के स्वागत के लिए विकलता और उत्सुकता की कमी नहीं. ये पुराने लोग कहानी के रीतिकालीन लोग हैं. इनके नायक कौन हैं. जैनेंद्र हैं. यशपाल हैं. अश्क हैं. कभी-कभार गलती से अच्छी कहानी लिख देने के बावजूद ये लोग 'रीतिकालीन' हैं. क्यों? क्योंकि इतिहास क्रम में यथार्थ परिस्थितियों से निकलकर जो मनुष्य आते-आते रुक गया था, वह भारतीय विचार संपदा और जीवन परंपरा का केंद्रीय व्यक्ति था...पर कथा-साहित्य में उस पर पर्दा पड़ गया. ऐसा रीतिकालीन मनुष्य पैदा कर दिया गया जो अपनी व्यक्तिगत क्रूरता से समस्त सामाजिक संदर्भों को नकारकर अपने मनोलोक में प्रेयसियों के संग में टहल-टहल कर वेदना और दुख पर भाषण दे रहा था...अपनी कुंठाओं को सही साबित कर अपने व्यक्तित्व के चारों ओर प्रभामंडल निर्मित कर रहा था...यह अर्धसामंती अर्धशहरी पाखंडी नायक उस मध्यवर्ग से विपरीत और गिरा हुआ था. समाज के भयानक विघटन को 'झेल' रहा था. कमलेश्वर इसी भारतीय मध्यवर्ग के आंतरिक विघटन में नयी कहानी का नया नायक ढूंढते हैं.

नयी कहानी के इस विघटित नायक की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पृष्ठभूमि कमलेश्वर कभी नहीं भूलते. कारण कि उनकी स्वानुभूत पृष्ठभूमि रही? वह 'कस्बे का आदमी' है. वह शहरी है. महानगर अभी नहीं बने हैं. वे अभी बनने हैं. अभी तो गांव से कस्बे, कस्बे से कुछ बड़े शहर की ओर अग्रगामी शक्तियां धावित हैं. नयी कहानी का रचनाकार वहीं से, इसी यात्रा से आता है. उम्मीद और कुछ कर गुजरने की तमन्ना के बीच आजादी के पहले का आदर्श और उसके बाद जल्द ही आने वाला यथार्थ बेमेल हो जाते हैं. नयी कहानी के विघटित मनुष्य में, विघटन की पहली खबर हमें मिलती है. कमलेश्वर इस 'विघटन' को सामाजिक सत्य कहते हैं और शाश्वतता के पाखंड से उसे लड़ा देते हैं. शाश्वत जीवन के पाखंड और इकहरे पात्र उनकी तीखी आलोचना के शिकार बनते हैं. उन्हें चिढ़ है कि हर कहानी लिखने से पहले ही सद्-असद् के बोझ से दबी जाती है. प्रेमचंद के प्रति इसीलिए कमलेश्वर स्वयं: निसूरुण हैं.

कमलेश्वर के कथा चिंतन की दूसरी विशेषता पुरानी कहानी की 'स्त्री' की 'टाइपोलोजी' सटीक ढंग से पकड़ना है और उसकी व्यर्थता को सिद्ध करना है. नयी कहानी की औरत को स्थापित करने के लिए इस पूर्ववर्ती नायिका की निरर्थकता सिद्ध करना जरूरी था. यहां से नयी पुरानी कहानी की जीवन दृष्टि की नव्यता शुरू होती थी. पुरानी कहानी में 'नवयुवती' वह होती थी जिसके लहाराते काले केश होते थे (बाल नहीं), उसके नीचे ललाट होता था, जिस पर कभी-कभी एक बिंदी लगी रहती थी. ललाट के नीचे भृकुटियां थीं और उनके नीचे चकित मृगी के-से दो नयन थे. ये नयन सजल रहने के काम आया करते थे और इनमें सावन भादों उमड़ते रहते थे. नयनों के पास ही नासिका होती थी और नासिका के दोनों ओर कपोल होते थे (गाल नहीं) नासिका के नीचे अधर होते थे जो अस्पष्ट भाषा में बुदबुदाते रहते थे...गर्दन कभी-कभी होती थी कभी नहीं भी. बाहें बिल्कुल नहीं होती थीं. सिर्फ कोमल हाथ होते थे या कलाइयां. कलाइयों में चूड़ियां बजती रहती थीं और हाथों में सिर्फ एक उंगली होती थी जो आंचल लपेटने के काम आती थी. उसके नीचे कुछ नहीं होता था. सिर्फ पैर होते थे. जिनमें भी एक अंगूठा ही ज्यादातर नजर आया करता था. वह अंगूठा धरती कुरेदने के काम आता था. नवयुवती के पास जबान होती थी. जो सिर्फ 'दुत' या 'मेरी मां नहीं मानेंगी' या 'आप बड़े वो हैं' जैसे दो तीन शाश्वत वाक्य बोलने के काम आती थी.

हिंदी साहित्य की मीनाकुमारियों के इस प्रस्तरीकृत व्यक्तित्व के निर्माताओं के पाखंड की खिल्ली उड़ाए बिना 'मिस पाल' या 'मित्रो' की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी. कमलेश्वर पुरानेपन के इसी मर्म प्रदेश पर प्रहार करते हैं जो स्त्री को अपने त्याग, तपस्या और भोग की देवदासी बनाए रखना चाहता था. किंतु किसी दबंग स्त्री के सामने पड़ जाने पर पाजामा गीला कर बैठता था. आधुनिक भारतीय स्त्री की ऐसी गहन पहचान कमलेश्वर के इस आत्मसंघर्ष की अन्यतम विशेषता है. वे जीवन को विकलांगता नहीं समग्रता और मानवीयता में देखने की वकालत करते हैं. जिस स्त्री के सिर्फ मुख है, उंगली है, पैर का अंगूठा है, वह विकलांग बनायी गयी औरत ही है. कमलेश्वर इस औरत को समूचा व्यक्तित्व देने की मांग करते हैं.

इलाहाबाद कथा-समारोह हो या कोई अन्य घटना, पत्र-पत्रिकाएं हों या अनौपचारिक बहसें, कमलेश्वर ने हमेशा नयी कहानी के शत्रुओं से निरंतर युद्ध किया. 'नयी कहानी और संत्रस्त लोग' में जैनेंद्र को कक्षा चार के विद्यार्थी कहलवाना (राकेश ने कहा था) जमाने में कम साहस का काम न रहा होगा.

कमलेश्वर की लेखमाला 'प्रेत बोलते हैं' इस संदर्भ में नयी कहानी की अंतिम एवं निर्णायक विजय को घोषित करने वाली कही जा सकती है, जिसकी चर्चा के बिना यह कमलेश्वर-चर्चा अधूरी लगेगी. यह लेखमाला 'धर्मयुग' में छपी थी. इसमें नयी कहानी के आत्मसंघर्ष का दुहरा रूप खुलकर सामने आ गया था क्योंकि १९६५-६६ तक नयी कहानी इतिहास बन चुकी थी.

'प्रेत बोलते हैं' में प्रथम स्मरण की तरह मुक्तिबोध की सद्यः मृत्यु आती है जिन्हें उन प्रेतात्माओं ने अपने प्रमोद में व्यक्तिवादी, रुग्ण और ह्रासोन्मुख शक्तियों के हाथों में सौंपकर एक गहरा मौन साध लिया था. ये प्रेतात्माएं कौन हैं? ये हिंदी समीक्षा में मौजूद हैं. इन प्रेतात्माओं को हर बार बलि चाहिए. मुक्तिबोध की बलि ली. अब किसकी बारी है. कमलेश्वर पूछते हैं. यह लेखमाला मुक्तिबोध के 'समीक्षा की समस्याएं' की तरह आवेश में लिखी गयी है. इन प्रेतों ने सूरदास को कामुक कहा, पंत को 'गौण' प्रसाद को पुनरुत्थानवादी, समहादेवी को व्यक्तिनिष्ठ, कुंठित और असामाजिक, निराला को उद्धत और यशपाल को सैक्स ग्रंथियों से ग्रसित.

स्पष्ट है कि ये 'प्रेत' प्रगतिवादी समीक्षा के खंडहरों से निकले हैं. तलवार मार्का प्रगतिवादी समीक्षा करने में रामविलास और शिवदान दोनों में होड़ है. मजाक यह कि उनमें भी लड़ाई है. तलवार को लेकर. कमलेश्वर नयी कहानी को इन प्रेतों की तलवारों से बचाते हैं. इन प्रेतों को 'नया' नहीं दिखाई देता. जो दिखता है वह अपने प्रगतिशील खंडहर में पड़ी हुई सूखी ठठरियों का ढेर. वे चाहते हैं कि मान्यता मिले तो इन्हें, इन ठठरियों को. अश्क, बेदी, कृश्न चंदर से इनके लिए नयी कहानी नामक चीज व्यर्थ और अजन्मी है.

इसी क्रम में 'कथा समीक्षा और पराजित पहरुए' लेख नयी कहानी की समीक्षा को लेकर अपनाए गये कैजुअल और काम चलाऊ खेमे को धिक्कारता हुआ कहता है कि कथा-क्षेत्र में कार्यरत रहने के लिए आलोचक में अपार धीरज का अभाव है. यहीं कमलेश्वर कहते हैं अब यथार्थ की कसौटी पर भी कहानी को परख सकना नामुमकिन होता जा रहा है. इशारा स्पष्ट है. स्पष्ट है नामवर सिंह के समीक्षा-औजार १९६६ तक आते आते चुक गये थे. उनकी समझ रुढ़ हो गयी थी. वे अभी तक यानी (१९६६ तक) 'साहित्यिक यथार्थ' को ही मानव यथार्थ माने हुए बैठे हैं.

यह सचमुच खेद की बात है कि एक वक्त में अत्यंत उद्दीप्त भाव हिंदी कथा समीक्षा बहुत जल्दी ही बुझ गयी. कमलेश्वर के कथा चिंतन में बार-बार हिंदी कथा समीक्षा के अपने मिजाज को देखने की तमन्ना जोर मारती रही और आज भी वे नयी कहानी की रक्षा में सर्वाधिक तत्पर रहते हैं. 'समांतर' तक आते-आते उनके कथा-चिंतन में हिंदी कहानी के इतिहास को लिख सकने की व्याकुलता देखी जा सकती है. हम उनसे असहमत हो सकते हैं, किंतु नयी कहानी और कहानी को एक विधा के रूप में अलग से पहचानने की उनकी ललक को कथा-चिंतन के इस समकालीन शून्य में महत्वपूर्ण मानना होगा.

यदि हिंदी कथा समीक्षा और 'सिनिसिज्म' में यदि कोई फर्क नहीं रह गया तो इसका बहुत कुछ श्रेय समीक्षकों का रचना के प्रति एक 'क्षत्रप' का, एक प्रतिहिंसक का, एक धंधाखोर का रवैया रहा है. कमलेश्वर जब कहते हैं कि यह हिंदी का दुर्भाग्य ही है कि आलोचना के क्षेत्र में नामवर सिंह तक आते-आते आलोचक के प्रति रचनाकार की दिलचस्पी ही खत्म हो गयी, तो प्रकारांतर से वे दुखद सत्य का ही उद्घाटन करते हैं. □

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक प्रेमी

□ गोपाल शेखरन

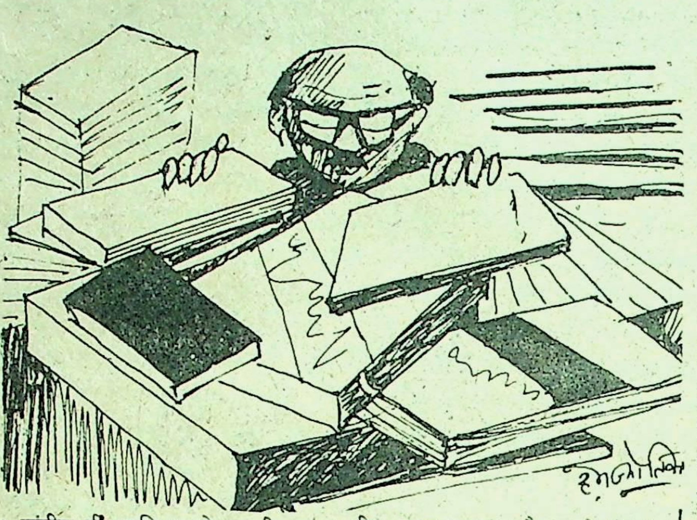

प्रगति मैदान में पुस्तक मेला चल रहा था. मैंने अपने एक विख्यात लेखक मित्र के साथ इस मेले में योगदान देने का निश्चय किया. पुस्तक मेले के तीसरे दिन हम दोनों प्रगति मैदान पहुंच गये. टिकट लेने से पूर्व हमने मंत्रणा की और अपने बजट को दृष्टि में रखते हुए हमने सौ-दो सौ की पुस्तकें प्रति व्यक्ति खरीदने का निर्णय ले लिया.

टिकट लेकर हमने प्रवेश किया. सबसे पहले हमने लघुशंका कर ली. जिससे अंदर जाकर पुस्तकों के दाम सुनकर यह शंका उत्पन्न न हो जाये. हम सबसे पहले सामने के गेट नंबर एक में प्रवेश कर गये. पुस्तकों के दर्शन हुए तो हमें ऐसे लगा जैसे हमारे कानों में संगीत की मधुर झंकार बजने लगी है. हमने पुस्तकों के दर्शन करने आरंभ कर दिये. इस प्रकार शुद्ध वातावरण में मैंने अपने मित्र से कहा, ''भाई, मैं आतंकवाद पर एक पुस्तक लिख रहा हूं. यदि कोई ऐसी पुस्तक दिखाई दे जिसमें कोई पागल लगने वाला व्यक्ति बंदूक लिए खड़ा हो तो मुझे बता देना. मुझे ऐसी एक पुस्तक अवश्य खरीदनी है.''

इस पर मेरे मित्र ने कहा, ''मैं मछली पकड़ने वालों के जीवन पर एक उपन्यास लिख रहा हूं, यदि तुम्हें किसी पुस्तक के मुख पृष्ठ पर मछली का चित्र दिखाई दे या मछली पकड़ने का जाल दिखाई दे तो मुझे बता देना. मुझे भी ऐसी पुस्तक अवश्य खरीदनी है.''

हममें कुछ समय तक पुस्तकों को देखने का बड़ा उत्साह रहा. हम स्टाल में प्रवेश कर पहले बेचने वालों को देखते जो हमसे अधिक मोटे-ताजे थे. फिर हम पुस्तकों को देखते जो हम जैसी कमजोर थीं. कुछ पुस्तकों को हम उठाकर खोलते तो हमारे अंदर संगीत की ध्वनि बजने लगती. पर जब हमारी दृष्टि उनके मूल्यों पर जाती, हमारी आंखों के आगे अंधेरा छा जाता.

उसके बाद हमने बाहर से ही पुस्तकों के मुखपृष्ठ पढ़ने आरंभ कर दिये और आगे बढ़ते गये. हमने देखा कि कहीं प्रेमचंद और गोर्की बड़ी गंभीरता से हमारी जेबों में झांक रहे हैं. कहीं यशपाल हमें देखकर मुस्करा रहे हैं, कहीं गोर्की हम से हाथ मिलाने को उत्सुक लगते हैं और कहीं नागरजी कह रहे हैं, 'कुछ कहो, कुछ ऊंचा बोलो, सुनाई नहीं दे रहा है.' कहीं हमें ऐसे लगा कि रेणुजी हमें देखकर कह रहे हैं, 'मैंने आप दोनों को पहचाना नहीं.'

हम आगे बढ़े. मेरा मित्र एक स्टाल पर रुका और मुझे सुनाते हुए चिल्लाया, ''मिल गयी आपकी पुस्तक, वह देखो, एक अंग्रेज हाथ में बंदूक लिए खड़ा है.''

मैंने देखा कि अंग्रेज त्रिसन बंदूक उठायी हुई थी. सेना की वर्दी में था और पुस्तक द्वितीय विश्व युद्ध के बारे में थी.

मैंने अपने मित्र को समझाया, ''यह पुस्तक आतंकवाद पर नहीं, विश्वयुद्ध पर है''. फिर मैंने उस पुस्तक को खोलकर, उसके दाम पढ़ते ही वह पुस्तक तुरंत बंद कर दी—दाम बारह सौ रुपये लिखे थे.

इसके बाद हम आगे बढ़े. मैंने एक पुस्तक देखी और मैं चिल्ला पड़ा, ''मिल गयी आप की पुस्तक मित्र. वह देखो, उस पुस्तक के मुखपृष्ठ पर मछली का चित्र बना है.''

उसने देखा और बोला, ''यह पुस्तक मछलियों के विषय में है, मछली पकड़ने वालों पर नहीं.'' फिर उसने भी पुस्तक खोलकर देखी और बोला, ''दाम पंद्रह सौ रुपये,'' और तत्काल पुस्तक वहीं रख दी.

हम बाहर निकले और वह बोला, ''लगता है, ये पुस्तकें तो हम अगले जन्म भी नहीं खरीद सकते.'' इसी बीच हम एक आकर्षक स्टाल में घुस गये. वहां बैठे एक व्यक्ति ने हमारे हाथों में एक मोटी सूची पुस्तिका पकड़ा दी. मैंने सूची-पुस्तिका के अंतिम पन्ने को देखा. लगभग नब्बे पृष्ठों की थी वह सूची पुस्तिका. यह मुफ्त में मिल रही थी. फिर हमने पुस्तकें देखनी आरंभ कीं. हमने एक पुस्तक उठाकर देखी-लगभग सौ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य पचास रुपये था.

हम बाहर निकले और मैंने कहा, ''पुस्तकें क्या खरीदनी हैं, अब हम जिस स्टाल में जायेंगे वहां की सूची पुस्तिका उठा लेंगे.'' इस प्रकार हम अपने थैलों में पुस्तिका-सूची भरते गये. हम दोनों प्रतिभा संपन्न लेखक उस समय पुस्तक सूचियां बटोरते हुए कल्पना-शक्ति से विहीन हो गये थे. हमारे थैले लगभग भर चुके थे.

इस प्रकार घूमते-घूमते हम उस स्टाल पर पहुंच गये, जो हम दोनों के प्रकाशक का था. वहां प्रवेश करते ही हमारे कानों में संगीत की तरंगे प्रवेश करती गयीं. जब हमने अपनी-अपनी पुस्तकें रैकों पर लगी देखीं तो हमारा सिर गर्व से ऊंचा हो गया. हमें अपनी पुस्तकों के दाम तो पता थे. मैंने कहा, ''ऐसा करते हैं कि तुम मेरी पुस्तकें खरीद लो, मैं तुम्हारी पुस्तकें खरीद लेता हूं. हमारे आनुमानित बजट में तो हम दो-दो पुस्तकों से अधिक खरीद नहीं सकते.''

हम दोनों में सहमति होते देर नहीं लगी.

हम बुरी तरह थक चुके थे. हमें थैले उठाने में कठिनाई हो रही थी. हम बाहर निकले. जब हम गेट से बाहर निकले तो हमें ऐसे लगा कि हमारे थैलों में कई पुस्तक सूचियां हैं—जिनमें हमारे जीवन की, हमारे वक्त के सूची पत्र भी हैं. फिर हमें ऐसे लगा कि प्रेमचंद, गोर्की, यशपाल, रेणुजी और नागरजी हम दोनों को देखकर हमारे ऊपर हंस रहे हैं और ठहाके लगा रहे हैं.

हम जब प्रगति मैदान से बाहर निकले तो मेरे कंधे पर लटके थैले पर झटका लगा. मैंने अपने मित्र से कहा, ''भाई, मुझे ऐसे लग रहा है कि मेरे थैले में पुस्तकें न होकर मरी हुई मछलियां हैं.''

वह बोला उठा, ''मित्र, मुझे भी ऐसे लग रहा है कि थैले में पुस्तकें नहीं बंदूक के शिकार, मरे हुए कौवे हैं.'' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषोत्तम

□ भगवतीशरण मिश्र

अभी भी सारी बातें पारदर्शी शीशे की तरह स्पष्ट हैं उनके सामने. वही चोरी वाली बात! स्यमंतक की चोरी. कभी-कभी हंसी भी आती है उन्हें! किशोरावस्था से लेकर द्वारिकाधीश कहलाने तक जीवन-क्रम में इतनी ख्याति, इतना यश अर्जित करने के पश्चात इस कर्म का भी उत्तरदायी बनना था उन्हें? माना संघर्ष-संकुल रहा जीवन-मार्ग पर संघर्ष के इन असंख्य कांटों में से भी एक सुरभित सुमन की तरह ही तो प्रस्फुटित हुआ है उनका जीवन-पुष्प. नहीं? कीर्ति और उपलब्धि के सोपान दर सोपान चढ़ते, वय के जिस मोड़ पर वे खड़े जहां संपूर्ण आर्य-भूमि के नृपतियों की जय-जयकार और उनके स्तुति-गान ने असंतुलित नहीं कर दिया उन्हें, यही क्या कम है? पर नहीं, संतुलन खोना उन्होंने सीखा ही नहीं. सुख-दुःख, मान-अपमान, कीर्ति-अपकीर्ति सबमें सम रहना उनके जीवन-दर्शन का एक महत्वपूर्ण अध्याय है. कभी समय आया तो पूरी व्याख्या ही प्रस्तुत करेंगे अपनी जीवन-दृष्टि की. अभी तक तो लोग उनके कृत्यों के ही साक्षी रहे हैं, उनके चिंतन, उनके दर्शन से कहां ठीक से परिचय हो पाया किसी का? अनुकूल समय की प्रतीक्षा है उन्हें. कभी खोलेंगे वे अपने मन की गांठों को. उन्मुक्त होगा उनका चिंतन प्रवाह—किसी पर्वतीय प्रपात की तरह ही स्वच्छंद, निर्मल और निर्बाध. पर अभी? अभी तो लगा है मस्तक पर यह कलंक. द्वारिका में गत दो दिनों से चर्चा का एक ही विषय है—कृष्ण ने अच्छा नहीं किया यह। माना स्यमंतक-मणि मूल्यवान है. शुभ है वह. जहां रहता संपत्ति की वर्षा ही होती है वहां. सारे शुभग्रह कुंडली मारकर ही बैठ जाते हैं उस गृह में, जहां बास होता है स्यमंतक का. मंगल-मय, कल्याण-मय बन आता है वह परिवेश जहां पड़ा रहता है स्यमंतक. विजय-श्री वरण करती है इसके धारक को. पर यह क्या कि मांगने से नहीं मिले तो चोरी ही कर लें उसकी!

हां, मांगा था, अवश्य मांगा था उन्होंने स्यमंतक को सत्राजित से. पर अपने लिए नहीं. चाहा था उसे नृप उग्रसेन के लिए. असल राजा तो वही थे. भले कृष्ण द्वारिकापति के रूप में ख्यात थे पर राज्य तो उग्रसेन का ही था. और राज्य की सर्वाधिक बहुमूल्य एवं शुभ वस्तु को तो राजा के पास होना ही चाहिए. एक व्यक्ति के पास होने से तो स्यमंतक-मणि केवल उसी का कल्याण कर सकती. राजा के पास आकर वह संपूर्ण प्रजा के कल्याण और समृद्धि का कारण बन सकती थी. तब वह सही हाथों में 'सर्वे भवंतु सुखिनः' के आर्य-आदर्श को अर्थ दे सकती थी. नहीं, स्यमंतक को सत्राजित की निजी संपत्ति बनकर नहीं रहना था, उसे तो राज्य-कोष में आना ही था और यही सोचकर उन्होंने सत्राजित से मणि की मांग की थी. समझनेवाले समझ गये कि अपना कंठहार बनाने के निमित्त ही कृष्ण ने चाहा है इस देदीप्यमान मणि को. जैसे अब तक मन ही नहीं भरा उनका दैहिक साज-श्रृंगार से. किशोरावस्था में मोर-पंख सजाते रहे माथे पर तो अब स्यमंतक को ही मुकुट में जड़ने का शौक हो आया है उनको. उन्हें इस अवस्था में भी हंसी आ रही थी. नील वर्ण पर शोभित यह पीतांबर ही क्या पर्याप्त नहीं था उनके व्यक्तित्व को यथेष्ट आकर्षण प्रदान करने के लिए? किसी मणि-मूंगे और रत्न-आभूषण की क्या आवश्यकता थी उन्हें इस नाशवान तन को सजाने-संवारने हेतु? तन की क्षणभंगुरता और आत्मा की अमरता संबंधी शाश्वत सत्य से परिचय नहीं था क्या उनका? यह विनाशशील शरीर तो अमर आत्मा का आवास-मात्र है. अधिक-से-अधिक उसका वाह्य आवरण, वस्त्र-मात्र है यह आत्मारूपी शरीर का. निरंतर जर्जर और जीर्ण होते-होते अंततः निश्चित विनाश को ही तो प्राप्त होता है वह. तो इस शरीर को सजाने के लिए स्यमंतक की चोरी के सदृश कुकृत्य पर उतरेंगे वे? जैसा सोचा है, उचित अवसर पर अपने जीवन-दर्शन की व्याख्या करेंगे वह, तब संसार समझेगा शरीर का क्या महत्व है उनकी दृष्टि में. पर अभी तो एक भयानक प्रश्न चिह्न बनकर ही अड़ा है यह स्यमंतक उनके समक्ष. सभी सत्राजित के सदृश लोभी और मिथ्यावादी की बातों में आ बिना सोचे-समझे मणि के अपहरण का आरोप लगा बैठे हैं उन पर.

दोष उनका भी कुछ कम नहीं है. सभी लोगों की तरह स्यमंतक की चकाचौंध ने उन्हें भी तो चकित कर दिया था.

सत्राजित बहुत दिनों से द्वारिका से गायब था. कहा जाता था कि वह किसी अरण्य गुहा-गह्वर में तपस्यारत था. सूर्य का उपासक था सत्राजित. नगर में रहता, तब भी सागरतीर जाकर कमर-भर जल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड़ा वह घंटों सूर्याभिमुख हो गायत्री मंत्र का जप करता रहता. सहस्र-सहस्र-अंजलि-सागर-जल से तर्पा करता वह नित्य सूर्य-देव का. पर यह तपश्चर्या जैसे पर्याप्त नहीं थी और सहसा विलुप्त ही हो गया वह द्वारिका से.

लौटा तो नगर में एक अभूतपूर्व हंगामा खड़ा हो गया. नगर-द्वार पर उसके उपस्थित होते ही संपूर्ण नगर ही जैसे देदीप्यमान हो आया. प्रकाश का एक महान पुंज ही जैसे महाद्वार के अंदर प्रवेश हेतु प्रयत्नशील था. भीषण चकाचौंध से सभी की आंखें चौंधिया गयी थीं और कोई समझ नहीं पा रहा था कि प्रकाश का यह अद्भुत वृत्त कैसे और कहां से प्रकट हो गया था. सत्राजित के तन का कोई भाग भी तो दृष्टि-पथ में आ नहीं रहा था—बस प्रकाश, प्रकाश, और प्रकाश. ऐसी स्थिति में अगर किसी भी नगरवासी ने उसे पहचान नहीं पाया तो इसमें आश्चर्य क्या?

''स्वयं सविता (सूर्य) ही आपके दर्शनों को पधार रहे हैं, सूर्य-मंडल को छोड़कर.'' कुछ लोग दौड़े-दौड़े पहुंचे थे उनके पास. स्वयं उपासना में रत थे उस समय वह प्रातः में पद्मासन लगाये वे स्वयं भगवान सविता के महा मंत्र गायत्री—के जाप में लीन थे. नित्य का यह कार्य था उनका. मंदिर के पास ही पहुंच गये लोगों के ऊंचे स्वर ने उनकी एकाग्रता में व्यवधान अवश्य उपस्थित किया पर वे पूजा समाप्त कर ही उठे.

''क्या बात है?'' अपने सहज सस्मित रूप में पूछा था उन्होंने विस्मय-विमुग्ध पुरवासियों से.

''सविता, भगवान सूर्य पधार रहे हैं नगर में. आप भी तो सूर्योपासक हैं. नित्य गायत्री-जाप करते हैं. प्रतीत होता है आपकी पूजा से ही प्रसन्न हो वे...''

''चुप करिए,'' श्रीकृष्ण ने उन्हें बीच में ही टोका, ''मेरी पूजा-मात्र पूजा के लिए होती है. आत्म-शुद्धि के लिए. कोई विशेष लक्ष्य नहीं उसका. किसी फल-प्राप्ति अथवा देव-दर्शन का लक्ष्य नहीं है इस अर्चना-आराधना का. किसी देवी-देवता को मैं क्यों कष्ट देने लगा यहां तक आकर मुझे दर्शन देने हेतु?''

अतिक्रमण

☐ हरिशंकर सक्सेना

नगर में 'अतिक्रमण हटाओ' अभियान के तहत नगर पालिका के कर्मचारी पुलिस बल के साथ सक्रिय थे. एक प्रधानाचार्य की लिखित रिपोर्ट पर वे उनके कॉलेज की 'स्पोर्ट्स फील्ड' में भी पहुंच गये. 'फील्ड' कालेज से अलग सड़क पार थी. उसमें किसी ने एक पक्की कोठरी बनाकर लकड़ी की टाल जमा ली थी. अभियान दल ने वहां पहुंचते ही सबसे पहले टाल मालिक के दो डंडे जमाकर उसे तुरंत सामान हटाने की हिदायत दी और फिर उस कोठरी को भी ढहा दिया. यह कार्य कालेज-स्टाफ और छात्रों के सामने ही पूरा किया गया.

घंटेभर बाद अभियान दल वापस चला गया और प्रधानाचार्य को कोठरी की ईंटें कालेज ले जाने की इजाजत दे दी. उन्होंने छात्रों और अध्यापकों के सहयोग से सारी ईंटें बैलगाड़ी में भरवा-भरवाकर कालेज पहुंचवा दीं. कालेज में ईंटों का एक खासा ढेर लग गया.

कई दिन बाद कालेज से एकाएक तमाम ईंटें गायब हो गयीं.

''पर हम मिथ्या-भाषण नहीं कर रहे. स्वयं सविता...नहीं विश्वास हो तो आप स्वयं चलकर देख लें. इसीलिए तो हम दौड़े पहुंचे हैं आप तक.'' पुरवासी अपने विश्वास पर अडिग थे.

''चलिए.'' उन्होंने अपने पीतांबर को कंधों पर सहेजा था और नगर-जनों के साथ लग गये थे.

सत्राजित् अब तक नगर के अंदर प्रवेश कर चुका था और नगर-मार्गों को प्रोद्भासित-प्रज्ज्वलित करते हुए सच एक प्रकाश-पुंज की तरह ही अपने गंतव्य की ओर बढ़ता जा रहा था वह.

देखिए, देखिए, स्वयं रवि-देव ही हैं ये या नहीं? स्वयं सविता...नागर लोगों ने समवेत कंठ से कहा था. उनके आश्चर्य का अंत नहीं था. निर्णय के लिए वे श्रीकृष्ण के मुख की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखे जा रहे थे.

''सविता नहीं, सत्राजित है यह.'' उन्होंने मुस्कराते हुए कहा था. ''स्यमंतक मणि मिल गयी है इसे किसी गिरा-गह्वर में. भगवान सूर्य का प्रसाद भी कह सकते हैं इसे. पूजा-अर्चना व्यर्थ भी कहां जाती है? जिसे हम मात्र संयोग कहते हैं, नियति के किसी सुनियोजित क्रिया का परिणाम ही होता है वह. सच भगवान सूर्य संतुष्ट हो गये सत्राजित् की साधना से. साधार नहीं है यह स्यमंतक मणि जिसके प्रकाश से सत्राजित सूर्य की तरह ही भासित हो रहा है. बहुत प्रभाव है इस मणि का. पर नहीं रहना चाहिए इसे सत्राजित् के पास. पात्र नहीं है वह इसका. दुरुपयोग ही करेगा वह इस महान् मणि का.''

अब लगता है यहीं पर गलती हो गयी थी उनसे. सार्वजनिक अभिव्यक्ति दे दी थी उन्होंने मणि के महत्व और सत्राजित की अपात्रता को. अब अगर लोग सत्राजित् के इस कथन में विश्वास करने को बाध्य हैं कि श्रीकृष्ण ने चोरी कर ली है स्यमंतक की तो उसमें उनका दोष ही क्या?

पर खूब निकला सत्राजित्, श्रीकृष्ण सोच रहे थे. एक ढेले से दो शिकार करने को उद्यत है वह—श्रीकृष्ण को बदनाम करने और मणि को कहीं सुरक्षित रख छोड़ने का. श्रीकृष्ण की निरंतर बढ़ती कीर्ति उसके लिए सहय नहीं हो रही थी और उन्हें अपकीर्ति से मंडित करने के अवसर की खोज में ही निरंतर लीन रहता था वह. सूर्य की उत्कट उपासना के मूल में भी यही बात थी. इस रूप में स्वयं को शक्ति-संपन्न कर लेने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी अध्यापकों में रोष फैल गया. उन्होंने कालेज के चौकीदार को फटकारा–

"क्यों बे मंगली, बताता क्यों नहीं, ईंटें कहां गयीं यहां से?"

मंगली बहुत घबड़ाया हुआ था. फिर भी उसने अनभिज्ञता प्रकट की, "मुझे नहीं मालूम साब!"

अध्यापकों का शक उसी पर था. उन्होंने उसे धमकी दी, "देख सच-सच बता दे वरना तेरी नौकरी चली जायेगी." मंगली को पैरों तले से जमीन खिसकती दिखायी दी. उसका चेहरा पसीने से तर हो गया. वह कुछ कहना चाहता था लेकिन बोल नहीं पा रहा था. लगता था कोई बात उसके गले में अटकी हुई है. अंततः कुछ अध्यापक उसे एकांत में ले गये.

"आखिर बात क्या है, बताता क्यों नहीं?" उन्होंने कहा, "अगर तू सच बता देगा तो हम तुझे बचा लेंगे." मंगली को थोड़ा सहारा मिला. उसने तुरंत पोल खोल दी.

"मैं क्या करूं साब, कल प्रिंसिपल साब ने सब ईंटें ढुलवा लीं... उनका नया मकान जो बन रहा है." मंगली की बात सुनकर सभी लोग हतप्रभ रह गये. उन्हें लगा कि असली अतिक्रमण यही है जो देश को खोखला कर रहा है. □

चाहता था वह कि लोग श्रीकृष्ण को भूलकर उसी के जय-गान में लग जायें. इस प्रयास में उसे सफलता क्या मिलती, पर इस मणि को प्राप्त कर व्यर्थ की अशांति मोल ले ली थी उसने.

"सत्राजित् की प्रकृति और उसके कुत्सित लक्ष्य से पूरी तरह परिचित श्रीकृष्ण मणि को उसके पास से हटाने को कटिबद्ध थे.

"इस मणि को तुम राजकीय कोषागार में जमा कर दो." उसी शाम सत्राजित के महल पर स्वयं पहुंचे थे और यह प्रस्ताव दे दिया था.

"पर क्यों? मणि तो मेरी अपनी संपत्ति है. इसे भगवान सविता ने मेरी तपस्या से प्रसन्न होकर मुझे प्रदान किया है." सत्राजित् ने छूटते ही कहा था. पश्चिम-आकाश पर घिरते संध्या के अंधकार की तरह ही उसके मुख पर आशंका और भय का भाव घिर आया था.

"तुम ठीक बोलते हो?" श्रीकृष्ण ने पूछा था.

"क्या?"

"भगवान सविता स्वयं तुम्हारे समक्ष अपने हाथों में मणि लिये प्रकट हुए थे?"

सत्राजित् के मुख से सहसा कोई शब्द नहीं निकला था.

"बोलते क्यों नहीं?"

"नहीं, वे प्रकट नहीं हुए थे."

"तब?"

"फिर भी यह उन्हीं की अनुकंपा से मिली है. पूजा-उपासना के पश्चात् मैं पहाड़ों में एक ओर भटक गया था कि एक गुफा में यह पड़ी मिली."

"तो यह राजकीय संपत्ति हुई."

"कैसे?" सत्राजित् के मुख पर अंकित भय और गहरा हो गया था.

"जिस स्थान पर तुम्हें यह मणि मिली वह महाराज उग्रसेन के शासन-क्षेत्र के अंतर्गत ही आता है. अतः इस खनिज-संपदा पर महाराज का स्वाभाविक अधिकार है."

"यह तो घोर अन्याय है."

"अन्याय नहीं, न्याय है यह. एक बात तुम बताओगे?" श्रीकृष्ण ने गंभीर होते हुए पूछा.

"क्या?"

"इस स्यमंतक मणि से जो तुम्हें लाभ होगा, तुम्हारी समृद्धि-संपत्ति में जो वृद्धि होगी, उसे तुम स्वयं तक ही सीमित रखोगे या इससे अन्य नगरवासियों अथवा समग्र प्रजा को भी लाभ होगा?"

"कैसी बात करते हैं आप?" सत्राजित् खीझकर बोला. खार तो वह सदा उनसे खाये ही रहता था.

"कैसी बात क्या? एक सीधा-सा प्रश्न तो पूछा है मैंने तुमसे."

"यह मणि मेरे अध्यवसाय, मेरी साधना, मेरी तपश्चर्या के फलस्वरूप मुझे उपलब्ध हुई है. भगवान सविता ने विशेष अनुग्रह-स्वरूप मुझे इसे प्रदान किया है. मैं उनके इस आशीर्वाद से स्वयं को लाभान्वित करूंगा, शेष जन की मुझे कौन चिंता हुई है?"

"यही तो, यही तो," श्रीकृष्ण ने गंभीर होते हुए कहा, "स्वार्थांध हो रहे हो तुम. जो सार्वजनिक संपत्ति को अपना मान बैठे, उससे अधिक संकीर्ण-बुद्धि कौन होगा! सभी समान हैं. समत्व का यह भाव ही व्यक्ति की सच्ची उपलब्धि, उसकी वास्तविक सिद्धि है. तुम्हारी साधना अभी अपरिपक्व ही है. सिद्धि के शिखर पर तुम पहुंचे नहीं, साधना के अनगढ़ सोपानों पर ही भटक रहे हैं अभी तुम्हारे चरण. भगवान सहस्रांशु क्यों देने लगे तुच्छ स्वार्थ-प्रेरित को यह दिव्य दान? राज्य की संपत्ति है यह, राज्य-कोष में ही इसे जाना है."

"अपना दर्शन और अपना यह दीर्घ भाषण किसी और के लिए रखिएगा." सत्राजित् अपने महल-द्वार की ओर बढ़ते हुए बोला, "यह मणि मेरी रहेगी."

"अगर मैंने इसे ले लिया तो?" कृष्ण ने कहा तो सत्राजित मुड़ा और साथ लगे उत्सुक और अपार जन-समूह को संबोधित करते हुए बोला, "सुन लो पुरजन, नगर के सभी संभ्रांत नागरिक! क्या कह रहे हैं आपके द्वारिकापति. मणि लेकर रहेंगे यह." कहते हुए वह द्वार के अंदर चला गया. प्रकाश-पीड़ित लोगों के नेत्रों को मुक्ति मिली पर सभी के कानों में सत्राजित् की अंतिम बात देर तक गूंजती रही, "सुन लें सभी संभ्रांत नागरिक!...मणि लेकर रहेंगे आपके द्वारिकापति!"

क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटा बकुलपुर का यात्री

'वह कागज पाकर पहरेदारों ने चैन की सांस ली. अब उन्हें शून्य में अंधेरे में नहीं टटोलना पड़ेगा ' कैसा था यह कागज और इसका प्रभाव कि वे उसे अकाट्य प्रमाण मान रहे थे...?

□ मानिक वंद्योपाध्याय

जन्म : १९०८
बंगला साहित्य के महान रचनाकारों में एक. 'अनुशीलन समिति' के संपर्क में आकर पढ़ाई छोड़ मानिक साहित्यिक जीवन से जुड़ गये. पहला कहानी संग्रह 'अतशि मामी'. १९३५ में पहला उपन्यास 'जननी' प्रकाशित. यहीं से शोषितों और दलितों के लिए महत्वपूर्ण कथायात्रा की शुरुआत.
प्रमुख कृतियां : 'पुपुल नाचेर इतिकथा', 'सोनार चेदामी' व 'पद्मानदीर माझी' (उपन्यास).
४० उपन्यासों व २५० कहानियों के इस यशस्वी कृतिकार की रचनाओं के अनुवाद विश्व स्तर पर हुए हैं.
निधन : ३ दिसंबर, १९५६

अनुवाद: डा. माहेश्वर

गाड़ी करीब एक घंटा लेटा थी.
ठीक समय से पहुंचने से भी प्रायः शाम हो गयी. स्टेशन की मिट्टी-तेल की बत्तियां उसके पहले ही जलायी जा चुकी थीं. प्लेटफार्म पर थोड़े से यात्री, शंकित और स्तब्ध, आने वाली गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे. अधिक रात को आने वाली दूसरी गाड़ी के लिए इस स्टेशन पर साधारणतया और अधिक यात्री इकट्ठा होते देखे गये हैं. उस समय यात्रियों के अभाव को सिपाहियों का एक दल पूरा कर रहा था.

गाड़ी डेढ़ मिनट रुकती है. इस अल्पावधि के लिए जो व्यस्तता और कोलाहल सुनायी पड़ता है, वह भी आज अपेक्षाकृत बहुत कम लग रहा था. गाड़ी छूटने के दो-चार मिनट बाद ही स्टेशन का इलाका यात्रीशून्य होकर अद्भुत रूप से शांत और भुतहा लगने लगा. जो लोग गाड़ी से उतरे थे, वे बिना किसी ओर देखे जल्दी से गेट पर टिकट देकर अपने-अपने रास्ते चले गये.

स्टेशन के बाहर आकर भी कोई रुक नहीं रहा था. स्टेशन से सटे हुए तिराहे के मोड़ पर सिर्फ दो-तीन दूकानों में बत्ती जल रही थी, बाकी सब बंद थीं. चाय की दूकान की रोशनी सबसे तेज थी. आमतौर पर इस समय दूकान ग्राहकों से भरी रहती थी. पर आज एकदम सूनी पड़ी थी. बरगद के विशाल वृक्ष के नीचे बने हुए चबूतरे पर दो किसान थोड़ी-सी साग-सब्जी सजाये बैठे थे, मगर भिंडी और बैंगन का मोल पूछने की जिज्ञासा भी किसी के मन में नहीं उठ रही थी.

स्टेशन की बत्तियों की तरह ही दिवाकर की आंखें भी टिमटिमा रही थीं. उसने इधर-उधर देखा. उसका जाना-पहचाना स्टेशन अचानक जिस तरह यात्री शून्य हो रहा था, उसे जादू के खेल जैसा लग रहा था. सशस्त्र सिपाहियों के एक दल द्वारा स्टेशन पर दखल कर लेने से स्टेशन का रूप ऐसा कुछ नया नहीं लगा उसे. ऐसे दृश्य उसे देखने का उसे अभ्यास था. कल यहां जो घटना घट गयी थी, उसका विवरण भी उसने गाड़ी में सुना था. उसे ऐसे ही दृश्य की उम्मीद थी.

"देखा तूने?"

बच्चे को छाती से चिपकाये अन्ना ने दबे गले से कहा, "देखना क्या है? हंगामा हुआ है, पहरा बैठ गया है, नहीं तो क्या ठेठर (थियेटर) होगा? बौड़म की तरह खड़े मत रहो, चलो चलते हैं."

बीड़ी-सिगरेट के कश खींचते हुए कई बाबू जैसे लोग लापरवाह अंदाज में खड़े होकर बड़ी ही उपेक्षा के साथ यात्रियों को देख रहे थे, दो-एक लोगों से नाम-धाम भी पूछ रहे थे. अब उनकी नजर दिवाकर पर पड़ी. अधेड़ उम्र का गिद्ध आदमी मुंह टेढ़ा करके बोला, "जाने दो. बेकार का आदमी है, किसान होगा."

उसका खद्दरधारी छोकरा-सा साथ ही मुस्कराया. वह पान से लाल मुंह में और दो पान भरकर चबाते-चबाते अन्ना की ओर देखता रहा. अचानक पिच से पीक थूककर उक हाथ ऊंचा करके उंगली के इशारे से दिवाकर को अपने पास बुलाया, "ऐ ! सुन !"

दिवाकर ने उसे देखकर भी नहीं देखा, सुनकर भी नहीं सुना. अपनी पोटली बगल में दबाये, रस्सी में बंधी हंड़िया को हिलाते हुए अन्ना को साथ लिये धीरे-धीरे वह कदम बढ़ाता रहा.

बाबुओं में से तीन आदमी तब उसके सामने आ खड़े हुए.

"टिकट है?"

"हां, है." कमीज की जेब से दिवाकर ने दो टिकट निकालकर उन्हें दिखा दिये.

"कहां जाओगे?"

"जी. छोटा बकुलपुर जाऊंगा."

दिवाकर की बात सुनकर वे जैसे हल्के से चौंक पड़े. पानखोर छोकरे ने फिर पिच से थूका. कल के हंगामे में प्लेटफार्म की लाल बजरी पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

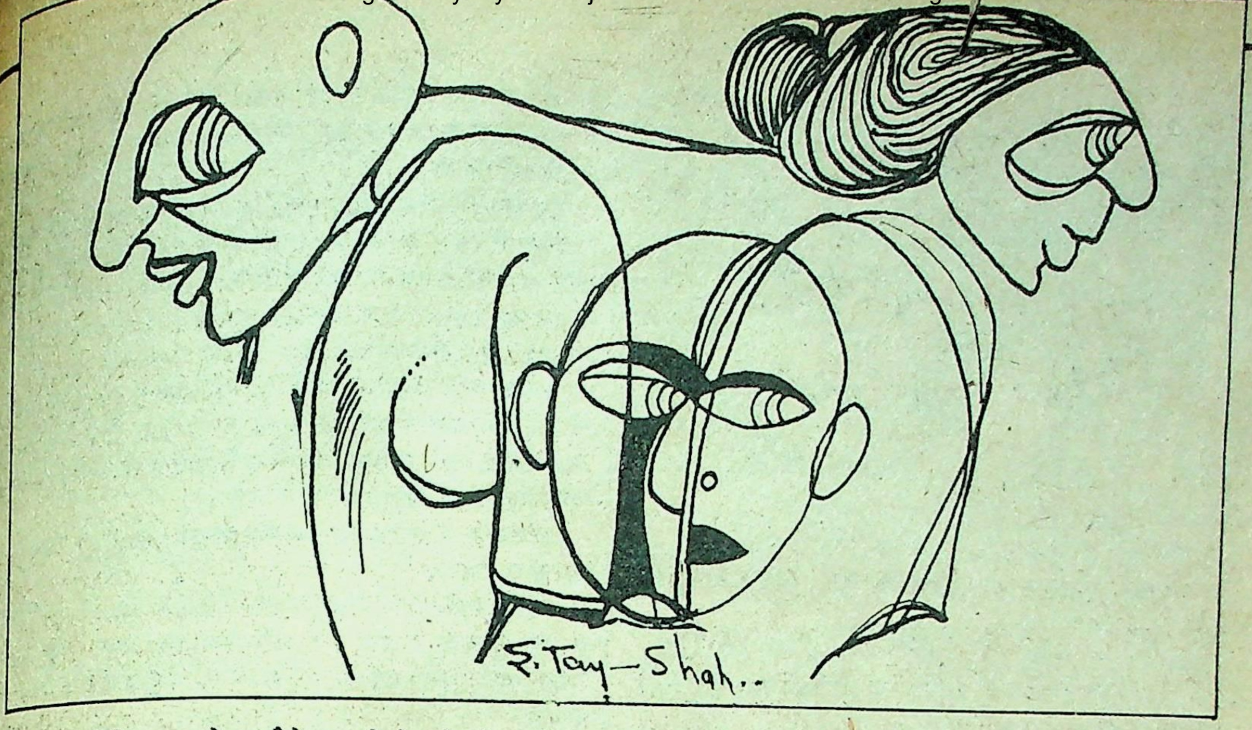

थोड़ा लाल खून भी गिरा था. छोकरा जैसे पान की पीक से प्लेटफार्म को और भी रंगीन कर देना चाहता था. दिवाकर को भी पान खाना अच्छा लगता है. रास्ते में पूरे पांच पैसे देकर उसने भी एक पान खरीदा था. अब उसने वही पान कागज की पुड़िया में से निकालकर मुंह में धर लिया. वे लोग उसके इतने पास खड़े थे कि उसे लग रहा था, पान इसी कारण उसे कड़वा लग रहा है. दूर एक कारखाने की बत्ती उसकी आंखों में चुभ रही थी. लग रहा था, वह बत्ती जैसे अंधेरे आकाश में बिना किसी सहारे के झूल रही है. उसी कारखाने की हड़ताल को लेकर कल स्टेशन पर हंगामा हुआ था. उनके तीन नेताओं को पकड़कर ट्रेन से कहीं ले जाया जा रहा था, जिन्हें छुड़ा ले जाने के लिए कई सौ मजदूर स्टेशन पर जा पहुंचे थे. तब गोली चली थी और खून बहा था. गाड़ी में उसी घटना का विस्तृत विवरण सुनकर दिवाकर का मन बहुत खराब हो गया था.

ठिगने आदमी ने पूछा, "इतनी रात को छोटा बकुलपुर जाओगे? वहां की खबर जानते हो?"

दिवाकर ने निर्लिप्त भाव से कहा, "खबर सुनकर ही आया हूं, बाबू. वहां हमारे नाते-रिश्तेदार रहते हैं. देखने आया हूं कि वे जिंदा हैं या स्वर्गाधीन हो गये हैं."

ठिगने ने कहा, "बाप रे! तुम्हारी जुबान तो बड़ी तेज है?"

"नहीं बाबू, गरीब आदमी हूं, तेज जुबान कहां से पाऊंगा?"

तिराहे के पास दो बैलगाड़ियां जमीन में मुंह धंसाये पड़ी थीं और पास में जमीन पर बैठे एक जोड़ा दुबले और शांत बैल जुगाली कर रहे थे. आमतौर पर स्टेशन के सामने दो-तीन छकड़ा घोड़ा गाड़ियां खड़ी रहती हैं. उनके घोड़े जितने प्राचीन होते हैं, गाड़ियां उनसे भी अधिक. बेगारी में पकड़े जाने के डर से गरीब गाड़ीवानों ने आज अपनी गाड़ियां बाहर नहीं निकाली थीं. घोड़ा गाड़ी पर बैठकर ससुराल जाने लायक माली हालत कभी नहीं रही दिवाकर की. फिर भी आज वह घोड़ा गाड़ी पर सवार होकर ही जाता. इसी उद्देश्य से उसने अन्ना का एक चांदी का गहना बंधक रखकर पैसों का जुगाड़ किया था. छोटा बकुलपुर पहुंचते-पहुंचते रात हो जायेगी, यह जानकर ही वे रवाना हुए थे. पर उन्हें आशा थी कि औरत और बच्चे को लेकर तीन दिन का रास्ता वे घोड़ा गाड़ी की मदद से जल्द ही पार कर लेंगे. पर अब सिर्फ बैलगाड़ी का भरोसा था.

"गाड़ीवान, कहां हो भाई?" दिवाकर ने पुकारा.

दोनों बैलगाड़ियों के मालिक एक साथ प्रकट हुए. हल्के अंधेरे में दिवाकर को लगा कि एक आदमी जैसे पुराने बरगद से और दूसरा पास की दूकान के बेड़े में से प्रकट हुआ है.

उन्हें कोई जल्दी न थी. बैलगाड़ियों में वैसा कंपटीशन न था आराम-आराम से उन्होंने जानना चाहा कि दिवाकर कहां जायेगा. दिवाकर ने छोटा बकुलपुर का नाम लिया तो दोनों गाड़ीवानों ने सिर हिलाते हुए कहा, "अरे बाप रे! रात में छोटा बकुलपुर कौन जायेगा? वहां सैना-पुलिस गांव घेरे हुए है. लड़ाई चल रही है."

चारों लोगों ने अपने सामने की सड़क पर नजर दौड़ायी. छोटा बकुलपुर को जानेवाले रास्ते ने थोड़ी दूर जाकर मोड़ लिया था मगर उनकी नजर उस मोड़ तक नहीं जा रही थी. लग रहा था, खतरनाक अंधेरे में सड़क खो गयी है.

बायें हाथ में गोद के बच्चे को संभालते हुए अन्ना ने दिवाकर को पीछे कर दिया और खुद आगे आकर कमान संभाल ली.

"वहां तक मत जाना, चाचा जितनी दूर जा सको ले चलो. बाकी

खाते समय

□ राजेश शास्त्री

चुनाव के दिनों, अपने निर्वाचन क्षेत्र में दौरा करते समय नेताजी ने एक वृद्धा से वोट देने का आग्रह किया. इसके आगे नेताजी, कुछ कह पाते उसके पूर्व ही वृद्धा ने कहा, "अरे... भईया तुम सभी, नेता लोग, सारे के सारे समय भ्रष्टाचार में लगे रहते हो, और चुनाव के दिनों में हाथ जोड़े हुए आ जाते हो."

नेताजी बोले, "देखिये, माताजी, जहां तक भ्रष्टाचार की बात है, तो सभी अंगुलियां एक-सी तो नहीं होतीं!"

इस बात पर तपाक से वृद्धा बोली, "देखो बेटा, अंगुलियां तो अलग-अलग होती हैं, पर खाते समय सभी एक हो जाती हैं." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रास्ता हम पैदल चले जायेंगे. किराया तुम्हें अच्छा ही दूंगी.''

जिस गाड़ीवान को अन्ना ने चाचा कहा था, उसका नाम राम था.

राम ने दूसरे, अपेक्षाकृत युवा गाड़ीवान से कहा, ''रात के समय कौन परेशानी मोल ले? क्यों घोसू?''

'ओ मां! तुम मरद होकर डर रहे हो!'' अन्ना ने मीठे स्वर में कहा, ''गोद में बच्चा लिये औरत जाने को तैयार है और तुम लोग मरद होकर डर के मारे पोंक रहे हो!''

राम चुप रह गया. उसकी उम्र ज्यादा है पर साहस कम.

गगन घोष ने कहा, ''कमलतला तक जा सकता हूं.''

चलो, यही सही. कमलतला का शिवान पार करके अगर गाड़ी वाला उतार दे तब भी आधा मील पैदल चना होगा. पूरे तीन मील चलने से तो कहीं यह अच्छा है. घोष ने गाड़ी में बैल नांघ दिये तो अन्ना उस पर जा बैठी. उसे इस कसरत का अभ्यास है. गगन की बैलगाड़ी लड़बड़ाती हुई चल रही थी. बैल भी इतना दुबला और बूढ़ा था, अगर गगन उसकी पूंछ ऐंठकर सोंटा न मारे तो वह एक कदम भी आगे धरने को तैयार न था. अन्ना ने बड़े आग्रह के साथ छोटा बकुलपुर की खबर पूछी, हालांकि गांव पहुंचने के पहले अपने बाप-भाई का कुशल समाचार जानने की आशा उसने नहीं की थी. गांव के बारे में ढेर सारे भीतरी विवरण और अनेक नयी खबरें गगन से उसे जानने को मिलीं. दूर से उन्होंने सुना था कि छोटा बकुलपुर की हालत बहुत खराब है. प्रचंड आघात से गांव का गृहस्थ जीवन तहस-नहस और चूरमार हो गया है. गगन से मालूम चला कि मामला ठीक-ठीक वैसा नहीं है. शुरू-शुरू में गांव पर खूब अत्याचार हुआ था. पर उसके बाद गांव के लोगों ने एकजुट होकर तैयारी करके ऐसा मोर्चा बनाया कि चौधरियों और घोषों का कोई आदमी दो दर्जन राइफिल धारियों के बिना गांव के भीतर घुसने की हिम्मत न करता था. एक बार मुंह खुल गया तो गगन घोष को रोके कौन? बैल की पूंछ उमेठते हुए मुंह से टिटकारियों की तरह-तरह की और अद्भुत आवाजें निकालने के अलावा बीच-बीच में वह चारों ओर के हालात भी बयान कर रहा था. उसके अनुसार सचमुच कलयुग वाकई अब अपने अंतिम चरण में है. चारों ओर के लच्छन देखकर तो ऐसा ही लगता है, वरना कहीं राजा और प्रजा में लड़ाई होती है?

''हम कलजुग के पापी लोग हैं. इस लड़ाई में हम मरेंगे. फिर हमारे बाल-बच्चे सतजुग में मौज करेंगे.''

अंधेरे निस्तब्ध रास्ते पर बैलगाड़ी काफी शोर करती हुई चल रही थी. रास्ते के किनारे के किसी-किसी घर से बीच-बीच में टार्च की रोशनी बैलगाड़ी पर आ पड़ती और कोई गंभीर स्वर में पूछता, ''कौन जा रहा है? कहां जाओगे?''

गगन जवाब देता, ''इस्टेशन से मेहरारू (औरत) उतरी है टरेन से, कमलतल्ला जायेगी.'' जब तक बैलगाड़ी मकानों और पेड़-पौधों की आड़ में नहीं हो जाती, तब तक टार्च की रोशनी अन्ना की देह से सटी रहती. ट्रेन से उतरा हुआ आदमी निरीह, निर्दोष औरत ही है जो गाड़ी में जा रही है—इस बात का प्रत्यक्ष ज्ञान, जितनी देर संभव हो, कर लेना उन्हें जरूरी लग रहा था.

इस इलाके में बस्ती बहुत घनी है. एक-दूसरे से सटे हुए बड़े-बड़े गांव हैं. फिर भी, अभी रात के पहले पहर में ही सड़क पर लोगों का आना-जाना प्रायः बंद हो गया था. गांव के लोगों का चलना-फिरना भी रहस्यमय हो गया था. इसी रास्ते से लोग एक से दूसरे गांव को जाते हैं. पर आज लगता है, जैसे लोगों को कहीं आने-जाने की जरूरत ही नहीं रही.

अचानक एक आदमी रास्ते के पास के अंधेरे से निकलकर रास्ते पर आ गया और तेजी से कुछ दूर चलने के बाद फिर उसी अंधेरे में मिल गया. एक-दो लोगों के इस प्रकार के आने-जाने से रास्ते की निर्जनता और निस्तब्धता ज्यादा अस्वाभाविक लग रही थी.

कमलतला में पुलिस की एक बड़ी छावनी पड़ी. उधर देखकर गगन सिर खुजलाने लगा.

''छोटा बकुलपुर तक चलूं क्या?'' गगन ने अनुमति मांगने के स्वर में कहा. दिवाकर ने कोई उत्तर नहीं दिया. फिर गगन ने खुद ही कहा, ''चलो बहन, तुम्हें छोड़ आते हैं. बीच रास्ते में तुम्हें कैसे उतार दूं, तुम्हीं बताओ?''

खुश होकर अन्ना ने अपनी आंतरिक कृतज्ञता जताते हुए कहा, ''भगवान भी मुंहजौंसा अंधा है, नहीं तो तुम्हारे पास नयी गाड़ी और जवान बैल होना चाहिए.''

छोटा बकुलपुर का शिवान छूते-छूते एक साथ तीन-तीन टार्चों की रोशनी बैलगाड़ी पर पड़ी, साथ ही किसी ने हांक लगायी. गांव के प्रवेश द्वार पर पुलिस का पहरा बैठ गया था जिससे उस विद्रोही गांव को बाहरी दुनिया से काट दिया गया. गगन की बैलगाड़ी के असमय प्रकट होने से उनके बीच थोड़े आनंद और उत्तेजना का संचार हुआ. गाड़ी में सिर्फ दो बैल, एक गाड़ीवान, एक पुरुष और एक बच्चे के साथ एक औरत देखकर उन्होंने अंदाजा लगाया कि डर का कोई कारण नहीं है.

देखते-देखते सात-आठ लोगों ने बैलगाड़ी को घेर लिया. टोपी को ठीक से सिर पर बिठाते हुए अधेड़ उमर के आदमी ने गंभर आवाज में कहा, ''कहां से आ रहे हो?'' लगता था वही उनका लीडर था.

गगन ने उत्तर दिया, ''इस्टेशन से टरेन की पसिंजर...''

''शट अप! तुझसे कौन पूछ रहा है? तुम्हारा नाम?''

''मेरा नाम दिवाकर दास है.''

''बाप का नाम? कहां रहते हो? क्या करते हो? इधर क्यों आये हो.''

''बाप का नाम मनोहर दास, तिरपन के अकाल में स्वर्ग गये. कोई बीमारी कुछ नहीं थी, उपवास से मरे. हावड़ा में रहता हूं. घनश्याम बेटेनट कारखाने में मजदूर हूं. इधर के हंगामे की बात सुनी तो औरत रोने लगी, उसके बाप-भाई पता नहीं मरे या जिंदा हैं. मैंने सोचा, कारखाने की हड़ताल दो-चार दिन में खतम होने वाली नहीं है. आजकल के हालात ही ऐसे हैं. सोचा, औरत को लेकर देख आऊं, ससुराल का क्या हाल-चाल है.'' विनम्रता पूर्वक, स्पष्ट और सरल भाषा में अपने आने का कारण और विवरण पेश किया. चूंकि उसने रो गाकर अपनी बात नहीं कही और डर से कांपते हुए उनके पैरों पर गिरकर दया की भख नहीं चाही इसलिए शायद उसकी व्याख्या पसंद नहीं आयी.

''पोटली में क्या है? बम या बंदूक?''

''कपड़े हैं.''

''तुम वाकई दिवाकर दास हो, फैक्ट्री में मजदूरी करते हो, ससुराल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये हो, तुम्हारा कोई बुरा इरादा नहीं है इसका कोई सबूत दे सकते हो?''

''क्या सबूत दूं बताइये? कोई गवाह साथ तो लेकर आया नहीं.''

सोलह-सत्रह वर्ष का गोरा चिट्टा स्वयं सेवक लड़का खिलखिलाकर हंस पड़ा. लंबे-चौड़े थुलथुल प्रौढ़ ने उसे डांटा तो अचानक उसकी हंसी थम गयी और झटके से हंसी रुकने के कारण खांसते-खांसते वह बेदम हो गया.

अन्ना ने कहा, ''गांव के दस-पांस किसानों को बुलाओ न बाबू जी मुझे दो-चार लोग चीन्हेंगे ही. मैं इसी गांव की लड़की हूं.''

''वे तो चीन्हेंगे ही, न चीन्हे तो भी चीन्ह लेंगे. जिनके साथ उनकी मिलीभगत है, उन्हें नहीं चीन्हेंगे तो किसे चीन्हेंगे.''

अन्ना ने दिवाकर के कान में फुसफुसाकर कहा, ''जानते हो? गांव के लोगों को बुलाने में डर रहा है.''

लंबे-चौड़े थुलथुल आदमी ने उंगली उठाकर कहा, ''ऐ ! फुसफुसाकर क्या बात हो रही है? गुपचुप सलाह-मशविरा नहीं चलेगा, खबरदार!''

''बाबू, क्या गांव में जाना मना है? दफा १४४ लगी है?'' दिवाकर ने पूछा.

लंबे सिर और बढ़ी हुई जुल्फों वाले कुर्ताधारी छोकरे ने कहा, ''मना क्यों होगा? मना नहीं है. तुम लोग कौन हो, किस मतलब से आये हो, यह जानने के बाद तुम्हें जाने दिया जायेगा.''

''यह सब जानने का उपाय करो न बाबू लोग.''

''चोप! तमाशा हो रहा है क्या?''

इस धमकी से दिवाकर चुप हो गया, पर बच्चा जैसे इसका प्रतिवाद करते हुए रो पड़ा. उनकी ओर पीठ करके बैठी अन्ना बच्चे को चुप कराते हुए उनकी बातें सुन रही थी, अचानक वहां प्रकट होकर उन्होंने एक अजीब और जटिल परिस्थिति का निर्माण कर दिया है और इसे लेकर वे लोग परेशान और विभ्रमित हो गये हैं. सामान, वेशभूषा और चेहरा देखकर, उन लोगों की बातचीत सुनकर सचमुच इस बात का अंदाजा लगाना कठिन था कि वे वाकई निरीह, साधारण, मजदूर हैं और उनका कोई दूसरा मतलब नहीं है. इसीलिए उनका आना भयंकर संदेह पैदा कर रहा था. पिछले कुछ दिनों में छोटा बकुलपुर में जो तांडव चल रहा था उसे देखते हुए वाकई कोई सीधा-सादा, गरीब आदमी औरत-बच्चे को साथ लेकर भला कहीं अपनी जान फंसाने के लिए आना चाहेगा? और वह भी हंगामे की खबर जानने के बाद? किसी मामूली आदमी को ऐसा साहस कहां से होगा? उससे भी बड़ी बात है, संदेह की बात है. चारों ओर इतनी [illegible] को देखकर भी ये जरा नहीं भड़के, निर्भय और निश्चिंत भाव से बैठे हैं?

''निश्चय ही कोई खतरनाक आदमी वेश बदलकर आया है.'' एक आदमी ने नीचे गले से कहा.

''चलो, सर्च करते हैं.'' दूसरे आदमी ने कहा.

लंबे-चौड़े थुलथुल आदमी ने हुक्म दिया, ''ऐ! अपना सामान लेकर नीचे उतरो.''

उसके मुंह से आवाज निकलते ही दो लोगों ने दिवाकर को खींचकर नीचे उतार दिया. उत्साह अथवा उत्तेजना के आधिक्य से मिट्टी की हड़िया उसके हाथ से गिरकर फूट गयी और उसका पानी और उस पानी में किलबिल करती पांच-छह सिंघी मछलियां जमीन पर रेंगने लगीं.

दिवाकर ने गुस्से से कहा, ''बाबू लोग, कर दिया न आप लोगों ने गरीब का कबाड़ा? अब अपनी बीमार औरत को क्या खिलाऊंगा?''

उत्तर में एक आदमी ने गंभीर आवाज में कहा, ''क्यों दिवाकर दास, यही नाम है न तुम्हारा? तुम तो कहते हो, तुम कारखाने में मजदूरी करते

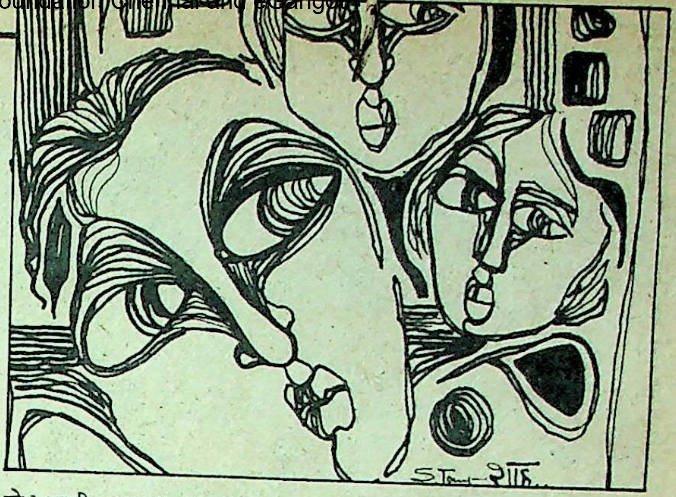

हो? कुली-मजदूरों की औरतें कब से सिंघी मछली का सुरुआ (शोरबा) खाने लगी? सिंघी मछली आजकल पंद्रह-सोलह रुपये सेर है.''

''बाबूजी, क्या सिंघी मछली खाना गरीबों के लिए मना है?''

इसके जवाब में वह आदमी गरज उठा, ''शाट अप! बेअदब!''

पोटली को खोलकर सारी चीजें बिखेरते समय और उसमें बम या बंदूक ढूंढ़ते समय एक दुर्घटना हो गयी. अन्ना के बच्चे ने रास्ते में दो-एक बार टट्टी किया था. अन्ना ने वे गंदे पोतड़े गुमेंटकर पोटली में एक किनारे डाल दिये थे. तलाशी लेनेवाले के हाथ में मैला लग गया. कुत्सित गंध और स्पर्श से बौखलाकर उसने पोटली में लात मार दी. जिसके फलस्वरूप कीचड़ की तरह का तरल पदार्थ उसके पांव में लग गया था. गाड़ी में बिछे हुए फटे बोरे और उसके नीचे रखी बिचाली को उलटने-पलटने के बाद गगन और दिवाकर की खाना तलाशी हुई. दिवाकर की कमीज की जेब से पान की पुडिया निकली.

''वाह! पान! दे तो एक मुझे.''

पुड़िया में तीन पान बचे थे, जो तीन पहरेदारों के मुंह में गये. पान चबाते-चबाते एक आदमी ने टार्च की रोशनी उस कागज पर डाली जिसमें पान लिपटा हुआ था. उस पर छपी इबारत को पढ़ते ही जैसे उसे बिजली का शॉक लग गया. कागज को अच्छी तरह फैला कर वह फटी नजरों से हेड लाइन की तरफ देखने लगा. हेड लाइन थी—''छोटा बकुलपुर के संघर्षशील बहादुरों के प्रति.''

रहस्योद्घाटन की उत्तेजना से कांपते हुए वह आदमी चीख उठा. ''मिल गया! इश्तहार मिल गया!''

इश्तहार ? हां, ठीक ही तो है. यह तो बड़ा भयंकर इश्तहार है! हालांकि कागज बुरी तरह मुश गया था और पान के रस तथा चूने के दागों से भर गया था फिर भी उसे कोशिश करके पूरा पढ़ा जा सकता था.

वह कागज पाकर पहरेदारों ने चैन की सांस ली. अब उन्हें शून्य में अंधेरे में टटोलना नहीं पड़ेगा, काल्पनिक संदेह और संशय से जर्जर नहीं होना पड़ेगा. अब उनकी मुट्ठी में अकाट्य प्रमाण आ गया था. अब इस षड़यंत्र का पर्दाफाश हो जायेगा.

''यह इश्तहार तुमको कहां मिला?''

प्रश्नकर्ता ने एक-एक शब्द को जीभ पर घुमा-घुमाकर ऐसे उच्चारण किया जैसे वह कोई बहुत स्वादिष्ट चीज हो.

''कैसा इश्तहार? इश्तहार के बारे में तो मैं कुछ भी नहीं जानता. चार आने का पान खरीदा था, पान वाले ने इसी कागज में लपेटकर दिया था.''

''पानेवाले ने लपेटकर दिया था या तुमने खुद जान-बूझकर पान खरीदा और इश्तहार से उन्हें लपेट लिया?''

''क्यों? ऐसा मैं क्यों करूंगा?''

''अब और नौटंकी मत करो! सीधे से अपना असली नाम बता दो!'' दिवाकर और अन्ना ने एक दूसरे की ओर देखा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

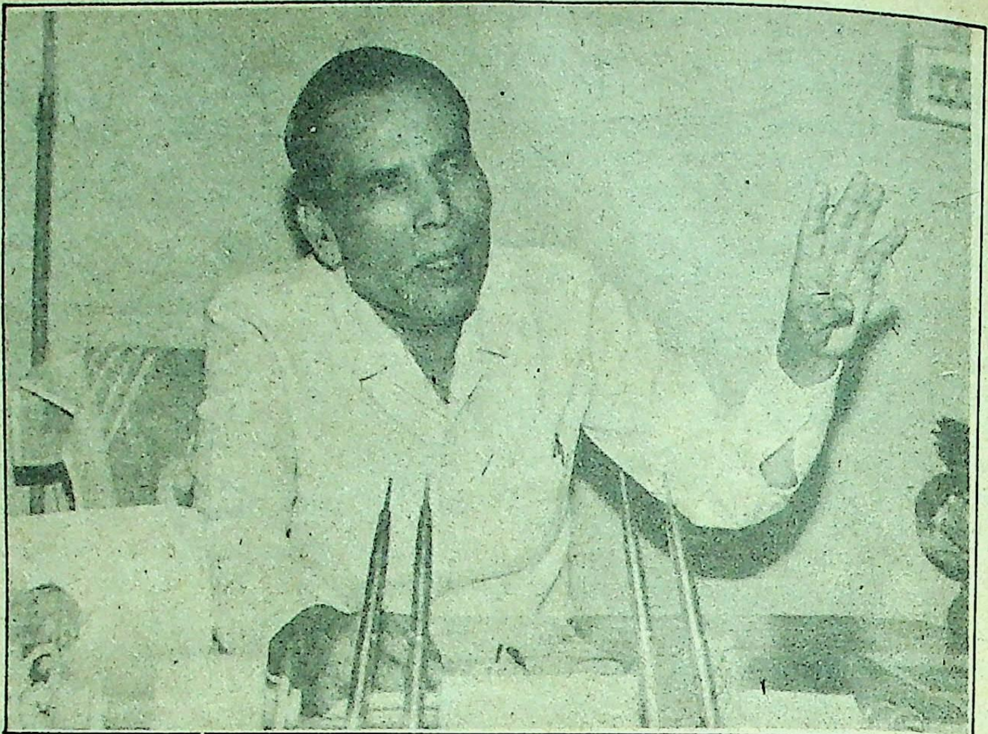

माटी की धड़कन को सुरक्षित रखना जरूरी है.

डा. नारायण दत्त पालीवाल

हिंदी अकादमी के सचिव डा. नारायण दत्त पालीवाल से हाल ही में सारिका-प्रतिनिधि की एक सार्थक बातचीत हुई. प्रस्तुत है इस वार्ता पर आधारित आलेख.

हिंदी अकादमी के सचिव डा. नारायण दत्त पालीवाल मृदुभाषी और मिलनसार व्यक्तित्व के धनी हैं. तमाम दबावों के चलेत भी वे जिस सहज और आत्मविश्वासी ढंग से अकादमी की गतिविधियों को सुचारु रूप में संचालित कर रहे हैं उसे उनकी विशेषता के रूप में रेखांकित किया जा सकता है. पिछले दिनों एक भेंट के दौरान जब अकादमी की ओर से साक्षरता अभियान में किये जा रहे प्रयासों की खबर मिली तो यह स्वाभाविक ही था कि उनसे यह पूछा जाता कि इस अभियान का अभिप्राय क्या है!

डा. पालीवाल ने बताया कि जो आज अंगूठा लगाते हैं, वे अधिक से अधिक ३ माह में हस्ताक्षर कर सकें. बसों के नंबर और जगहों के नाम पढ़ सकें. दुकानों के नाम पढ़ सकें और अखबारों के शीर्षक पढ़ सकें. शुरुआत में हम बीस केंद्र खोलना चाहते हैं. महिपाल पुर और इंद्रलोक के अतिरिक्त गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा के सहयोग से काम प्रारंभ हो चुका है. शाहदरा और मादीपुर में भी केंद्र खोलने की योजना है. दिल्ली प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से भी एक केंद्र खोलने की योजना है. हमने पब्लिक स्कूलों से भी सहयोग करने को कहा है. इस योजना के अंतर्गत ग्रीनफील्ड स्कूल, लक्ष्मीनगर से चर्चा हो चुकी है.

इस योजना में ३ माह की अवधि तय है. हमारी योजना है कि एक केंद्र में ३० व्यक्ति साक्षर बनाए जाएं. यहां एक प्रशिक्षक रखा जायेगा. आमतौर पर योग्य स्थानीय आदमी का चुनाव ही इस काम के लिए किया जाएगा. कॉपी, पेंसिल, चटाई और ब्लैक बोर्ड इत्यादि की व्यवस्था हिंदी अकादमी करेगी. अभी हम जगह का अनुरोध संस्थाओं और स्थानीय लोगों से कर रहे हैं. योजना में स्थानीय बच्चों के लिए प्रतियोगिताओं का भी प्रावधान है. साहित्यिक प्रतियोगिताओं के जरिए उनकी रुचि का विकास यहां मूल उद्देश्य है. इन केंद्रों में बाल-साहित्य भी उपलब्ध कराया जाएगा. साक्षरता के साथ-साथ ये केंद्र हिंदी-केंद्र के रूप में भी काम करेंगे. यहां युवाओं के प्रोत्साहन के लिए भी कार्यक्रम आयोजित किए जायेंगे. हिंदी के लिए अनुकूल वातावरण बनाना हमारा उद्देश्य है

इस संदर्भ में हम दिल्ली प्रशासन के सेकेंड्री और सीनियर सेकेंड्री स्कूलों में भी पत्र लिख रहे हैं...ताकि वहां हिंदी कक्ष खुल सकें. हिंदी भाषा, साहित्य और साहित्यकारों को इनके माध्यम से प्रचारित व और अधिक प्रसारित करने की योजना है. हमारे इंद्रलोक केंद्र में साहित्यकारों के ५० चित्र है. और दो बड़ी अल्मारियों में किताबें भी. यहां समय-समय पर साहित्य, भाषा से संबंधित व्याख्यानमाषाएं व आयोजन तो होते ही हैं पुराने कवियों की शैली व वेश-भूषा में कवि-दरबार प्रस्तुत कराने की योजनाएं हैं. इससे अंग्रेजियत भरे माहौल में हिंदी की पहचान बढ़ेगी.

साक्षरता अभियान में वयस्क हों या बच्चे, स्त्री हो या पुरुष, सभी को स्थान दिया जायेगा. हिंदी के प्रति रुझान पैदा करने की गर्ज से सर्वाधिक अंक पाने वाले ४० छात्रों को पुरस्कृत किया गया. कक्षा आठ, नौ व ग्यारह में सर्वाधिक अंक पाने वाले विद्यार्थी को ५०० रुपये व पदक प्रदान किया जायेगा.

हिंदी के प्रति उत्साहवर्धक माहौल तैयार करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...दृष्टि से हिंदी अकादमी साहित्यकारों को प्रोत्साहित और सम्मानित तो करती ही है...विश्वविद्यालयों की हिंदी परिषदों को भी अकादमी की ओर से सहयोग करने का निर्णय किया गया है. प्रत्येक विश्वविद्यालय के प्रत्येक कॉलेज में विद्यार्थियों द्वारा स्वयं आयोजित हिंदी के कार्यक्रमों को भी अकादमी की ओर से सहयोग किया जायेगा. इस संदर्भ में विद्यालयों के प्रधानाचार्यों से भी अनुरोध किया गया है. वे हिंदी की विशिष्ट व्याख्यान मालाएं आयोजित कराएं...और अन्य कार्यक्रम भी. दरअसल, हम जन-समान्य को हिंदी के कार्यक्रमों में सम्मिलित करना चाहते हैं. यह भी योजना है कि वरिष्ठ साहित्यकारों से महत्वपूर्ण साक्षात्कार किये जाएं. उनकी वाणी, विचार और भावनाएं रिकार्ड कर सुरक्षित रखी जाएं...ताकि पीढ़ी उनसे कुछ सीख सके. आधुनिक माध्यमों के जरिए उनके जीवन के संघर्ष, साधना और अनुभवों को दस्तावेज़ के रूप में सुरक्षित रखना जरूरी काम है. उनके चित्र, लेख और संदेश आने वाले समय में प्रेरणा-स्रोत बनेंगे.

है...यह सब जिस भाइचारे और आत्मीय माहौल को बनाते हैं. उसकी आत्मा को हमें समझना है और अपनाना भी है.

सांस्कृतिक विरासत को सहेजने के साथ-साथ हम नयी प्रतिभाओं को सामने लाने के लिए भी कृतसंकल्प हैं. यह ठीक है कि पुराना आदरणीय है. पूज्य है, उसे सम्मान जरूर मिलना चाहिए पर जो नया है, प्रतिभाशाली है, उसे भी सम्मानपूर्ण स्थान मिलना चाहिये. इसके लिए कुछ स्थापितों को यदि त्याग भी करना पड़ जाए तो उन्हें जरूर करना चाहिए. बुजुर्गों को अपने साये में नयी पौध को फलने-फूलने के अवसर देने चाहिए. युवाओं के लिए प्रोत्साहन, प्रकाशन, पुरस्कार व प्रतियोगिता के हर संभव अवसर हम जुटाते हैं.

अब तक अकादमी ने १६४ युवा लेखकों को पुरस्कृत किया है. ८१ कृति पुरस्कार दिये हैं और दो शलाकन सम्मान. पहला शलाका सम्मान प्रख्यात आलोचक डा. राम विलास शर्मा को और दूसरा सुप्रसिद्ध कथाशिल्पी श्री विष्णु प्रभाकर को दिया गया. अकादमी यह भी विचार कर रही है कि

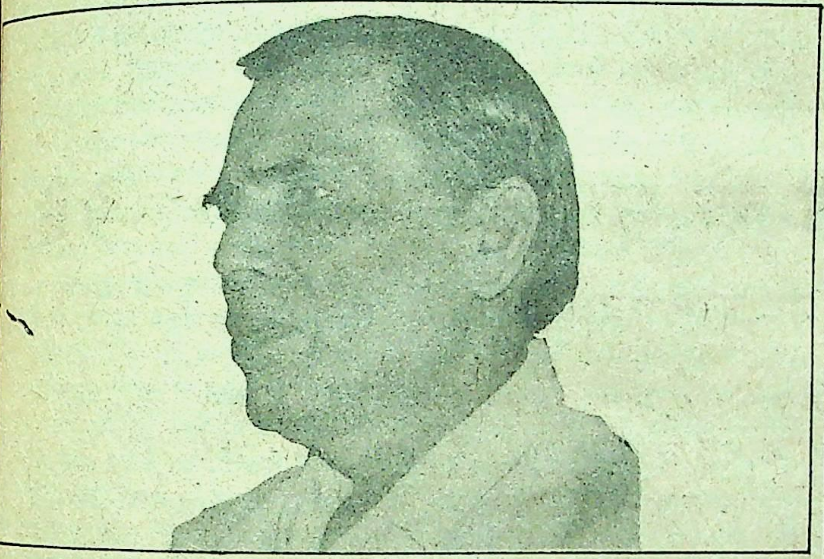

● दिल्ली की सांस्कृतिक विरासत को सहेजना होगा : डा. पालीवाल

दिल्ली की सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित कर सहेजने का काम भी अकादमी को करना है. यहां की पुरातन लोक-संस्कृति के प्रतीक लोक-गीत और लोक कथाएं संकलित करनी होंगी. आज, जबकि गांव क्रमश: सिमट रहे हैं...यह एक बड़ा काम है. मानवीय संवेदनाएं यदि सुरक्षित हैं, तो वे गांवों में ही हैं. आज उत्सव गीतों को हम भूलते जा रहे हैं अब नयी-से-नयी फिल्मी तर्जों को ही प्राथमिकता दी जाने लगी है...जबकि लोक-संगीत की विराट संपदा दम तोड़ने को है. माटी की इस धड़कन को सुरक्षित रखना बहुत जरूरी है. दिल्ली के क्षेत्र समाज, इतिहास, कला, संस्कृति और परंपराओं से संबद्ध महत्वपूर्ण जानकारियां एकत्र करने की योजना हम तैयार कर रहे हैं. सांप्रदायिक सौहार्द की जो विरासत दिल्ली में मौजूद है, तीज-त्यौहारों पर मिल-बैठकर खुशियां मनाने के जो रीति-रिवाज हैं...और फिर सबसे ऊपर 'फूल वालों की सैर'

विधागत सेमिनार और गोष्ठियां आयोजित करने के साथ-साथ शलाका सम्मान की तरह ही युवा साहित्यकारों के लिए भी एक सम्मान घोषित किया जाये. बड़े रचनाकारों की परिचय पुस्तिकाएं प्रकाशित करने की भी महत्वाकांक्षी योजना अकादमी बना रही है. हाल ही में हिंदी अकादमी की पत्रिका 'इंद्रप्रस्थ भारती' ने 'समकालीन हिंदी कहानी' पर एक विशेषांक निकाला है. इसमें समकालीन कथा जगत के महत्वपूर्ण हस्ताक्षरों की कहानियों के साथ-साथ चार कथा-आलोचकों के लेख भी सम्मिलित हैं. इस विशेषांक की सर्वत्र सराहना हुई है. इन कहानियों को हम एक स्वतंत्र पुस्तक के रूप में 'इंद्रप्रस्थ कहानी संग्रह' में भी प्रकाशित कर रहे हैं.

पूरे उत्साह, संलग्नता और आत्मीय डूब के साथ पालीवाल जी अकादमी की योजनाएं समझाते रहे जैसे उनकी दुनिया में हिंदी अकादमी से अलग और कुछ है ही नहीं. □

कृतियां

मृत्यु पार का देश

मृत्यु होने पर मनुष्य कहां जाता है? किस अवस्था में रहता है? आत्मा का अस्तित्व है या नहीं? परलोक में जीव का अवस्थान किस प्रकार रहता है? यह सभी जिज्ञासा आदिम युग से ही मानव मन को आंदोलित करती रही है. इस सभी की मीमांसा स्वामी अभेदानंद महाराज ने अपने इस ग्रंथ 'मृत्यु के पार' में अपनी अभिज्ञता के आधार पर की है. इहलोक एवं परलोक के निगूढ़ रहस्यों का परिचय देते हुए उपरोक्त प्रश्नों का प्रमाणिक उत्तर इस ग्रंथ में उन्होंने दिया है. मानव एवं प्राणी मात्र की आत्मा का विनाश नहीं है. किंतु जीव भाव का क्रमविकास होता है एवं मृत्यु क्रम विकास की ही प्रतिछबि है. मनुष्य जन्म मृत्यु के मध्य विचरण करते हुए ही परम रहस्यमय निज आत्म सत्ता की उपलब्धि करता है.

मृत्यु पार का देश रहस्यमय है. जहां न सूर्य है न चंद्र और न ही नक्षत्र. जिस देश में स्थूल कुछ भी नहीं, जहां केवल सूक्ष्म भावना एवं सूक्ष्म चिंता का राज्य है. इस चिंता राज्य को ही मनोराज्य अथवा स्वप्नराज्य कहते हैं. मृत्यु होने पर सभी का सूक्ष्म शरीर स्वप्नलोक या मानसलोक में जाता है. वहां केवल मन का विलास है. चलना फिरना खाना, देना लेना सभी, समस्त परलोकवासी जीवात्मा मन से ही भोग करते हैं इसीलिए यह मनोलोक अथवा मनोराज्य है.

स्वामी अभेदानंद महाराज ने 'मृत्यु के पार' तत्व पर विचार एवं आलोचना की है जिससे जन्ममरण शील एवं मायासक्त मानव उस जन्म मरणातीत आत्मसत्ता के रहस्य को जान सकें. प्राय: अधिकांश लोगों का विश्वास है कि मृत्यु के पश्चात मानव की सत्ता अथवा अस्तित्व रहता नहीं वह शून्य में ही विलीन हो जाता है, किंतु यह वास्तविकता नहीं है.

वास्तविकता क्या है? यह जाना जा सकता है इस पुस्तक से जो अभेदानंद महाराज की मूल अंग्रेजी पुस्तक 'लाइफ बियांड डेथ' का हिंदी अनुवाद है. अंग्रेजी से 'मृत्यु के पार' शीर्षक से अनुवाद किया है स्वामी संशुद्धानंद महाराज ने और भूमिका लिखी है श्रीमद् स्वामी प्रज्ञानानंद महाराज ने. अन्य भाषाओं के संस्करणों की तरह हिंदी संस्करण में भी प्रेतात्माओं के आलोक चित्र आदि भी दिये गये हैं.

● मृत्यु के पार, लेखक : स्वामी अभेदानंद, प्रकाशक : श्रीरामकृष्ण वेदांत मठ, कलकत्ता, मूल्य बीस रुपया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति लय का लास्य और अभाव का तांडव

□ कृष्णदत्त पालीवाल

□ 'बर्फ की चट्टानें'—शैलेश मटियानी, सचिन प्रकाशन, दरियागंज नयी दिल्ली-२, मूल्य, २५०.००.

शैलेश मटियानी की इन कुमाऊंनी परिवेश की कहानियों में पहाड़ी जीवन की ऐतिहासिक अनुभूति का रचनात्मक विस्तार है. उनकी रचना दृष्टि अखंडता में इस प्रदेश के मानव को बदलते देश और काल के नवीन संदर्भों में परिभाषित करती है. एक ओर प्रकृति का अपार अम्लान नैसर्गिक वैभव दूसरी ओर आर्थिक अभावों से जूझते मनुष्य के दुखते, कसकते और कराहते जीवनानुभव उनकी संवेदना में सृजन विस्फोट पाते हैं. इस संवेदनशील रचनाकार को कवि हृदय की अंतर्दृष्टि प्राप्त है, वे कहानी में कविता रचते हैं. इन कहानियों में काव्यात्मकता और नाटकीयता का विशेष आकर्षण है. कहानी की यह काव्यात्मकता अपने आसपास की वास्तविकता के मार्मिक पक्षों को चुनौती के स्तर पर ग्रहण करती है. चुनौती के दोनों स्तर उनमें कार्य करते हैं तत्व संबंधी और रूप संबंधी. आर्थिक अभावों का तनाव उनके हृदय में घिराव डालता है, उन्हें मथता, फेंटता है. नतीजा यह होता है कि कहानियां अंचल विशेष की संपूर्ण व्यथा-कथा को मानव वास्तविकता के मूल पर ठीक से कह लेती हैं. वे 'कहते' नहीं हैं, वर्णन विस्तार में उनकी मनोवृत्ति नहीं रमती. वे कहानियों में भाव-विचार के बिंबों, प्रतीकों और मिथकों को एक खास 'विजन' में ढाल देते हैं. इस संग्रह की पहली कहानी **'पोस्टमैन'** अंचल से प्राप्त भरोसे की भाषा में पाठक की संवेदना को कसती है. आर्थिक अभावों के कारण घर छोड़कर सेना में भर्ती होनेवाले युवकों की स्थिति, परिस्थिति और उनके परिवारों की मनोभूमि का पत्र और तार की मनोवृत्ति का फर्क और मनीआर्डर का अर्थ खोलती है. कहानी एक प्रकार से सामाजिक सांस्कृतिक इतिहास बनकर उभरती है. हिंदी में जब कभी पर्वतीय जीवन के आर्थिक कष्टों का अर्थशास्त्र समाज शास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों के विशेष अध्ययन का केंद्र बनेगा, तब शैलेश मटियानी की इन नायाब कहानियों का मूल्य और बढ़ जायेगा.

पचास से ऊपर कहानियों का चुनिंदा संग्रह कहानीकार शैलेश मटियानी के सृजन की आंतरिकता, प्रेरणा भूमि और रचना हेतुओं का प्रतिनिधित्व करता है. कहानियों में न केवल अनुभूति पक्ष के वरन् कथ्यपक्ष के वस्तुनिष्ठ स्वभाव के और उसकी अंतर्योजना में विद्यमान परिज्ञान पक्ष के विकास की छवियां हैं. अरूप को रूप, अमूर्त को मूर्त और वायवीय को वास्तविक बनानेवाली ऐंद्रिय चेतना कहानीकार को प्राप्त है. इंद्रियों के रूप, रस, स्पर्श, श्रवण और स्वाद के बिंब बेहद मर्मस्पर्शी हैं और कथा के भीतर उबलते भावों को, तूफान को दृष्टि देते हैं. एक उदाहरण से कहना चाहूं तो कह सकता हूं कि **'वह तू ही था?'** जैसी कहानी एक कभी न भूलनेवाला प्रेम गीत बन जाती है. प्रकृति सुंदरी के लास्य पर युवतियों का यौवन थिरकता है और प्राणों का पागल प्यार किसी प्रेमी को पाकर प्रेमदीप जलाता है. दरअसल प्रेम हृदय की स्वच्छंद प्रकृति का यह प्रकृत भाव-जगत है. जिसमें रूप रस की मादकता को पीने की आकुल अधीरता है. प्रकृति का काव्यात्मक चित्र देखिए—**''संध्या की बेला जब हिमानी बयार चलती है, छोटी बिलैत नैनीताल में हिया हुलसता है, गान पुलकता है. देवदार की हरी-भरी डालियां हिलती हैं कि कुसुमिया अनंत हिरणियां नेत्रोंवाली करूणी के कानों की सुवर्ण रजत की बालियां हिलती हैं कि रसिकों के पांव तले का कांटा, पीछे-पीछे का दुश्मन बिसर जाता है.''** यह पूरा भाव-चित्र एक रेखाचित्र है, शब्दों से तराशकर बनाया गया लय बिंब. किंतु लय बहुत टूटती नहीं है. प्रकृति मानव के सामूहिक अवचेतन के द्वार को आदिम बिंब की कालिदासीय जीवन तरंग में फिर रचती है—**''सुहानी संध्या में हिमानी बयार क्या बहती है, फूल-फूल भंवरे गुन-गुन रस घोलते हैं, कुंज-कुंज विहंग कुहू-कुहू बोलते हैं कि रसवंती, रूपवंती धरणियां रूई की रूपहली बाती बनाती हैं कि भैया के मंदिर में पहला दीपक अपने प्रियतम के नाम का जलाना है.''** राधिका का झूलते संध्या में जसौत सिंह को पाना और पति ध्यानसिंह का ठिठुरता प्रेम हवा हो जाना. जसौत सिंह ठहरा उसका जार-जरजरा, चोर-चरचरा प्रेमी, जो प्रेम में जूते खाता है और ध्यानसिंह के सामने का यथार्थ उसे दावत में वाक्यों से बार-बार चीरता है, पर प्रेमिका का अखंड हृदय नहीं टूटता. तिरिया पातक प्रेम से पराजित है. कहानी की पूरी संवेदना का भाव-तंत्र स्वच्छंदतावादी प्रेम का एक भाष्य है, एक टीका है, एक वार्तिक. सुमित्रानंदन पंत की कविताओं से इस कहानी का एक अजीब साम्य है. पर्वतीय नारी का 'साइके' पूरे 'आर्किटाइयल इमेज' के साथ उपस्थित है. परिवेश कहानी की देह है और कथ्य का प्रेम रस प्राण. बिना व्यक्त किये अधिक व्यक्त कर जाने की जो सूझ-बूझ है, वह अन्य कहानीकारों के लिए दर्शनीय है. प्रकृति के प्रेम लय से तदाकार शैलेश मटियानी जैसा कहानीकार हिंदी में दूसरा नहीं है. संवेदना की सशक्त प्रतीक व्यवस्था में यह कहानीकार फणीश्वर नाथ रेणु और मार्कंडेय से आगे है. कहानी का यह प्रकृत मुहावरा ही शैलेश की शक्ति है. मानव मन के भीतर कूदने, डुबकी लगाने की शैलेश को तांत्रिक ताकत प्राप्त है.

कहानी की जिस तात्त्विता पर ध्यान तुरंत केंद्रित होता है, वह है इन कहानियों की मूल संवेदना और कथन शैली. जिसे 'रूटेड स्टोरी' कहा जाता है, उसका उदाहरण भी यहां सीधा मिलता है. पर्वत के अंचल की गंध-तरंग का एक रूपजाल इस शिल्प को गठित करता है. कहानी अपने भाव-तंत्र पर वीणा के तारों-सी झनझनाकर मौन हो जाती है. एक विराट मौन की मधु छाया में मन जल बिंदु-सा खो जाता है. अन्न की खुद-बुद, गड़रिये की स्वर लहरी, घास काटती, हेरती युवतियों का हरिनी मन, खरगोशी उछाल और पर्वत का प्यार. संवेदना, परिवेश और शिल्प तीनों ही इन कहानियों में एकाकार हैं. भाषा की देशी लयात्मकता में भी संस्कार की सघनता और आत्मविस्तार की प्रकाश छाया के रंग हैं. परंपरा की प्रवाहित गति में वर्तमान की अतीतता और अतीतता की वर्तमानता साथ-साथ चलती हैं. यहां दृष्टा और सृष्टा मन का भेदभाववाला सिद्धांत सक्रिय नहीं है. कोई अस्तित्ववादी विडंबना इन्हें जहरीला नहीं बनाती है, केवल प्रदेश और परिवेश के देवी-देवताओं, मिथकों, पीड़ाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...वाप सुनाई देती है. इन कहानियों का ...नानुभव भरोसे का इसलिए है कि उपार्जित ...त्व के प्रति कहानीकार में आत्मदान का, ...स्व विसर्जन का भाव है. प्रकाशित भाव क्षण ...सृजा के प्रति पूर्ण समर्पण ने इन कहानियों ...पीम में एक स्पंदित एकान्विति और जीवंत ...सफनी' निष्पन्न की है. अपनी हर कहानी में ...निर्मल वर्मा की कहानी 'परिंदे' जैसी लय को ...कर भी कहानीकार संरचनात्मक आन्विति का ...ढा पाता है. कहानी का पूरा ढांचा टूटता है ...और नयी संवेदना की नयी कहानी का आलोक ...फूटता है.

अच्छी बात यह है कि पश्चिम से आयातित ...उधार आधुनिकता का इन काहानियों में मोह ...नहीं है. मूलतः ये संस्कारी भारतीय मन की ...कहानियां हैं, जिनमें अंतर्मानसिकता के नये ...निर्झर फूट-फूट पड़े हैं. भाषा में लोक संवेदना ...की पूरी रंगत है और कथा का नया ठाठ दृष्टि-...सम्पन्न संवेदना के रचनात्मक रूपांतरण से ...निर्मित है. वाक-तत्व का विनायक भाव हर कोण ...पर उपस्थित है. भौगोलिक स्थिति और ...सांस्कृतिक संवेदना का मिश्रण कथा-संवेदना को ...कहीं-कहीं कमजोर करता है पर सर्वत्र ऐसा नहीं ...है. शैलेश के पास नये कहानीकारों को ...सिखाने लायक बहुत है, यह कौन भूल सकता ...है. □

कहानी केंद्रित 'अक्षरा'

हाल ही में 'अक्षरा' (संपादक: प्रभाकर श्रोत्रिय) का कहानी केंद्रित अंक प्रकाशित हुआ है. उपेंद्र नाथ अश्क, ...राजी सेठ, शैलेश पंडित, प्रभुनाथ सिह ...आजमी, कमल कुमार, विजय, सुनील ...कौशिश, विलास गुप्ते, दिनेश पाठक, ...ललित साह, उर्मिला शिरीष और चंद्रशेखर ...दुबे की रचनाओं के अतिरिक्त 'साहित्य का ...भविष्य' (विद्यानिवास मिश्र) और शिवप्रसाद ...सिंह का रम्य निबंध अंक को समृद्ध बनाते हैं. ...विद्यानिवास मिश्र साहित्य के भविष्यत और ...भविष्यत के साहित्य को लेकर महत्वपूर्ण ...विचार अपने लेख में लेकर आये हैं तो ...शिवप्रसाद सिंह आशावादित को भली ...बताकर उसके तर्क भी प्रस्तुत करते हैं. ...कहानी न कहने की पीड़ा के बहाने वे कहानी ...के पार्श्व जगत की सच्चाईयों को उजागर कर ...गये हैं. अपनी तरह का यह अनूठा पत्र-निबंध ...है. □

['अक्षरा' संपर्क शामला हिल्स, भोपाल-462 002]

अपने बीच के पात्रों का जीवंत कथा-लोक...

□ प्रदीप पंत

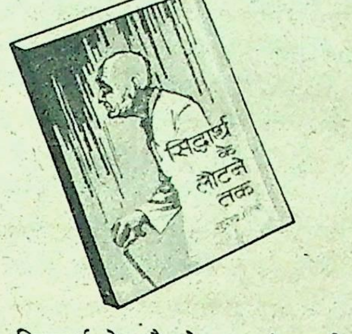

□ **सिद्धार्थ के लौटने तक (कहानी संग्रह); लेखक: सुरेंद्र अरोड़ा; प्रकाशक: ज्ञान गंगा, २०५-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ ; मूल्य: ५०.०० रुपये; पृष्ठ : १६८**

सुरेंद्र अरोड़ा की कहानियों को लेकर बहुत बड़े-बड़े दावे तो नहीं किये जा सकते, लेकिन इतना जरूर है कि उन्होंने अपनी कहानियों में आज के वक्त के और अपने आसपास के लोगों और समाज के सुख-दुख, हर्ष-विषाद, भावनाओं-संवेदनाओं, विरोधों-अंतर्विरोधों, आकांक्षाओं-महत्वाकांक्षाओं आदि को पकड़ने की सार्थक कोशिश की है और इस क्रम में उन्होंने कुछ 'बहुत अच्छी' तो कुछ 'अच्छी' और कुछ 'साधारण' कहानियां लिखी हैं. उनका नया कहानी संग्रह '**सिद्धार्थ के लौटने तक**' इस तथ्य और सत्य का गवाह है.

संग्रह में कुल मिलाकर दस कहानियां हैं. पहली कहानी '**ऊंच-नीच**' संग्रह की सबसे सशक्त कहानी है. रामासरे नामक जमादार इस कहानी का नायक है. इतिहास की किसी पुस्तक में अशोक और अकबर तो नायक हो सकते हैं और हैं भी किंतु कोई जमादार नायक के रूप में कभी नजर नहीं आयेगा. लेकिन अपने समय से जुड़ी कहानियां ऐसे ही छोटे-छोटे नायकों को लेकर चलती, बढ़ती तथा अपनी पहचान बनाती है और उनके माध्यम से हम इन मामूली कथानायकों की त्रासदी से रू-ब-रू होते हैं. रामासरे का बेटा प्रथम श्रेणी में हाई स्कूल पास करता है. वह सूचना औरों को देते हुए रामासरे कलक्टर को भी दे डालता है जो उससे मिठाई खिलाने के लिए कहता है. रामासरे खुशी-खुशी उसके पास मिठाई ले जाता है, लेकिन बदले में रामासरे को मिलता है अपमान और तिरस्कार. यही नहीं, उसके लौटने पर कलक्टर अपने पी.ए. श्रीवास्तव से कहता है कि मिठाई नौकरों में बांट दो. दिलचस्प यह कि पी.ए. इस मिठाई के डिब्बे को चुपके से अपने ब्रीफकेस में डाल लेता है और बड़े इत्मीनान से बैठकर गाने लगता है—''वैष्णव जन ते तेने कहिए, जो पीर परायी जाने रे!...'' कहानी यहीं पर समाप्त हो जाती है, और इसके साथ ही गहरी मानवीय पीड़ा और व्यंग्य दोनों ही एक साथ पाठक को झकझोर देते हैं और रामासरे का दुखी व उदास चेहरा साकार हो उठता है. हमारी वर्ग-विभाजित समाज व्यवस्था पर यह कहानी एक कड़ा प्रहार है. ऐसी कहानी पार्टीगत रुझानों और आदेशों-निर्देशों से मुक्त लेखक ही लिख सकता है. यह कहानी संग्रह की ही सर्वश्रेष्ठ रचना नहीं है, बल्कि अपने आप में—स्वतंत्र रूप से—एक 'बहुत अच्छी' कहानी भी है. यदि इस कहानी में कलक्टर के चरित्र के पाखंड को, जो इस वर्ग की विशेषता है, और बारीकी से प्रस्तुत किया जाता तो 'ऊंच-नीच' एक अद्वितीय कहानी बन सकती थी.

सुरेंद्र अरोड़ा के संग्रह की दूसरी कहानी है— '**भेड़िए**'. फैक्ट्री के एक साधारण किंतु जुझारू मजदूर की जुझारु बेटी है आनंदमयी जिसकी सुंदरता पर पुलिस अधिकारी अरविंद मुग्ध हो जाता है और अंततः उससे विवाह रचा लेता है—उसे अपनी व्यक्तिगत सफलता के लिए इस्तेमाल करने के उद्देश्य से. आनंदी कभी उसका विरोध करती है, कभी उसके आगे झुकती और टूटती है तो कभी फिर विरोध की मुद्रा में खड़ी हो जाती है. ऐसा अद्भुत सशक्त चरित्र है आनंदी जिसमें तमाम मानवीय कमजोरियां भी हैं. यों इस कहानी में सुमन जैसा कृत्रिम चरित्र भी है जो सबके सामने नेता के गले में हाथ डाल देती है, लेकिन सुरेंद्र अरोड़ा ने आनंदी के चरित्र को जिस कुशलता से तराशा है उसके कारण सुमन की ओर पाठक का बहुत कम ध्यान जाता है.

अपनी इन्हीं विशेषताओं के लिए '**सीढ़ियां**' को भी याद किया जायेगा. यद्यपि यह एकदम भिन्न फलक पर लिखी गयी रचना है—शुचि से श्रीमती शुचिता चक्रवर्ती बनने के दौरान लोगों को सीढ़ियां बनाकर सफलता पाने वाली लड़की की कहानी है यह और इस माने में शुचि का चरित्र आनंदी के चरित्र के एकदम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिकूल है—किंतु दोनों ने सौम्य रख है के आनंदी और शुचि दोनों ही अपनी कमजोरियों के बावजूद अत्यंत सशक्त होकर उभरी हैं और आज की औरत के भिन्न-भिन्न चेहरों को सामने लाती हैं, यहां तक कि हम भी औरत के कई-कई चेहरों तक को उनमें देख सकते हैं.

कहानी **'लवर्स'** इन तीनों कहानियों के विपरीत एक कमजोर कहानी है.

सुरेंद्र अरोड़ा अपनी कहानियों में प्लाट बुनने, शब्द चुनने और संवाद रचने की कला में माहिर हैं. इसी कारण उनकी एकदम सायास गढ़ी हुई कहानियां तक पाठक को अपने साथ बहा ले जाती हैं. **'अहेरी'** इसकी एक बेहतरीन मिसाल है, जिसमें दो मुख्य पात्र हैं—एक सुंदर स्त्री कामिनी, एक सुंदर पुरुष 'वह'. कामिनी पर वह आसक्त है. देह को भोगने के लिए उसे घर बुलाता है. वह जाती है, समर्पित हो जाती है, किंतु यकायक 'उसके' अंदर कहीं अपराध बोध जाग उठता है कि जिससे इतना प्यार, उसे जूठा करना उचित नहीं. और वह उसके शरीर को नहीं रौंदता. कहानी का यह प्लाट मानो किसी भावुक कवि की कल्पना है, जिंदगी का सच नहीं, किंतु सुरेंद्र अरोड़ा कहानी कहने के अपने कौशल के सहारे उसे एकदम सच सरीखा बना देते हैं. किसी अधकचरे लेखक ने इस प्लाट को उठाया होता तो लगता कि 'क्या ऐसा हो सकता है', किंतु इस लेखक के हाथों उठाये गये इस प्लाट से लगता है कि 'हां, ऐसा भी हो सकता है.'

दस कहानियों के इस संग्रह की छठी कहानी वह है जिसके शीर्षक पर पुस्तक का शीर्षक रखा गया है यानी—**'सिद्दार्थ के लौटने तक'**. कहानी में हैं एक बूढ़ा पिता, तीन बेटे, एक बेटी. तीन में से एक बेटा पिता की डांट-फटकार के कारण वर्षों पहले भाग गया था. अब पांच साल बाद लौट रहा है. नाम है बबल, जिसके इर्द-गिर्द प्रतीक गढ़ा गया है सिद्दार्थ का. बड़ा बेटा ऊंचा अफसर है, पर मां-बाप को साथ नहीं रखता. छोटा बेटा मामूली हैसियत का है, जिसकी पत्नी उन्हें साथ नहीं रखना चाहती. इन विडंबनापूर्ण स्थितियों के मध्य झूलते हुए पिता को आस है कि सिद्दार्थ के लौटने पर वे चैन से मर सकेंगे...कहानी यहीं पर एकाएक समाप्त हो जाती है—एक अधूरेपन के साथ. कहानी को पढ़ते समय लगातार लगता है कि इसकी थीम पुरानी है, सिद्दार्थ का प्रतीक कहीं साकार होता नहीं दीखता, कहानी में वह संवेदना कतई मुखर नहीं होती जो बेटे के भागने से पिता के मन में उत्पन्न होनी चाहिए. इस संग्रह की शीर्षक कहानी के रूप में ऐसी कमजोर कहानी को प्रस्तुत किया ही नहीं जाना चाहिए था.

अब संग्रह की सातवीं कहानी **'नौ दिन चले अढ़ाई कोस'** की बात की जाये. सुरेंद्र में कहानी को झटकेदार बनाने और असामान्य विषय-वस्तु को उठाने या सामान्य विषय-वस्तु को असामान्य ढंग से प्रस्तुत करने की जो अद्भुत क्षमता है, उसका एक बहुत अच्छा उदाहरण है यह कहानी. मूलत: अपेंडिक्स का ऑपरेशन कराने वाले दो मरीजों की यह कहानी उनके इत्मीनान, भय, आशा, आशंका का और साथ ही साथ अस्पताल के माहौल का बड़ा खूबसूरत चित्रण है. साथ ही यह एक असहाय बूढ़े की कहानी भी है जिसका ऑपरेशन इन दो मरीजों के ऑपरेशन से पहले होता है. यह कहानी कहीं पर गुदगुदाती है, कहीं पर मानवीय विवशताओं को उभारती है तो कहीं पर मनुष्य की स्वार्थी प्रवृत्ति पर बड़े सटीक ढंग से वार करती है.

लेकिन दूसरी ओर सायास लेखन से **'कैसी काली रात'** जैसी साधारण कहानियां जन्म लेती हैं. हिंदी में हाल के वर्षों में पंजाब के आतंकवाद से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़ी बहुत-सी कहानियां लिखी गयी हैं. यह कहानी भी उन्हीं में से है—सिख करमा के मालिक को गोली मार दी गयी है. करमा सोचता है कि अब क्या किया जाये? क्या कोई मदद के लिए आगे आयेगा? कहीं उसी को आतंकवादी तो नहीं मान लिया जायेगा, क्योंकि वह सिख है? अंतत: होता भी यही है. पुलिस से लेकर गांव के पुजारी तक सभी उसे आतंकवादी मानते हैं. आतंकवाद की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी इस कहानी की अपनी कोई खास अलग पहचान नहीं है, न कहीं पर भी कहानी आलोड़ित-उद्वेलित करती है. इस विषय पर लिखी गयी तमाम कहानियों में से एक होकर रह जाती है यह कहानी—या फिर इसमें कहीं थोड़ी-सी चमक है तो वही सुरेंद्र के भाषायी चमत्कार और विषय-वस्तु को लटके-फटके से प्रस्तुत करने के कारण.

मौत का चित्रण **'कैसी काली रात'** में है तो **'एक छोटी-सी मौत'** में भी. कहना न होगा कि कई बार मौत जैसी—खासतौर पर किसी जवान लड़की की मौत जैसी—असामान्य घटना भी संबंधों की औपचारिकता में उलझकर मामूली प्रसंग बनकर रह जाती है. १८ वर्षीया भतीजी नीली की मौत के प्रति काफी हद तक उसकी चाची और कुछ हद तक उसके चाचा का सरोकार भी यही जाहिर करता है. एक ही शहर में अलग रहने पर भतीजी नीली की मौत की खबर सुनने पर चाचा-चाची को कोई हड़बड़ाहट नहीं. वे इत्मीनान से तैयार होते हैं, चाची चाय पीती है, बिस्कुट खाती है, थोड़ा समय यह तय करने में निकल जाता है कि स्कूटर से चला जाये या बस से. वहां पहुंचने पर भी चाची के मन में कोई खास पीड़ा नहीं है, बल्कि उसकी दृष्टि इस बात पर केंद्रित होती है कि मृत नीली किस पोशाक में है. एक ओर अर्थी ले जायी जा रही है, 'राम नाम सत्य है' के स्वर उठ रहे हैं, चाचा अर्थी को कंधा देने के लिए आगे बढ़ रहे हैं, दूसरी ओर चाची उन्हें पीछे खींचकर कह रही है, **''सुनो! तुमने देखा! नीली ने वही सूट पहन रखा है जो मैंने दिया था. चाइना सिल्क का. वह देखो, सलवार का पांयचा दिखाई दे रहा है. वो देखो...!''** यह सब बहुत स्वाभाविक, बहुत सटीक-सा लिखकर सुरेंद्र मानो एक गहरा व्यंग्य कर जाते हैं—मनुष्य की क्षुद्रता पर, उसकी स्वार्थी मनोवृत्ति पर...और हमें लगता है कहानी के ये पात्र—ये चाचा-चाची—हमारे देखे हुए हैं, हमारे अपने बीच के भी हो सकते हैं और स्वयं हम भी—अपने में ही खोये-डूबे हुए, अपने-अपने स्वार्थों की दुनिया में कैद.

स्वार्थों की दुनिया की ही एक अन्य कहानी है—संग्रह की अंतिम कहानी—**'नाच चल रहा है'**.

छोटू यानी रमेश कुमार यानी रेलवे के गुड्स क्लर्क के विवाह का प्रकरण. गुड्स क्लर्क महोदय के मन में बार-बार विचार उठ रहा है—दहेज लूं या नहीं? अंत में आम युवकों की तरह वह भी स्थितियों से समझौता कर लेता है और साकार हो उठता है हंसी-खुशी का माहौल, नाच-गाने का माहौल...और बस. शादी का नाच, स्वार्थों का नाच—सब एक साथ. यह भी **'सिद्दार्थ के लौटने तक'** की भांति संग्रह की एक साधारण कहानी है, हालांकि शब्दों को बांधने और संवादों को साधने की अपनी कला में महारत हासिल कर लेने के कारण सुरेंद्र इस कहानी को नष्ट होने से बचा ले जाते हैं, लेकिन जब हम संग्रह की पहली कहानी **'ऊंच-नीच'** से **'नाच चल रहा है'** जैसी कहानियों की तुलना करते हैं तो **'नाच चल रहा है'** काफी कमजोर, काफी शिथिल मालूम पड़ती है.

किंतु किसी संग्रह में सभी कहानियों के श्रेष्ठ होने की उम्मीद करना किसी भी लेखक के साथ ज्यादती है. यों भी तर्क का तकाजा है कि किसी संग्रह में श्रेष्ठतम कहानी के मुकाबले कुछ साधारण और सामान्य कहानियां तो होंगी ही, किंतु सुरेंद्र अरोड़ा के इस संग्रह की कहानियों का कुल प्रभाव निश्चित रूप से आश्वस्तिपूर्ण है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनय विश्वास

कुछ कहानियों से गुजरते हुए

...पांच रुपये में पैंतीस कहानियों और चार लेखों ...शन महंगाई के इस दौर में ...के लिए एक विरल ...है. ''इंद्रप्रस्थ ...'' का कहानी विशेषांक ...-जून १९९०) यह अवसर ...है.

'...बली' (भीष्म साहनी) ...घरों में काम करके अपना ...अकेले चलानेवाली लड़की की ...कहानी है. लड़की की ...स्थिति ऐसी बन गयी है कि ...नों के तानों, नखरों और ...ओं की तरह अपने निजी ...की हत्या भी उसके लिए ...-सी बात है. यह ...णता मार्मिक है, और ...ए सर्जनात्मक. 'षिद्दि' ...यादव) में कलात्मक ...यां कुछ अधिक हैं. कारण ...यह हो कि कम उम्र में ...नेवाली महिला की ...दुनिया में से बाहर की ...तक पहुंचता है. इसीलिए ...पात्र 'केस हिस्ट्री' के करीब ...और 'चरित्र'. के करीब ...है. 'अपना शहर' ...कुमार) 'इतना ...पान' (रेखा) और 'आस्था' ...शर्मा) के पात्र 'चरित्र' न ...ने के कारण भी कमअसर ...इन सब कहानियों की तरह ...लोक' (गोविंद मिश्र) भी ...को बांधे रखती है. यह प्रेमी ...वाली संपन्न महिला की ...है. उसकी इस प्रवृत्ति की ...पड़ताल के जरिये उसके ...सहानुभूति पैदा करने की ...की गयी है, जो सामाजिक ...अनैतिक है. इस दृष्टि से ...ाश' (प्रदीप पंत) एक ...त्मक स्वर से संपन्न किंतु ...लोक' (की तुलना में सपाट ...है. 'इंद्रलोक' की तरह ...सपने देखती हैं' ...उनियाल) भी एक लड़की की अनैतिकताओं से भरी सफलता की कहानी है, लेकिन यहां नायिका के प्रति लेखक का रवैया सहानुभूतिपूर्ण नहीं, व्यंग्यपूर्ण है. व्यर्थ के विस्तार मोह से परे यह व्यंग्यपूर्ण गद्य चित्र असरकारी है. **'आठवां आश्चर्य'** (असगर वजाहत) संस्मरण के अंदाज में ओढ़ी हुई आधुनिकता का छद्म उद्घाटित करती है. अतिरिक्त काव्यात्मकता ने **'अंतिम क्षण'** (ज्ञानप्रकाश विवेक) को कमअसर किया है. **'विप्लव कथा'** (अवधेश कुमार) में भी जगह-जगह जिन काव्यात्मक युक्तियों का सहारा लिया गया है, उन्हें गद्यात्मक रूप देकर भूख, नींद, सपने और चोरी के अंतर्संबंध और प्रभावी रूप में व्यक्त किये जा सकते थे.

'बदहवास' (गंगा प्रसाद विमल) एक ढाबे वाली और उसके आस-पास के दृश्य पर विचार करती है तो दूसरी ओर **'अभी तो'** (राजी सेठ) आभिजात्य वर्ग की स्थितियों पर, जिसमें विचारों और प्रसंगों का परस्पर अलगाव कृत्रिमता पैदा करता है. इसकी अपेक्षा **'अंतहीन'** (हिमांशु जोशी) कुछ सहज है जिसमें चरित्र परिस्थितियों के बहाव में खुद को बहने देता है और दुःखी रहता है. परोक्षतः यह दुख का वरण है. **'समय कम है'** (क्षितिज शर्मा) का मास्टर ट्यूशन पढ़ाकर भय का वरण करता है. इस भय को भूख का अर्थ-विस्तार करते हुए औचित्यपरक बनाने की कोशिश उसके अंतर्विरोध तीव्रता से नहीं उभरने देती. **'यस सर'** (प्रेमपाल शर्मा) में भी दब्बू सरकारी कर्मचारी का दब्बूपन तीव्रता से नहीं उभर पाया. पात्रों के प्रति लेखकीय मोह इस समस्या का एक मुख्य कारण है. इसके विपरीत **'जनावर'** (चित्रा मुद्गल) में मार्मिकता के सारे उपकरण मौजूद रहने पर भी मार्मिकता कम होने का मुख्य कारण है—अंतर्वस्तु के प्रति लेखकीय तटस्थता. प्रसंगों का अनावश्यक फैलाव इसका एक और कारण है. उक्त तटस्थता **'जो मारे जायेंगे'** (धीरेंद्र अस्थाना) में भी है जिसमें व्यावसायिक और प्रतिबद्ध ईमानदार पत्रकारिता के बीच द्वंद्व है. व्यावसायिकता विजयी होती है. एक अन्य कहानी **'अजीत'** (कमलेश्वर) का अखबारीपन अलग ढंग का है. पंजाब में एक अजीत सिंह के मारे जाने पर, जिनके भी घर से अजीत नाम के लोगों की वहां होने की आशंका थी, वे सब मृतक की शिनाख्त करने की कोशिश में टूट रहे हैं. इस टूटन को व्यक्त करनेवाली यह कहानी संरचना की दृष्टि से कमजोर तथा आरंभ में निरर्थक लफ्फाजी से ग्रस्त है किंतु अंत में कहानीपन और मार्मिकता को थोड़ा बहुत छूती है.

अपने समय की सामान्य और व्यापक समस्या-गरीबी को **'गरम कोट'** (डा. माहेश्वर) सहज व जीवंत ढंग से उभारती है. बताती है कि ठोस वास्तविकता (गरीबी) व्यक्ति की सारी मानसिक ग्रंथियों पर भारी पड़ती है. इसका कहानीपन अपने संक्षिप्त रूप में अचूक है. यहां न अनुभव का जांच-परख तराश का कोई संकट है न अभिव्यक्ति का. यह संकट **'एक मामूली आदमी'** (रामदरश मिश्र) के लिए भी नहीं है. जिंदगी सिर्फ घन और तथाकथित प्रतिष्ठा का पर्याय नहीं यह सच जीवंत प्रसंगों के माध्यम से व्यंजित है. इस जीवंतता के अभाव में **'झरना'** (रतन वर्मा) वास्तविक समस्याओं से दो चार होने पर भी पाठक को कम आंदोलित कर पाती है. **'गोविंद गाथा'** (अमर गोस्वामी) की स्थिति इस से कुछ ही बेहतर है.

'गरम कोट' की तरह **'टुंड्रा प्रदेश'** (पंकज विष्ट) भी सामान्य चरित्रों की असामान्य कहानी है. यथार्थ का भरा-पूरा संतुलित चित्रण दो बच्चों के माध्यम से, जो भाई-भाई हैं, बहुत कुछ व्यंजित करता है. विपरीत परिवेश में आर्थिक और भावनात्मक स्तरों पर संघर्ष करते बच्चे परिवेश का अंग बनकर आये हैं. उनका बचपन जिम्मेदारियों से लदा बड़ापन होने के लिए विवश है. इस कारुणिक यथार्थ में भाई-भाई के संबंधों की ऊष्मा कहानी को जीवंत बनाती है. **'किस्सागो'** (शेखर जोशी) का प्रभाव और भी तीव्र है.

वाचक के कथाकारीय झूठ के ठीक सामने गांव के बच्चे का खुरदुरा सच और अधिक खुरदुरा होकर उभरता है. यहां बच्चा कल्पनालोक की कहानियों के प्रति कम और घर में ईंधन के प्रभाव के प्रति ज्यादा सचेत है. यह बच्चा भी 'बड़ा' है. लोक-प्रसंगों के दक्ष प्रयोग और गद्य के ठेठ अंदाज ने कहानी में जो भरा-पूरा वातावरण बनाया है, यह यथार्थवाद का उल्लेखनीय सर्जनात्मक आयाम है.

इस अंक में नौवें दशक की हिंदी-कहानी पर चार लेख भी हैं. चंचल चौहान और सुधीश पचौरी के लेख पाठकीय अनुभव के अकाल को आलोचकीय फर्मूलेबाजी की कुछ बूंदों से ढंकने की नाकाम कोशिश करते हैं. अखिल अनूप अपनी भाषाई कलाबजियों पर मुग्ध होने के कारण निरर्थक विस्तार में मन से रमे हैं. आलोचक की मसीहाई मुद्रा से दूर अध्येता की दृष्टि से बात करने के कारण सिर्फ 'इधर की कहानी पर कुछ नोट्स' लेख ही कुछ दूर तक काम का है. ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

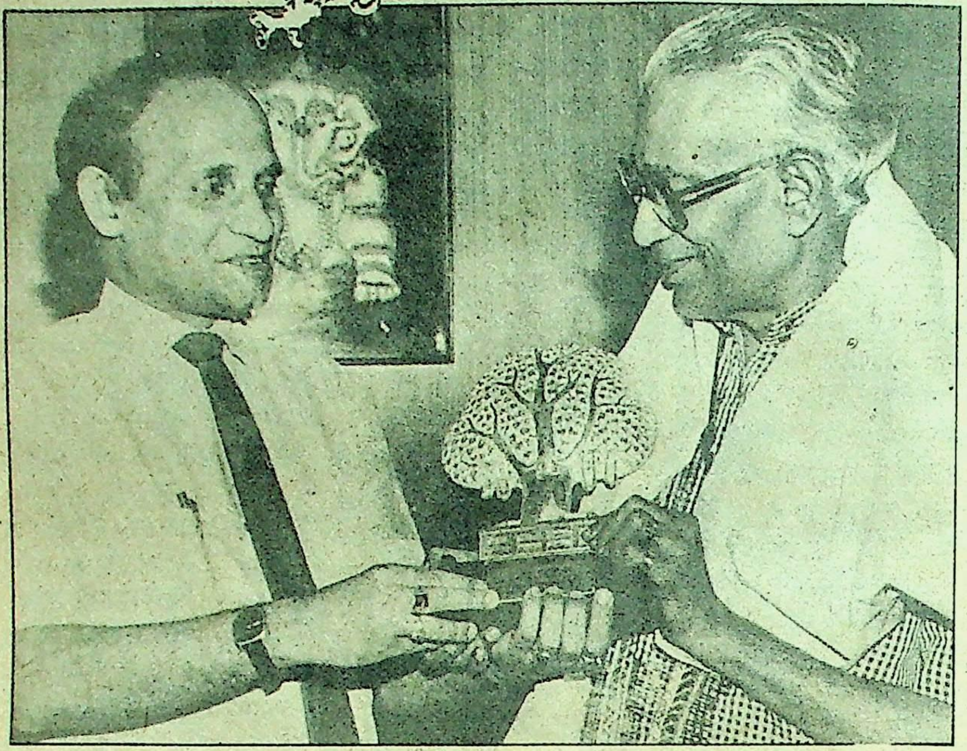

● डा. धर्मवीर भारती को पुरस्कार का प्रतीक चिह्न 'चांदी का बोधिवृक्ष' प्रदान करते हुए बिहार राजभाषा विभाग के निदेशक डा. भगवती शरण मिश्र.

डा. धर्मवीर भारती सम्मानित

२२ मई, शाम साढ़े सात बजे. ५ शाकुंतल [डॉ. भारती का आवास] बांद्रा पूर्व बंबई. बिहार राजभाषा विभाग के निदेशक डा. भगवतीशरण मिश्र और उनके सहयोगी उपनिदेशक श्री बी. दास बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा प्रदत्त डा. राजेंद्र प्रसाद शिखर सम्मान के प्रतीक चिह्न और अलंकरण डा. धर्मवीर भारती को समर्पित करने आये. इस अवसर पर एक छोटी, सादा, लेकिन आत्मीय संगोष्ठी डा. भारती के आवास पर ही आयोजित हो गयी. इसमें मुख्यत: 'धर्मयुग' के संपादक गणेश मंत्री, 'नवभारत टाइम्स' बंबई के स्थानीय संपादक विश्वनाथ सचदेव, 'सारिका' के संपादक अवधनारायण मुद्गल, बंबई विश्वविद्यालय के हिंदी के प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष डा. चंद्रकांत बांदिवडेकर, लेखिका पुष्पा भारती और चित्रा मुद्गल आदि ने हिस्सा लिया. अलंकरण प्रदान करने से पहले डा. भगवतीशरण मिश्र ने भारतीजी की साहित्य साधना, एक सफल विशिष्ट और वरिष्ठ पत्रकार की प्रखर सूझबूझ तथा हिंदी के प्रचार-प्रसार में उनके महत्वपूर्ण योगदान पर संक्षिप्त लेकिन महत्वपूर्ण और विद्वतापूर्ण टिप्पणी करते हुए कहा कि भारतीजी को सम्मानित करके बिहार का राजभाषा विभाग और बिहार सरकार ही मूलत: गौरवान्वित हुई है. डॉ. मिश्र ने बताया कि आधिकारिक रूप में यह सम्मान समारोह ४ अक्तूबर को पटना में संपन्न कर लिया गया था लेकिन गंभीर अस्वस्थता के कारण भारतीजी उस समारोह में उपस्थित नहीं हो सके थे. एक लाख रुपये की सम्मान राशि बैंक ड्राफ्ट द्वारा उनके पते पर भिजवा दी गयी थी. इस समय हम लोग भारतीजी को बिहार सरकार की ओर से शेष अलंकरण प्रदान करने और उनके स्वस्थ और दीर्घ जीवन की कामना करने यहां आये हैं.

अलंकरणों में सम्मान का प्रतीक चिह्न चांदी का बोधिवृक्ष, भागलपुरी रेशम का दुशाला और तांबे का प्रशस्ति पत्र प्रमुख थे. अलंकरण समर्पित करने के बाद अनौपचारिक बातचीत में डा. मिश्र ने बताया कि अब डा. राजेंद्र प्रसाद शिखर सम्मान की राशि एक लाख, इक्यावन हजार रुपये कर दी गयी है. शिखर सम्मान के अतिरिक्त बिहार सरकार का राजभाषा विभाग १२ अन्य पुरस्कार भी प्रदान करता है जिनमें मुख्य हैं : हिंदी कविता के क्षेत्र में विशिष्टतम योगदान के लिए ५१ हजार रुपये का रामधारी सिंह दिनकर पुरस्कार, लेखन की किसी भी विधा में विशिष्टतम योगदान के लिए २५ हजार रुपये का केवल महिलाओं को दिया जाने वाला महादेवी वर्मा पुरस्कार और हिंदी के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में विशिष्टतम योगदान के लिए २५ हजार रुपये का बाबू गंगाशरण सिंह पुरस्कार.

शिखर सम्मान तीन वर्ष पू[र्व] शुरू हुआ है. इसके समर्पण [में] प्रयत्न यह रहता है कि एक [वर्ष] बिहार से बाहर के किसी वरि[ष्ठ] साहित्यकार, पत्रकार या हि[ंदी] सेवी को सम्मानित किया जाये [और] एक वर्ष बिहार की ही कि[सी] वरिष्ठ प्रतिभा को पुरस्कृत कि[या] जाये. सबसे पहले यह सम्मा[न] स्वर्गीय श्री अमृतलाल नागर [को] दिया गया. दूसरे वर्ष श्री जान[की] वल्लभ शास्त्री को और १९८९ [के] लिए भारतीजी को दिया गया है. यह अतिशयोक्ति नहीं ए[क] सच्चाई है कि हिंदी की कोई [भी] छोटी या बड़ी पत्रिका सब[से] अधिक बिहार में पढ़ी जाती है. इसलिए बिहार को इस बात [का] गर्व है कि वह हिंदी के लगभग ह[र] छोटे या बड़े लेखक से कमोबे[श] परिचित रहता है. जो पाठकी[य] जागरूकता बिहार में दिखाई दे[ती] है वह शायद ही किसी अन्य हिंदी भाषी प्रदेश में नजर आती हो.

डॉ. धर्मवीर भारती को सम्मा[न] का प्रतीक चिह्न तथा अलंक[रण] प्रदान करने की औपचारिक[ता] निभाने के लिए आयोजित [यह] संक्षिप्त लेकिन अनौपचारि[क] संगोष्ठी रात लगभग दस ब[जे] संपन्न की गयी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी के लिए आंदोलन होंगे

विश्वविद्यालय हिंदी परिषद् के तत्वावधान में दिल्ली विश्वविद्यालय के हाल में एक दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन गया जिसका विषय था विज्ञान व सामाजिक विज्ञान आदि में हिंदी माध्यम' एवं विश्वविद्यालय प्रशासन और हिंदी'. संगोष्ठी का उद्घाटन पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह ने किया.

इस अवसर पर अपने उद्घाटन भाषण में ज्ञानी जैलसिंह कहा कि हिंदी के विकास में सबसे बड़ी बाधा सरकार की नीयत न होना है.

जनप्रतिनिधियों को आड़े हाथों लेते हुए ज्ञानी जी ने कहा कि चुनाव के समय नेता भारत की जनता से वोट लेने के लिए हिंदी और भारतीय भाषाओं में भाषण करते हैं. लेकिन सत्ता में आते ही हिंदी को भूलकर अंग्रेजी के जाल में फंस जाते हैं. यह देश के लिए चिंता की बात है.

पूर्व राष्ट्रपति ने उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री मुलायमसिंह यादव की मुक्त कंठ से प्रशंसा की और कहा कि वे पहले ऐसे राजनीतिज्ञ हैं जिन्होंने राष्ट्रभाषा के उत्थान के लिए कदम उठाकर साहस का परिचय दिया है. ऐसा ही साहस प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथप्रताप सिंह भी दिखा दें तो यह इस सरकार की सबसे बड़ी उपलब्धि होगी.

दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति श्री उपेंद्र बख्शी ने इस अवसर पर कहा कि अलंकारिक हिंदी की अपेक्षा आम बोलचाल की हिंदी के प्रयोग से हम हिंदी का विकास तेजी से कर पायेंगे.

प्रथम सत्र में विज्ञान और सामाजिक विज्ञान आदि विषयों में हिंदी माध्यम पर चर्चा का विषय प्रवर्तन डा. जगदीश चंद्र मूना ने किया. वक्ताओं में डा. बी. एस. यादव, श्री विश्वंभर प्रसाद गुप्त बंधु, डा. आर. बी. जैन प्रमुख थे. सभी का कहना था कि हिंदी माध्यम में पारिभाषिक शब्दों की कोई समस्या नहीं है. इस सभा के अध्यक्ष डा. सत्यप्रकाश ने विज्ञान की मौलिक पुस्तकों के लेखन पर बल दिया.

द्वितीय सत्र में अध्यक्षता डा. रामेश्वरप्रसाद मिश्र ने की और 'विश्वविद्यालय प्रशासन और हिंदी' विषय पर जिन वक्ताओं ने अपने पत्र पढ़े उनमें सर्वश्री डा. सूबेसिंह राणा, डा. महेशचंद्र अग्रवाल, श्री विजय मल्होत्रा थे. इस सत्र में संयोजक हिंदी अकादमी के सचिव डा. नारायण दत्त पालीवाल और डा. कृष्णलाल थे.

संगोष्ठी का समापन दिल्ली विश्वविद्यालय के समकुलपति डा. के. डी. गंगराडे ने किया.

☐ प्रस्तुति : दयानंद वत्स

कहानी कार्यशाला

यदि नये कहानीकारों को अग्रज पीढ़ी के रचनाकारों-आलोचकों के साथ अंतरंग बातचीत, बहस तथा विचार-विमर्श का अवसर मिले, तो उनकी रचनाशीलता अधिक सार्थक तथा प्रभावशाली बन सकती है. इसके अलावा, लेखक-आलोचक के बीच संवादहीनता को तोड़ने की भी जरूरत है. इन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए जनवादी लेखक संघ की कुरुक्षेत्र इकाई ने, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय परिसर में पिछले दिनों [२६-२७ मई को] एक कहानी कार्यशाला का आयोजन किया. दो दिन तक चली इस कार्यशाला के चार सत्रों में हरियाणा, दिल्ली व चंडीगढ़ से आये हुए तीस लेखकों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया. इनमें स्थानीय लेखकों के अलावा रमेश उपाध्याय, विष्णु नागर, राकेश वत्स, ज्ञानप्रकाश विवेक, ललित कार्तिकेय, सहीराम, मदनलाल वर्मा, अमृतलाल मदान, रामकुमार आत्रेय 'प्रभाकर', मनमोहन, शुभा, अशोक भाटिया, प्रमोद कौसवाल, सत्यपाल सहगल, आनंद प्रकाश, अजय श्रीवास्तव, विनोद कुमार, धन्वंतरि, हरनाम शर्मा आदि लेखक-आलोचक शामिल थे.

पहले सत्र में 'हिंदी कहानी की वर्तमान स्थिति' तथा रचनात्मकता के सामने आयी हुई चुनौतियों पर परिचर्चा हुई. डा. ओमप्रकाश ग्रेवाल ने बहस की शुरुआत करते हुए सामाजिक यथार्थ के ज्वलंत मुद्दों की सही परिकल्पना विकसित करने की आवश्यकता को रेखांकित किया. उन्होंने स्पष्ट किया कि आज की जटिल परिस्थितियों में रचनाशीलता के संदर्भ में चलताऊ निष्कर्षों से काम नहीं चलेगा. मात्र शैली, शिल्प या रूप के आधार पर की गयी चर्चा भ्रामक हो सकती है. राकेश वत्स ने अपने पर्चे में आज की कहानी की सूरत के साथ-साथ सीरत पर भी ध्यान केंद्रित करने की जरूरत पर बल दिया. सुरजीत ने नयी कहानी और उसके बाद आये बदलावों तथा मुख्य पड़ावों पर दृष्टिपात किया. दिनेश दधीचि ने रचनाकारों द्वारा स्वयं अपनी स्थापित अवधारणाओं के प्रति भी आलोचनात्मक तथा वस्तु परक दृष्टि विकसित करने की जरूरत को रेखांकित किया. उनका कहना था कि आज ऐसी कहानियां परोसते चले जाने की कतई जरूरत नहीं है, जो पाठक की बनी-बनायी आम समझ की गहरी जांच-पड़ताल किये बिना उसे और पुख्ता करती चली जायें. इन तीनों विचारोत्तेजक आलेखों पर गर्मजोशी से बहस हुई.

शेष तीन सत्रों में कहानियों का पाठ और उन पर टीका-टिप्पणी का दौर-दौरा रहा.

प्रस्तुति : तारा पांचाल

ग़ज़लों की वह शाम

राजधानी दिल्ली धीरे-धीरे देश की सांस्कृतिक राजधानी भी बनती जा रही है, जहां आये दिन साहित्य, कला, संगीत आदि के कार्यक्रम होते हैं. इन कार्यक्रमों में से कुछ बड़े चलताऊ किस्म के होते हैं, किंतु कुछ स्मरणीय बन जाते हैं. ऐसा ही एक कार्यक्रम २३ मार्च १९९० को त्रिवेणी कला संगम के सभागार में देखने को मिला जिसे राजधानी की साहित्यिक संस्था 'बरगद' ने आयोजित किया था.

यह था उपेंद्र कुमार की ग़ज़लों की संगीतमय प्रस्तुति का कार्यक्रम. उपेंद्र कुमार अपेक्षाकृत नये ग़ज़ल-गो हैं, लेकिन उनकी ग़ज़लों में अद्भुत परिपक्वता है. इसी कारण वे कह सके हैं— 'जिंदगी के सफर में बस्तियां कई आयीं, अपना घर नहीं आया' या 'धुंध है तो छंटने का इंतजार क्या कीजे'. एक ओर मांसल और दूसरी ओर गहन सामाजिक संलग्नता वाली ऐसी तमाम ग़ज़लों को जब श्रोताओं ने गायक के मुख से सुना तो वे भावविभोर हो उठे. शब्द, स्वर और वाद्यों के संगम से उस शाम साहित्य और संगीत की स्निग्ध नदी ही बह उठी.

कार्यक्रम की अध्यक्षता विख्यात विधिवेत्ता डा. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने की. उपेंद्र कुमार की कविता—यात्रा का परिचय प्रसिद्ध कवि डा. शेरजंग गर्ग ने दिया और आयोजन का सफल संचालन लेखक-पत्रकार-अभिनेता-रईस मिर्ज़ा ने किया. ☐

• प्रस्तुति : प्र. पंत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये मुस्कान रहेगी कायम

जिस दिन से मिल गया उसे अनचाहे गर्भ से छुटकारा,
उसकी खुशियों का झिलमिलाया सितारा।
अपने परिवार को छोटा रखने के लिए आज
संसार में साढ़े छः करोड़ से भी ज्यादा औरतें ओरल पिल्स यानि
गर्भ निरोधक गोलियां खा रही हैं।
उन्हीं की तरह उसने भी माला-डी-नई छोटी
खुराक वाली गोलियां खाना शुरू कर दी हैं।
ये गोलियां खासतौर से भारतीय महिलाओं
के लिए अनुकूल हैं।
पहला बच्चा जल्दी नहीं,
दूसरा उसके तीन साल बाद
और इसके लिए हर समझदार औरत खाती है गर्भ निरोधक
गोलियां
माला-डी-गोलियों के प्रयोग से छाती का कैंसर,
डिम्ब ग्रंथि का कैंसर, गर्भाशय कैंसर तथा पेडू
में सूजन जैसे रोग का खतरा कम हो जाता है।

डाक्टर की सलाह लीजिए,
वह आपको माला-डी की राय देंगे।

माला-डी, बच्चों के जन्म में अन्तर के लिए
सुरक्षित, सरल और शर्तिया उपाय
नई खाने की गर्भ-निरोधक गोलियां,
रियायती दामों पर,
सिर्फ 2 रु. में एक पैकेट।

davp 90/169

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

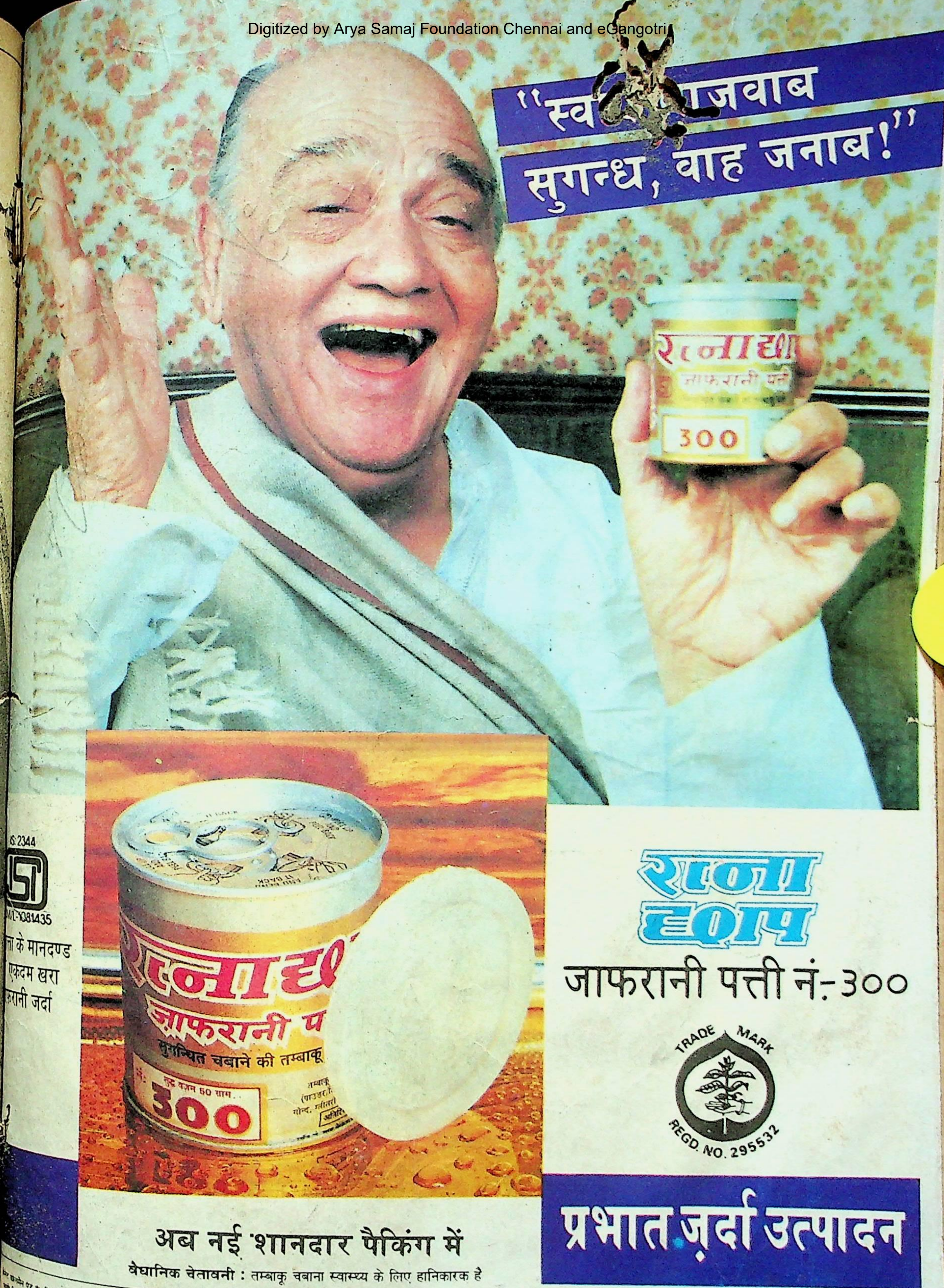

... लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेश चंद्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग ... बंबई-400001. शाखाएं, 7 बहादुरशाह ज़फर मार्ग, नई दिल्ली-110002; 139, आश्रम रोड, अहमदाबाद-380009; 105/7 ए. एस.एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014; एस.एंड.बी. टावर्स, 88, महात्मा गांधी रोड, बंगलोर-560001; 8-9 अनुपम चेंबर्स, टोंक रोड, जयपुर-302004.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने की अनुमति स. U-89

RNI No. 6254/60

Regn. No. KRN
RJ 2954

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व-प्रसिद्ध श्रृंखला

जनरुचि की 50 पुस्तकों की एक अनूठी संग्रहणीय श्रृंखला

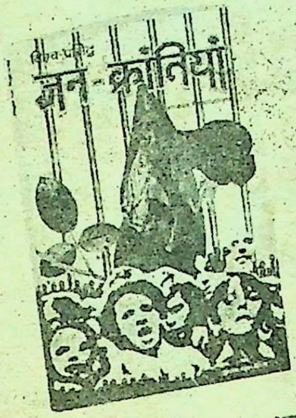

श्रृंखला की अन्य प्रकाशित पुस्तकें

मूल्य : 18/-प्रत्येक
डाकखर्च : 5/-प्रत्येक
छः पुस्तकों पर डाकखर्च माफ

- प्रामाणिक पाठ्य-सामग्री
- कलात्मक प्रस्तुतिकरण
- सैकड़ों दुर्लभ चित्र
- वाजिब दाम

1. नास्त्रेदमस के अनुसार सन् 1999 में दुनिया खत्म–*भविष्यवाणियां और भविष्यवेत्ता*
2. एक जनसंहार, जिसमें छः करोड़ से भी अधिक लोगों की निर्मम हत्याएं हुईं–*जनसंहार*
3. सोफिया लॉरिन, ज़ैकलीन कैनेडी, मर्लिन मनरो जैसी यौन-देवियाँ–*विलासी सुंदरियां*
4. सरकंडे की नाव से 13,000 मील लंबी तूफानी समुद्र की यात्रा–*रोमांचक कारनामे*
5. जवाहरलाल नेहरु और एडविना माउंटबेटेन की प्रेम-कहानी–*हस्तियों के प्रेम-प्रसंग*
6. हत्यारा हेग, जिसकी प्यास मानव-रक्त पीकर ही बुझती थी–*क्रूर हत्यारे*
7. वीनस फ्लाइट्रैप पौधा, जो करता है जीवित प्राणियों का शिकार–*मांसाहारी पेड़-पौधे*
8. क्लियोपैट्रा, जो 10,000 से भी अधिक लोगों के साथ हमबिस्तर हुई–*कुख्यात महिलाएं*

–यह दुनिया आश्चर्यजनक, अविश्वसनीय, सनसनीखेज एवं रोमांचक चीजों एवं घटनाओं से भरी पड़ी है –इन सभी के विषय में दुर्लभ सचित्र जानकारी जुटाती है–**विश्व-प्रसिद्ध श्रृंखला**

–इसकी प्रत्येक पुस्तक अपने क्षेत्र से संबंधित सभी उल्लेखनीय पक्षों को उजागर करने वाला एक ऐसा मिनि एनसाइक्लोपीडिया है, जो परम ज्ञानी से लेकर एक औसत पाठक तक को अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम से जोड़कर उसके ज्ञान-भंडार को बढ़ाता है ।

विश्व-प्रसिद्ध......

* प्रेरक-प्रसंग * दुर्घटनाएं
* खोजे * जनसंहार
* जासूस * युद्ध
* वैज्ञानिक * क्रूर हत्यारे
* सभ्यताएं * ड्रग-माफिया
* भविष्यवाणियां एवं भविष्यवेत्ता
* बैंक डकैतियां व जालसाजियां
* धर्म, मत एवं संप्रदाय
* खोज-यात्राएं
* हस्तियों के प्रेम-प्रसंग
* तख्तापलट की घटनाएं
* रोमांस-कथाएं
* 101 व्यक्तित्व
* भ्रष्ट राजनीतिज्ञ
* अलौकिक रहस्य
* गुप्तचर-संस्थाएं
* राजनैतिक हत्याएं
* आतंकवादी संगठन
* चिकित्सा-पद्धतियां
* सनकी तानाशाह
* खेल और खिलाड़ी
* कुख्यात महिलाएं
* मिथक एवं पुराण-कथाएं
* मांसाहारी व विचित्र पेड़-पौधे
* भयानक रोगों पर विजय
* आध्यात्मिक एवं शैतान-कल्ट्स

शेष 9 पुस्तकें प्रेस में

30 Titles available in English & 5 in Bangla

अपने निकट व ए.एच. व्हीलर के रेलवे व बस-अड्डों के बुकस्टॉलों पर मांगें अन्यथा वी.पी.पी. द्वारा मंगाने के पते :-

पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-110006 शोरूम : 10-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

VAN/PM/8/90

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar